जैन ग्रंथमाळा
दादासाहेब, भावनगर.
फोन : ०२७८-२४२५३२२
३००४८४६

356

जैन श्रमण संघ का इतिहास

—❀—

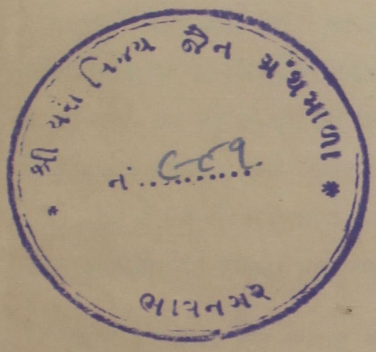

लेखक—

मानमल जैन "मार्तण्ड"

सम्पादक—"ओसवाल"

अजमेर

—❀—

प्रकाशक—

श्री जैन साहित्य मन्दिर

कड़क्का चौक, अजमेर

—❀—

प्रथमावृति	मूल्य—	सितम्बर
१०००	१०) दस रुपया	१९५९

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com

वाले उन महान् विभूतियों की गौरव स्मृतियों को संकलित करना मेरे सामर्थ्य से परे की वस्तु थी। पर 'श्रमण' शब्दने मुझे श्रमशील बनाया। मैंने देखा जैन श्रमणों की गौरव गाथाएं तो एक महान् सागर समान हैं। एक एक महा पुरुष के सद् कृत्यों पर स्वतन्त्र पुस्तकें लिखने योग्य हैं। उनके सम्बन्ध में यदि खोज की जाय तो प्रचुर सामग्री उपलब्ध है और उसके संग्रह से जैन समाज आज के जगत में सबसे अधिक ज्ञान सम्पन्न सिद्ध हो सकेगा।

हमारे पास भी काफी सामग्री संग्रहीत होगई थी पर आर्थिक कठिनाइयों ने सभी आशाओं पर तुषारापात किया है। उस पर समाज में साहित्य के प्रति यथेष्ठ अभिरुचि के अभाव ने, तथा मुनिवरों द्वारा आशानुकूल सहयोग प्राप्त न हो सकने आदि कई कारणों से; हमें खेद है कि यथेष्ट रूप में हम सम्पूर्ण सामग्री प्रकाशित नहीं कर पा रहे हैं। यदि इस प्रथामावृति का अच्छा स्वागत हुआ तो आशा है, द्वीतिया वृति में कुछ विशेष सामग्री दी जा सकेगी।

यद्यपि हमने अपनी जानकारी अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रायः सभी प्रमुख मुनिवरों की सेवा में, उनके इतिहास पूर्ण सामुदायिक एवं व्यक्तिगत परिचय आदि भेजने का निवेदन केवल एक बार ही नहीं कई बार किया था परन्तु खेद है कि हमारे बार बार निवेदन करने पर भी कई आचार्य वरों और मुनिवरों के सम्बन्ध में परिचय आदि प्राप्त करने में हम असफल रहे हैं। एतदर्थ क्षमा प्रार्थी हैं।

२ मुनिवरों की परिचय आदि सामग्री पूज्य पदानुक्रम से नहीं दी जासकी है। अतः परिचयों का आगे पीछे या ऊंचे नीचे देने आदि की जो अविनय हुई हो तो उसके लिये भी हम हृदय से क्षमा प्रार्थी हैं।

३ ग्रंथ में अनेक त्रुटि यां रह जाना स्वभाविक है। यदि सुज्ञजन उन्हें हमें सुझाने की कृपा करेंगे तो हम उनके अभारी होंगे।

आशा है हमारा यह प्रयास 'वर्तमान जैन श्रमण संघ को अपने महापुरुषों के पदचिन्हों पर प्रवर्तित बनने की प्रेरणा प्रदान कर, साम्प्रदायिक भिन्नता को भुलाते हुए, एक सूत्र में आबद्ध हो' जैन धर्म की गौरव वृद्धि हेतु अवश्य प्रेरणा प्रदान करेगा।

अजमेर
२०-६-५९

विनीत—
मानमल जैन "मार्तण्ड"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

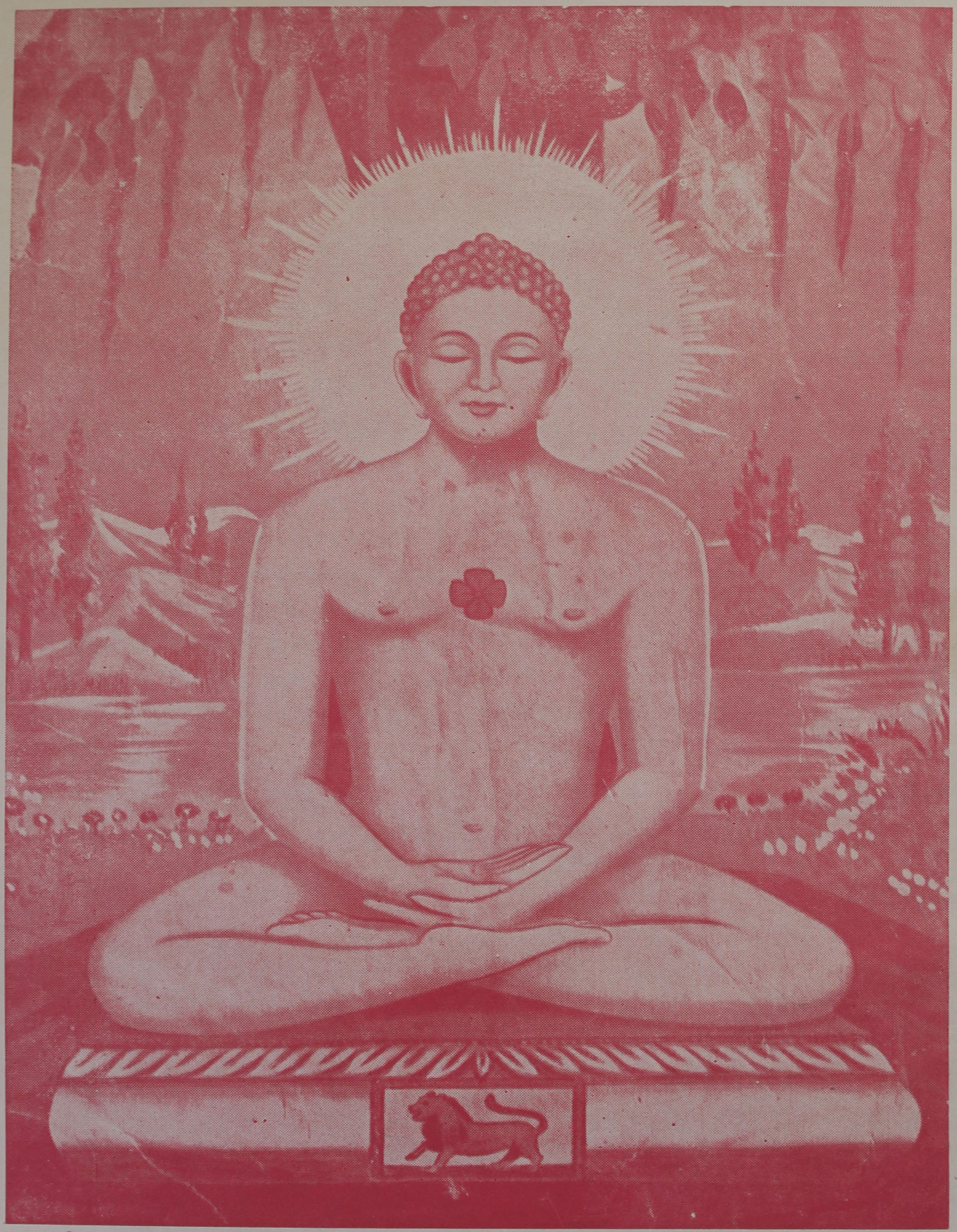

श्रमण भगवन्त प्रभु महावीर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com

॥ णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

जैन श्रमण संघ का इतिहास

जैन धर्म की विशिष्टता

विश्व शांति और विश्व प्रेम पर आधारित जैन धर्म विश्व को एक महान देन है। विश्व प्रांगण में अहिंसा प्रधान संस्कृति द्वारा शांति और सुख का संचार करने का सर्वोपरि श्रेय यदि किसी को है तो वह जैन धर्म को ही है।

धर्म के नाम पर प्रचलित पाखंड और अन्ध-श्रद्धा के अन्धकार में भटकते विश्व को धर्म का असली स्वरूप और मार्ग बताने की धार्मिक क्रान्ति करना जैन धर्म प्रचारकों की एक महान् विशिष्टता रही है।

जैनसिद्धान्त का मूल आधार आचार है। सद् आचार और सद् विवेक पर ही उसका विशेष आग्रह है।

इसका लक्ष्य बिन्दु इस दृश्यमान भौतिक जगत तक ही सीमित नहीं वरन् विराट अन्तर्जगत की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करना है। बाह्य क्रिया कांडों का इसमें कोई महत्व नहीं-वह तो विशुद्ध आध्यात्मिक उन्नति का उपदेशक है। जैन धर्म केवल ऐहिक सुखों में ही संतुष्ठि नहीं मानता प्रत्युत पारलौकिक कल्याण से ही उसका विशेष सम्बन्ध है। "आत्म जीत" बनना ही सच्चे जैनत्व का सफल परिक्षण है।

इस धर्म के आद्य उपदेशक 'जिन' हैं। 'जिन' का अर्थ है-महान् विजेता। विजेता का अर्थ है 'आत्म विजेता'। जिनेश्वर देव परम आध्यात्मिक विजेता हैं। उन्होंने प्रबल आत्म बल द्वारा राग, द्वेष, क्रोध, मान माया, लोभ आदि समस्त अन्तरंग आत्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उच्चतम पद प्राप्त किया है। ऐसे महान् विजेताओं का धर्म ही "जैन धर्म" है।

इन महान् आत्म-विजेता जिनेश्वर देवों के सामने सबसे बड़ी समस्या थी "जगत् के दुःखों का निवारण करना"। जगत्को दुःखों से बचाने के लिये "आत्म शक्ति" पर अवलम्बित रहने का उन्होंने उपदेश दिया। उन्होंने फरमाया कि "आत्मा में अनन्त शक्ति है। प्रत्येक आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा ही 'परमात्मा' बन सकता है। उसे किसी दूसरे पर अवलम्बित रहने की आवश्यकता नहीं।

जैनधर्म का यह स्वावलम्बनमय सिद्धान्त मनुष्य में एक अपूर्व आत्म ज्योति, आत्म शक्ति जागृत करता है और उसे साहसी बनाता है। प्रत्येक प्राणी की आत्मा अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त बल वीर्य आदि महान् गुणों से परिपूरित है-केवल उनको प्रकाशित करने की आवश्यकता है। इन गुणों को प्रकाशित करने के लिये अपना आत्मिक विकास करना चाहिये।

जैनधर्म का कथन है:-

"अप्पा कत्ता विकत्ताय
दुहणय [redacted] सुहाणय।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अप्पा मित्तम् मित्तम् च
दुप्पट्ठियो सुपट्ठियो ॥

अर्थात्-दुःख और सुख का कर्त्ता यह आत्मा ही है, अपना मित्र और शत्रु भी अपनी यह आत्मा ही है-यदि बुरे मार्ग पर प्रवृत हुए तो यही आत्मा शत्रु बनेगी और सुमार्ग पर प्रवृत होने पर यही आत्मा मित्र सिद्ध होगी।

इस प्रकार जैनधर्म मनुष्य को स्वातंत्र्य उपासक बनाता है। पुरुषार्थ द्वारा आत्मोन्नति की प्रेरणा करता हुआ, मानव को मानवीय दासता से उन्मुक्त बनाता है। और उसे अपने परम और चरम साध्य को प्राप्त करने के लिये प्रेरणात्मक अदम्य उत्साह प्रदान करता है। जैन धर्म अपनी इस विशेषता के कारण ही "श्रमण धर्म" कहलाता है।

'श्रमण' का अर्थ है श्रम करने वाला और श्रमण संस्कृति का मुख्य मन्तव्य है-"हर व्यक्ति अपना विकास अपने परिश्रम द्वारा ही कर सकता है। किसी दैविक या अदृष्ट शक्ति के द्वारा नहीं।"

श्रमण संस्कृति का यह सिद्धान्त अन्ध श्रद्धा के अन्धकार में भटकते विश्व के लिये अपूर्व प्रकाश पुंज सिद्ध हुआ।

भारतीय संस्कृति का उच्चतम स्वरूप यदि हमें देखना है तो वह जैन संस्कृति में ही प्राप्त हो सकता है। यदि यह भी कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि भारतीय संस्कृति की महानता बढ़ाने और रक्षा करने में जैन संस्कृति का असाधारण योग रहा है।

भारत के एक महान् विद्वान सर पट मुखम् चेट्टी ने एक भाषण में कहा है कि:-

"जैनधर्म की महत्ता के विषय में कुछ कहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अपने अध्ययन के आधार पर यह अधिकार पूर्वक कह सकता हूँ कि भारतीय संस्कृति के विकास में जैनों ने असाधारण योग दिया है। मेरा निजि विश्वास है कि यदि भारत में जैन धर्म का प्रभाव दृढ़ रहता तो हम संभवतः आज की अपेक्षा अधिक संगठित और महत्तर भारत वर्ष का दर्शन करते। जैनों की उपेक्षा करने से भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति का सच्चा चित्र हमारी आखों के सामने नहीं आसकता।"

प्राचीन भारत के नकेवल धार्मिक बल्कि राज नैतिक सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक कला कौशल आदि सभी क्षेत्रों में भी जैन धर्म और जैनियों का गौरव पूर्ण स्थान रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में इस धर्म ने अपनी वैज्ञानिक एवं मौलिक विचार धारा के कारण नये जीवन, नई क्रान्ति, नई चेतना और नये प्रकाश का संचार किया।

भारत के धार्मिक जगत् में विचार स्वातंत्र्य का प्रवेश हुआ जिससे पुरोहित वाद की नींव हिल गई। सामाजिक क्षेत्र में भी अपूर्व क्रान्ति हुई। जन्म जात वर्ण भेद की ऊंच नीचता की भावना दुर्बल होने लगी। गुण पूजा का महत्व बढ़ा। सद् गुणी शुद्र दुर्गुणी ब्राम्हण से श्रेष्ठ है, स्त्री को भी पुरुष वर्ग के समान आत्मोन्नति के पूर्ण अधिकार हैं यह जैन धर्म ने ही घोषित किया।

इस प्रकार सामाजिक क्रान्ति करने में भी जैन धर्म ने अकथनीय कार्य किया है।

धार्मिक मतभेदों और दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने के लिये "अनेकान्त वाद" का प्ररूपण कर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन धर्म ने जगत् पर एक महान् उपकार किया है। अन्यथा यह जगत् दार्शनिकों के भुल भुलैया में ही भटकता फिरता।

साहित्य और कला के क्षेत्र में तो जैन धर्म का भारतीय इतिहास में सर्वोपरि स्थान मान लिया जाय तो उपयुक्त ही होगा।

जैन धर्म विश्व धर्म है। जैन धर्म की अनेकानेक विशेषताओं में सबसे बड़ी विशेषता यह भी रही है कि उसके अनुयायी होने के लिये किसी भी तरह का कोई बन्धन नहीं।

जैन धर्म के सिद्धान्त परम् उदार व्यापक और सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय हैं। यहाँ संकीर्णता को कोई स्थान नहीं। ब्राह्मण हो या शुद्र, स्त्री हो या पुरुष, राजा हो या रंक, बूढ़ा हो या बच्चा जैन धर्म के प्रांगण में किसी के प्रति कोई भेद भाव नहीं। प्राणी मात्र उसका उपासक बनकर अपनी आत्मोन्नति करने का समान अधिकार रखता है यह जैन धर्म की स्पष्ट उद्घोषणा है। जैन सिद्धांत के उपदेशकों को जैन शास्त्रों की स्पष्ट हिदायत है कि–

"जहाँ तुच्छस्स कत्थइ तहां पुण्णस्स कत्थइ, जहाँ पुण्णस्स कत्थइ तहाँ तुच्छस्स कत्थइ। अर्थात्-जैन धर्म का उपदेष्टा साधक जिस अनासक्त भाव से रंक को उपदेश देता है उसी अनासक्त भाव से चक्रवर्ती का भी उपदेश देता है। अर्थात् उसकी दृष्टि में कोई भेद भाव नहीं। प्रत्येक जाति वर्ग वर्ण, का व्यक्ति और पतित से पतित जन भी उसका आश्रय लेकर अपना कल्याण कर सकता है। इससे स्पष्ट है कि जैन धर्म मानव मात्र का धर्म है। वह पतित पावन है। इसकी छत्र छाया में आश्रय पानेवाला प्राणी चाहे कितना ही पतित से पतित क्यों न रहा हो--अपने को समस्त पापों से उन्मुक्त बना कर स्वयं पावन बनकर परमात्म स्वरूप को प्राप्त करता है।

यही कारण है कि जैन सिद्धांत न केवल भारत में बल्कि समस्त संसार में प्रियकारी बने हैं।

जमनी के विद्वान् प्रो० हेल्मुथ फॉन ग्लास्नाप्प ने 'जैनधर्म' नामक अपने ग्रन्थ में लिखा है कि:—

जैन अपने धर्म का प्रचार भारत में आकर बसे हुए शकादि म्लेच्छों में भी करते थे, यह बात 'कालकाचार्य' की कथा से स्पष्ट है। कहा तो यह भी जाता है कि सम्राट अकबर भी जैनी होगया था। आज भी जैन संघ में मुसलमानों को स्थान दिया जाता है। इस प्रसंग में बुल्हर सा० ने लिखा था कि अहमदाबाद में जैनों ने मुसलमानों को जैनी बनाने की प्रसंग वार्ता उनसे कही थी। जैनी उसे अपने धर्म की विजय मानते थे। भारत की सीमा के बाहर के प्रदेशों में भी जैन उपदेशकों ने धर्म प्रचार के प्रयत्न किये थे। चीनी-यांत्री ह्वेनसांग (६२८-६४५ ई०) का दिगम्बर जैन साधु कियापिसी (कपिश) में मिले थे-उनका उल्लेख उसके यात्रा विवरण में है। हरिभद्राचार्य के शिष्य हंस परमहंस के विषय में यह कहा जाता है कि धर्म प्रचार के लिये तिब्बत (भोट) में गये और वहां बौद्ध के हाथों से मारे गये थे। ग्रुइनवेडल सा० ने कुच की हकीकत का अनुवाद किया है वहाँ जैनधर्म के प्रचार की पुष्टि होती है। महावीर के धर्मानुयायी उपदेशकों में इतनी प्रचार की भावना थी कि वे समुद्र पार भी जा पहुँचते थे। ऐसी बहुत सी कथाएं मिलती है जिनसे विदित होता है कि जैन धर्मोपदेशकों ने दूर दूर के द्वीपों के अधिवासियों को जैनधर्म में दीक्षित किया था।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

महम्मद सा० के पहले जैन उदेपशक अरबस्थान भी गये थे। इस प्रकार की भी कथा है। प्रचीन काल में जैन व्यापारीगण अपने धर्म को सागर पार ले गये थे यह बात सम्भव है। अरब दर्शनिक तत्ववेता अबुल-अला (९७३-१०६८ ई०) के सिद्धान्तों पर स्पष्टतः जैन प्रभाव दीखता है। वह केवल शाकाहार करता था—दूध तक नहीं लेता था। दूध को पशुओं के स्तन से खींच निकालना वह पाप समझता था। यथा शक्ति वह निराहार रहता था। मधु का भी उसने त्याग किया था क्योंकि मधुमक्खियों को नष्ट करके मधु इकट्ठा करने को वह अन्याय मानता था। इसी कारण वह अण्डे भी नहीं खाता था आहार और वस्त्रधारण में वह सन्यासी जैसा था। पैर में लकड़ी की पगरखी पहनता था क्योंकि पशुचर्म के व्यवहार को भी पाप मानता था। एक स्थल उसने नग्न रहने की प्रशंसा की है। उनकी मान्यता थी कि भिखारी को दिरम देने की अपेक्षा मक्खी की जीवन रक्षा करना श्रेष्ठ है। उसके इस व्यवहार और कथन से स्पष्ट है कि वह अहिंसा धर्म को कितने गम्भीर भाव से मानता था।

बाबू कामताप्रसाद जैन ने इस विषय का संकलन किया है वह इस प्रकार है:—

(१) भारत के पहले ऐतिहासिक सम्राट श्रेणिक बिम्बसार जैन थे और उन्होंने महावीर धर्म को प्रचारित किया था। (स्मिथ ऑक्सफोर्ड हिस्ट्रीऑफ इन्डिया पृ० ४५)

(२) श्रेणिक के पुत्र राजकुमार अभय के प्रयत्न से ईरान (पारस्प देश) के राजकुमार आर्द्रक जैन धर्मनुयायी हुए थे। (डिक्सनरी ऑफ जैन विब्लोग्राफी पृ० ७२)

(३) वैक्ट्रिया के जिनोसूफिस्ट (जैनश्रमण) का उल्लेख में मगस्थनीजने किया है। (एंसियन्ट इंडिया पृ १०४)

(४) मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त भी जैन थे। अशोक के सप्तम स्तम्भ लेख से स्पष्ट है कि उन्होंने धर्म प्रचार का उद्योत किया था। अन्त में वह स्वयं दिगम्बर जैनमुनि हो गये थे। (नरसिहाचार्य श्रवणबेलगोल' और स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ० १५४)

(५) अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया था वह निरा बौद्ध धर्म नहीं था। अशोक पर जैन सिद्धांतों का अधिक प्रभाव था उसका प्रचार उन्होंने किया था। अशोक ने मिश्र मैसेडोनिया कोरेन्थ और साइनेरे नामक देशों में अपने धर्माज्जुक भेजे थे, किन्तु इन देशों में बौद्धधर्म के चिन्ह नहीं मिलते बल्कि जैन धर्म का अस्तित्व उन देशों में रहा प्रतिभाषित होता है। मिश्र में जो धर्म चिन्ह मिले हैं उनका साम्य जैन चिन्हों से हैं (ओरियन्टल अखबार १८७२ पृ० २३-२४)

(६) मिश्रवासी जैनों के समान ही ईश्वर को जगत् का कर्त्ता नहीं मानते थे बल्कि बहु परमात्मवाद के पोषक थे। परमात्मा उस व्यक्ति को मानते थे जो अनन्तरूपेण और पूर्ण हो। वे शाश्वत आत्मा का अस्तित्व पशुओं तक में मानते थे। अहिंसा धर्म का पालन यहाँ तक करते थे कि मछली, मूली, प्याज जैसे शाक भी नहीं खाते थे वृक्षवल्कल के जूते पहनते थे। अपने देवता होरस (अरहः ?) की नग्न मूर्तियाँ बनाते थे। (कानफ्लूयेंस ऑफ आयोजिट्स पृ० २ व स्टोरी ऑफ मेन पृ० १८७-१८८) इन बातों से मिश्र में एक समय जैनधर्म का प्रचार हुआ स्पष्ट है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मिश्र के पास इथोपिया में एक समय जैनश्रमण रहते थे (ऐशियाटिक रिसर्चेज १-६)

(७) मैसीडोनिया या ग्रीक मिश्रवासियों के अनुयायी थे। यूनानी तत्ववेत्ता पिथागोरस (पिहिताश्रव ?) और पिर्होने जिनोसूफिस्ट (जैन श्रमणों) से शिक्षा ली थी। वे जैनों के समान ही आत्मा को अजर अमर और संसार भ्रमण सिद्धान्त को मानते थे। अहिंसा और तप का अभ्यास करते थे। यहाँ तक कि जैनों की तरह द्विदल (दाल) का भी निषेध करते थे। दही में मिलाकर द्विदल जैनी नहीं खाते क्योंकि उसमें सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार यूनान में भी जैनधर्म का प्रभाव स्पष्ट है।

(८) यूनान के एथेन्स नगर में एक समय श्रमणाचार्य की निषधिका थी। ये जैन साधु भैराज (भारत) से यूनान आये थे। (इंडि० हि० क्वा० २ पृ० २७३)

(९) प्रो० एम० एस रामस्वामी एँगर ने कहा था कि बौद्ध भिक्षु व जैन श्रमण यूनान, रूस व नारवे पहुँचे थे (हिन्दू, २५ जुलाई १९२९)

(१०) सम्प्रति ने ईरान अरब अफगानिस्तान में धर्म प्रचार कराया था। सीलोन के सम्राट् पाण्डुकाभय ने ई० पूर्व ३६७-३०७ में निर्ग्रन्थ श्रमणों के लिए विहार बनवाये थे जो २१ शासकों के समय रहे किन्तु, सम्राट् वट्टगामिनी (३८-१० ई० पू०) जैनों से क्रुद्ध हुए और उन्हें नष्ट करवाया (महावंश)

(११) चीनी त्रिपिटक में भी जैनों का उल्लेख है। प्रो० सिल्वाँ लेवी ने जावा सुमात्रा में जैनधर्म का प्रभाव व्यक्त किया था (विशाल भारत १-३) सारांशतः एक समय जैनधर्म ने विश्वभर में अहिंसा संस्कृति का प्रचार किया था।

जैन धर्म की प्राचीनता

जैनधर्म के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में इतिहास कार अभी भी पूर्ण खोज नहीं कर पाये हैं तथापि ज्यों ज्यों इस सम्बन्ध में अन्वेषण होते रहे हैं त्यों त्यों इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रान्तियों का काफी निराकरण हुआ है। पाश्चात्य और पौर्वात्य इतिहास कार भी इसके इतिहास से अनभिज्ञ रहे हैं। यही सब कारण हैं कि कतिपय इतिहास कारों ने जैनधर्म के आदि कालीन इतिहास के बारे में अपनी अल्पज्ञता के कारण कई भ्रान्ति मूलक विचार प्रकट किये हैं। किसी ने इसे वैदिक धर्म का रूपान्तर माना है तो किसी ने इसे बौद्ध धर्म की शाखा बताकर भगवान महावीर को इसका मूल संस्थापक बताया है। सचमुच यह सब इतिहासकारों की अनभिज्ञता का ही परिणाम है। उन्होंने जैनधर्म को उसके मूल ग्रन्थों से समझने का प्रयत्न ही नहीं किया है और न इस सम्बन्ध में कुछ अन्वेषणात्मक गहराई में जाने का कष्ठ ही उठाया है। यथार्थ रूप में निष्पक्ष भाव से अन्वेषण करने का कष्ट उठाना तो दूर रहा कई इतिहास कारों ने इसके प्रतिद्वन्दी धर्म ग्रन्थों के आधार पर ही अपने विचार व्यक्त कर जैनधर्म के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्ति मूलक गलत धारणाओं को जन्म दिया है।

किन्तु अब प्रायः समस्त इतिहास कार यह मानने लगे हैं कि आधुनिक इतिहास काल जिस समय से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रारंभ होता है उससे पूर्व भी जैनधर्म विद्यमान था। इतिहासकाल की परिधि चार पाँच हजार वर्ष के भीतर ही सीमित है। उससे बहुत बहुत पहिले भी जैनधर्म का अस्तित्व था यह अब सप्रमाण सिद्ध हो चुका है।

सच तो यह है कि जैसे सृष्टि का प्रवाह अनादि अनन्त है। उसी प्रकार जैनधर्म का न कोई आदि है और न कोई अन्त।

जैन इतिहास कालप्रवाह के अनुसार अपने धर्म का कभी उदयकाल तो कभी ह्रासकाल मानता है। इस विकास और ह्रासकाल को जैनधर्म की उत्पत्ति या विनाश नहीं कहा जासकता।

जैन परिभाषा में धर्म का पुनरुद्धार कर तीर्थ स्थापन करने वाले को तीर्थंकर कहा जाता है। प्रत्येक तीर्थंकर का काल जैनधर्म का उदयकाल है। एक तीर्थंकर के समय से दूसरे तीर्थंकर के जन्म से पहिले तक जैन धर्म उदितावस्था में आकर पूर्ण विकास प्राप्त करते हुए अस्तावस्था को प्राप्त होता है और दूसरे तीर्थंकर उसका पुनः अभ्युत्थान करते हैं।

इस दृष्टि से वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभ देव से लगाकर तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ और अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी जैनधर्म के मूल संस्थापक नहीं प्रत्युत् ह्रासावस्था को प्राप्त करते जैनधर्म को नवजीवन प्रदान कर नवीन तीर्थरूप संगठन के संस्थापक युगावतारी महा पुरुष थे।

ऐसी अनन्तानन्त चौबिसियाँ होना जैनागम मानते हैं और उनके नामादि पूर्ण उल्लेख भी जैनागमों में किया गया है-जिसे समझने पर जैन धर्म को सृष्टि प्रवाह के अनुसार ही अनादि अनन्त मानने में कोई शंका ही शेष नहीं रह जायगी।

स्थान संकोच से हम अभी उस आगमिक विवेचना में न जाकर आधुनिक इतिहास कारों द्वारा किये गये अन्वेषण अभिमतों से प्रकट होने वाली जैनधर्म की प्राचीनता पर ही किंचित प्रकाश डालना चाहेंगे।

जैनधर्म वेदधर्म से भी प्राचीन है

वैदिक धर्म के प्राचीन ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है कि उस समय भी जैनधर्म का अस्तित्व था। वेदधर्म के सर्वमान्य ग्रन्थ रामायण और महाभारत में भी जैनधर्म का उल्लेख पाया जाता है। रामचन्द्र के कुल पुरोहित वशिष्टजी के बनाये हुए योगवशिष्ट ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख है :—

नाहंरामोनमे वाञ्छा भावेषु च न मे मनः।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

भावार्थः—रामचन्द्रजी कहते है कि मैं राम नहीं हूँ, मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है; मैं जिनदेव के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूं।

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि रामचन्द्रजी के समय में जैनधर्म और जैनतीर्थङ्कर का अस्तित्व था। जैनधर्मानुसार बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के समय में रामचन्द्रजी का होना सिद्ध है। महाभारत के आदि पर्व के तृतीय अध्याय में २३ और २६ वें श्लोक में एक जैन मुनि का उल्लेख है। शान्ति पर्व (मोक्ष धर्म अध्याय २३६ श्लोक ६) में जैनों के सुप्रसिद्ध सप्तभंगी नय का वर्णन है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आधुनिक कतिपय इतिहासकारों की ऐसी मान्यता है (यद्यपि जैनों को यह स्वीकृत नहीं) कि महाभारत ईसा से तीन हजार वर्ष पहले तैयार हुआ था और रामचन्द्रजी महाभारत से एक हजार वर्ष पहले विद्यमान थे। इस पर से कहा जा सकता है कि रामचन्द्रजी के समय में (चाहे वह कौन सा भी हो) जैनधर्म का अस्तित्व था। रामचन्द्रजी के काल में जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर वेदव्यास के समय में उसका अस्तित्व सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। तदपि वेद व्यास ने अपने ब्रह्म सूत्र "नैकस्मिन्नसंभवात्" कहकर जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त पर आक्षेप किया है। अगर उस समय जैन दर्शन का स्याद्वाद सिद्धान्त विकसित न हुआ होता तो वेद व्यास उस पर लेखनी नहीं उठाते। यद्यपि वेदव्यास ने स्याद्वाद के जिस रूप पर आक्षेप किया है वह स्याद्वाद का शुद्ध रूप नहीं–विकृत रूप है। तदपि इससे यह तो भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि वेद व्यास के समय में जैन दर्शन का मौलिक सिद्धान्त स्याद्वाद प्रचलित था। रामायण महा भारत से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर अब पुराणों को देखना चाहिए।

अठारह पुराण महर्षि व्यास के द्वारा रचित माने जाते हैं। ये व्यास महर्षि महाभारत के समयवर्त्ती बतलाये जाते हैं। चाहे कुछ भी हो हमें यह देखना है कि पुराण इस विषय में क्या कहते हैं? शिव पुराण में रिषभनाथ भगवान् का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है:—

कैलाशे पर्वते रम्ये वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारञ्च सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

इसका अर्थ यह है कि–केवल ज्ञान द्वारा सर्व व्यापी, कल्याण स्वरूप, सर्व ज्ञान जिनेश्वर रिषभदेव सुन्दर कैलाश पर्वत पर उतरे। इसमें आया हुआ 'वृषभ' और 'जिनेश्वर' शब्द जैनधर्म को सिद्ध करते हैं क्योंकि 'जिन' और 'अरहन्त' शब्द जैन तीर्थंकर के लिये रूढ है। ब्रम्हाण्ड पुराण में इस प्रकार लिखा है:—

"नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम्।
रिषभं क्षत्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्॥
रिषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजो।
8भिषिच्यर्षभं भरतं राज्ये महाप्रव्रज्यामास्थितः॥"

"ह हि इक्ष्वाकुकुल वंशोद् भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्याः नन्दनेन महादेवेन रिषभेण दशप्रकारो धर्मः स्वयमेवाचीर्णः केवल ज्ञानलाभाच्च प्रवर्त्तितः"

अर्थात्:—नाभिराजा और मरुदेवी रानी से मनोहर, क्षत्रिय वंश का पूर्वज 'रिषभ' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। रिषभनाथ के सौ पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र शूरवीर 'भरत' हुआ। रिषभ देव भरत को राज्यारूढ़ करके प्रव्रजित हो गये। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न नाभिराजा और मरुदेवी के पुत्र रिषभ ने क्षमा मादव आदि इस प्रकार का धर्म स्वयं धारण किया और केवल ज्ञान पाकर उसका प्रचार किया। स्कन्द पुराण में भी लिखा है:—

आदित्य प्रमुखाः सर्वे बद्धाञ्जलय ईहशं।
ध्यायन्ति भावतो नित्यं यदङ्घ्रियुगनीरजं॥
परमात्मानमात्मानं लसत्केवला निमलम्।
निरञ्जन निराकार रिषभन्तु महा रिषिम्॥

भावार्थः—रिषभदेव परमात्मा, केवल ज्ञानी, निरञ्जन, निराकार और महर्षि है। ऐसे रिषभदेव के चरण युगल का आदित्य आदि सूर-नर भावपूर्वक अञ्जली जोड़कर ध्यान करते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नागपुराण में इस प्रकार उल्लेख है:-

अकारादि हकारान्तं मूर्धाधोरेफ संयुतम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डल सन्निभम् ॥
एतिद्देवि परं तत्वं यो विजानाति तत्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत परमां गतिम् ॥

अर्थात्—जिसका प्रथम अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है, जिसके ऊपर आधारेफ तथा चन्द्रबिन्दु विराज मान है ऐसे "अर्हं" को जो सच्चे रूप में जान लेता है, वह संसार के बंधन को काटकर मोक्ष को प्राप्त करता है ।

बहुमान्य मनुस्मृति में मनु ने कहा है:—

मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभे जति उरुक्रमः ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥

भावार्थ—इस भारतवर्ष में 'नाभिराय' नाम के कुलकर हुए । उन नाभिराय के मरुदेवी के उदर से मोक्ष मार्ग को दिखाने वाले, सुर-असुर द्वारा पूजित, तीन नीतियों के विधाता प्रथम जिनेश्वर अर्थात् रिषभनाथ सत्युग के प्रारम्भ में हुए ।

'रिषभ' शब्द के सम्बन्ध में शंका को अवकाश ही नहीं है । वाचस्पति कोष में 'रिषभदेव' का अर्थ 'जिनदेव' किया है । और शब्दार्थ चिन्तामणि में 'भगवदवतारयेदे आदिजिने—अर्थात् भगवान का अवतार और प्रथम जिनेश्वर किया गया है ।

पुराणों के उक्त अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकाल के पहले जैनधर्म था । इसके अतिरिक्त भागवत के पांचवे स्कन्ध के चौथे पांचवे और छठे अध्याय में प्रथम तीर्थंकर रिषभदेव को आठवां अवतार बतलाकर उनका विस्तृत वर्णन किया गया है । भागवत पुराण में यह लिखा है कि 'सृष्टि की आदि में ब्रम्ह ने स्वयंभू मनु और सत्यरूपा को उत्पन्न किया । रिषभदेव इनसे पांचवी पीढ़ी में हुए ।

इन्हीं रिषभदेव ने जैन धर्म का प्रचार किया । इस पर से यदि हम यह अनुमान करें कि प्रथम जैन तीर्थंकर रिषभदेव मानव जाति के आदि गुरू थे तो हमारा विश्वास है कि इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

दुनियाँ के अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि आधुनिक उपलब्ध सभी ग्रन्थों में वेद सबसे प्राचीन हैं । अतएव अब वेदों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि वेदों की उत्पत्ति के समय जैनधर्म विद्यमान था । वेदानुयायियों की मान्यता है कि वेद ईश्वर प्रणीत हैं । यद्यपि यह मान्यता केवल श्रद्धा गम्य ही है । तदपि इससे यह सिद्ध होता है कि सृष्टि के प्रारंभ से ही जैन धर्म प्रचलित था क्योंकि रिग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में जैन तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख पाया जाता है ।

रिग्वेद में कहा है:—

आदित्या त्वमसि आदित्यसद् असीद अस्त भ्रावृया वृषभो तरिक्षं जमिमीते वारिमाणं । पृथिव्याः आसीत् विश्वा भुवनानि समाडिवश्वे तानि वरुणस्य व्रतानि । ३० । अ० ३ ।

अर्थात्—तू अखण्ड पृथ्वी मण्डल का सार त्वचा स्वरूप है, पृथ्वीतल का भूषण है, दिव्यज्ञान के द्वारा आकाश को नापता है, ऐसे हे वृषभनाथ सम्राट ! इस संसार में जगरक्षक व्रतों का प्रचार करो ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्हन्विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् (अ० १ अ० ६ व० १२) अर्हन्निदं दयसे विश्वं भवभुवं न वा ओ जीयो रुद्रत्वदस्ति (अ० २ अ० ५. व० १७)

अर्थ—हे अर्हनदेव ! तुम धर्मरूपी बाणों को, सदुपदेश रूप धनुष को, अनन्त ज्ञानरूप आभूषण को धारण किये हुए हो। हे अर्हन ! आप जगत्प्रकाशक केवल ज्ञान प्राप्त हो, संसार के जीवों के रक्षक हो, काम क्रोधादि शत्रु समूह के लिए भयंकर हो, आपके समान अन्य बलवान नहीं है।

ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा। वामदेव शान्त्यर्थ मनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा।

ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान चतुर्विंशति तीर्थंकरान ऋषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरण प्रपद्ये।

ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभं पवित्रं पुरुहुत मध्वरं यज्ञेषु नग्नं परंम माहसं स्तुतं वारं शत्रुं जयन्तं पशुरिन्द्रमाहु रिति स्वाहा।

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमि; स्वास्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।

इत्यादि बहुत से वेदमंत्रों में जैन तीर्थंकर श्री ऋषभदेव, सुपार्श्वनाथ, अरिष्ठनेमि आदि तीर्थंकरों के नाम आये हैं। इन तीर्थंकरों के प्रति पूज्य भाव रखने की प्रेरणा करने वाले कतिपय वेदमंत्र पाये जाते हैं। इन सब प्रमाणों पर से यह प्रतीत होता है कि वेदों की रचना के पूर्व भी जैनधर्म बड़े प्रभाव के साथ व्याप्त था तभी तो वेदों में उनके नाम बड़े आदर के साथ उल्लिखित हुए हैं। इन बातों का विचार करने पर कोई भी निष्पक्ष वेदानुयायी यह नहीं कह सकता है कि जैनधर्म वैदिक धर्म के बाद उत्पन्न हुआ है। वेदों में जो प्रमाण दिये गये हैं वही इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि जैनधर्म अति प्राचीन काल से चला आता है। जिस वैदिक धर्म को प्राचीन बतलाया जाता है उससे भी पहले जैनधर्म अस्तित्व रखता था।

जैनधर्म बौद्ध धर्म से प्राचीन है

यह तो निर्विवाद है कि बौद्ध धर्म के संस्थापक बुद्ध हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन हैं। इससे यह सिद्ध है कि बौद्ध धर्म लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व का है इससे पहले बौद्ध धर्म का अस्तित्व नहीं था। आज के निष्पक्ष इतिहास वेत्ताओं ने यह स्वीकार कर लिया है कि जैनधर्म बुद्ध से बहुत पहले ही प्रचलित था। इससे लेथब्रिज, एलफिंटन, ब्रेवर, बार्थ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जैनधर्म को बौद्ध की शाखा मानने की जो गलती की है उसका संशोधन हो जाता है। उक्त विद्वानों ने वस्तुस्थिति का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पहले ही पूर्वग्रह के कारण दोष में फंसकर गलत राय कायम कर ली है। केवल अपने पूर्वग्रह के कारण किये अनुमान के बल पर जैन धर्म के सम्बन्ध में ऐसा गलत अभिप्राय व्यक्त करके इन्होंने उसके साथ ही नहीं परन्तु वास्तविकता के साथ अन्याय किया है।

इन विद्वानों के इस भ्रम का कारण यह है कि जैनधर्म और बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धांत आपस में मिलते जुलते हैं। भगवान् महावीर और बुद्ध ने तत्कालीन वैदिक हिंसा का जोरदार विरोध किया था और ब्राह्मणों की अखण्ड सत्ता को अभिशस्त किया था इसलिए ब्राह्मण लेखकों ने इन दोनों धर्मों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को एक कोटि में रख दिया। इस समानता के कारण इन विद्वानों को यह भ्रम हुआ कि जैन धर्म बौद्ध धर्म की एक शाखा है ऊपरी समानता को देखकर और दोनों धर्मों के मौलिक भेद की उपेक्षा करके इन विद्वानों ने यह गलत अनुमान बांधा था।

जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोफेसर हर्मन जेकोबी ने जैन धर्म और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की बहुत छानबीन की है और इस विषय पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। इस महापण्डित ने अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि जैनधर्म की उत्पत्ति न तो महावीर के समय में और न पार्श्वनाथ के समय में हुई किंतु इससे भी बहुत पहले भारत वर्ष के अति प्राचीन काल में यह अपनी हस्ती होने का दावा रखता है।

जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है, बल्कि एक स्वतन्त्र धर्म है। इस बात को सिद्ध करने के लिए अध्यापक जेकोबी ने बौद्ध के धर्मग्रन्थों में जैनों का और उनके सिद्धान्तों का जो उल्लेख पाया जाता है उसका दिग्दर्शन कराया है और बड़ी योग्यता के साथ यह सिद्ध कर दिया है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से प्राचीन है। अब यहाँ यह दिग्दर्शन करा देना उचित है कि बौद्धों के धर्मशास्त्रों में कहाँ २ जैनों का उल्लेख पाया जाता है:—

(१) मज्झिमनिकाय में लिखा है कि महावीर के उपाली नामक श्रावक ने बुद्धदेव के साथ शास्त्रार्थ किया था।

(२) महावग्ग के छठे अध्याय में लिखा है कि सीह नामक श्रावक ने जो कि महावीर का शिष्य था, बुद्धदेव के साथ भेंट की थी।

(३ अंगुतर निकाय के तृतीय अध्याय के ७४ वें सूत्र में बैशाली के एक विद्वान् राजकुमार अभय ने निर्ग्रन्थ अथवा जैनों के कर्म सिद्धांत का वर्णन किया है।

(४) अंगुतर निकाय में जैनश्रावकों का उल्लेख पाया जाता है और उनके धार्मिक आधार का भी विस्तृत वर्णन मिलता है।

(५) समन्नफल सूत्र में बौद्धों ने एक भूल की है। उन्होंने लिखा है कि महावीर ने जैनधर्म के चार महाव्रतों का प्रतिपादन किया किन्तु ये चार महाव्रत महावीर से २५० वर्ष पार्श्वनाथ के समय माने जाते थे। यह भूल बड़े महत्व की है क्योंकि इससे जैनियों के उत्तराध्ययन सूत्र के तेवीसवें (२३) अध्ययन की यह बात सिद्ध हो जाती है कि तेवीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के अनुयायी महावीर के समय में विद्यमान थे।

(६) बौद्ध ने अपने सूत्रों में कई जगह जैनों को अपना प्रतिस्पर्धी माना है किंतु कहीं भी जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा या नवस्थापित नहीं लिखा।

(७) मंखलिलपुत्र गोशालक महावीर का शिष्य था परन्तु बाद में वह एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तक बन गया था। इसी गोशालक और उसके सिद्धांतों का बौद्ध धर्म के सूत्रों में कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

(८) बौद्धों ने महावीर के सुशिष्य सुधर्मास्वामी के गोत्र का और महावीर के निर्वाण स्थान का भी उल्लेख किया है। इत्यादि २

प्रोफेसर जेकोबी महोदय ने विश्वधर्म कॉंग्रेस में अपने भाषण का उपसंहार करते हुए कहा था कि:-

On cinclusion let me assert my conbichon that Jainsm is an original system quite distinct and indePendent from all others and that the-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

refore it is of great importauce for the study of philosophical thought and religious life in anclent India.

अर्थात्–अन्त में मुझे अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त करने दीजिये कि जैनधर्म एक मौलिक धर्म है। यह सब धर्मों से सर्वथा अलग और स्वतंत्र धर्म है। इसलिए प्राचीन भारत वर्ष के तत्वज्ञान और धर्मिक जीवन के अभ्यास के लिए यह बहुत ही महत्वका है।"

जेकोबी साहब के उक्त वक्तव्य से यह सिद्ध हो जाता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा नहीं है 'इतना ही नहीं, किसी भी धर्म की शाखा नहीं है। वह एक मौलिक, स्वतन्त्र और प्राचीन धर्म है।"

जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए पाश्चात्य और पौर्वात्य पुरातत्वविदों और इतिहास कारों ने जो अभिप्राय व्यक्त किये हैं उनका दिग्दर्शन कराना अप्रासंगिक नहीं होगा।

(१) काशी निवासी स्व० स्वामी राममिश्रा-शास्त्री ने अपने व्याख्यान में कहा था:—

"जैनधर्म उतना ही प्राचीन है जितना कि यह संसार है।"

(२) प्राचीन इतिहास के सुप्रसिद्ध आचार्य प्राच्य विद्या महार्णव नगेन्द्रनाथ वसु ने अपने हिन्दी विश्व कोष के प्रथम भाग में ६४ वें पृ० पर लिखा है :—

"रिषभदेव ने ही संभवतः लिपि विद्या के लिए लिपि कौशल का उद्भावन किया था।...रिषभदेव ने ही संभवतः ब्राह्मविद्या शिक्षा की उपयोगी ब्राह्मी लिपि प्रचार किया। हो न हो, इसलिए वह अष्टम अवतार बनाये जाकर परिचित हुए।

इसी विश्वकोष के तीसरे भाग में ४४३ वें पृ० पर लिखा है:—भागवतोक्त २२ अवतारों में रिषभ अष्ठम हैं। इन्होंने भारतवर्षाधिपति नाभिराजा के औरस और मरुदेवी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया था। भागवत में लिखा है कि जन्म लेते ही रिषभ-नाथ के अंगों में सब भगवान के लक्षण झलकते थे।

(३) श्रीमान महोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्या भूषण, एम० ए० पी एच०, एफ० आई० आर एस' सिद्धान्त महोदधि, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज कलकत्ता ने अपने भाषण में कहा था:—

"जैनमत तब से प्रचलित हुआ है जब से संसार में सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है। मुझे इसमें किसी प्रकार का उज्र नहीं है कि जैनदर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्वका है"

(४) लोकमान्य तिलक ने अपने 'केशरी' पत्र में १३ दिसम्बर १९४ को लिखा है कि:—

"महावीर स्वामी जैनधर्म को पुनः प्रकाश में लाये। इस बात को आज करीब २४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। बौद्ध धर्म की स्थापना के पहले जैनधर्म फैल रहा था, यह बातें विश्वास करने योग्य हैं। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे।

इससे भी जैनधर्म की प्राचीनता जानी जाती है।

(५) स्वामी विरूपाक्ष वर्डीयर धर्मभूषण, वेदतीर्थ विद्यानिधि, एम० ए०, प्रोफेसर संस्कृत कालिज, इन्दौर, 'चित्रमय जगत्' में लिखते हैं।

"ईर्षा-द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकने वाली विपत्ति के रहते हुए भी जैनशासन कभी पराजित न होकर सर्वत्र विजयी होता रहा है। अर्हन्

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देव साक्षात् परमेश्वर स्वरूप हैं। इसके प्रमाण भी आर्य-ग्रन्थों में पाये जाते हैं। अर्हन्त परमेश्वर का वर्णन वेदों में भी पाया जाता है। रिषभदेव का नाती मरीचि प्रकृतिवादी था और वेद उसके तत्वानुसार हो सके, इस कारण ही रिग्वेद आदि ग्रंथों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है। फलतः मरीचि रिषि के स्तोत्र वेद, पुराण आदि ग्रन्थों में हैं और स्थान २ पर जैन तीर्थङ्करों का उल्लेख पाया जाता है, तो कोई कारण नहीं है कि वैदिक काल में जैनधर्म का अस्तित्व न मानें।"

(६) मेजर जनरल जे. जी. आर. फार लांग एफ. आर. एस. ई, एफ. आर. ए. एस. एम. ए. डी. 'शार्ट स्टडीज इन दी साइन्स आफ कम्पेरीटिव रिलिजन्स, के पृ० २४३ में लिखते हैं---

अनुमानतः ईसा से पूर्व के १५०० से ८०० वर्ष तक बल्कि अज्ञात समय से सर्व उपरी पश्चिमीय, उत्तरीय, मध्यभारत में तूरानियों का "जो आवश्यकतानुसार द्राविड कहलाते थे, और वृक्ष, सर्प और लिंग की पूजा करते थे, शासन था।" परन्तु उसी समय में सर्व ऊपरी भारत में एक प्राचीन, सभ्य, दार्शनिक और विशेषतया नैतिक सदाचार व कठिन तपस्या वाला धर्म अर्थात् जैनधर्म भी विद्यमान था, जिसमें से स्पष्टतया ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों के प्रारम्भिक सन्यास भावों की उत्पत्ति हुई। आर्यों के गंगा क्या सरस्वती तक पहुँचने के भी बहुत समय पूर्व जैनी अपने २२ बौद्धों-संतों तीर्थंकरों द्वारा-जो ईसा से पूर्व की ८-९ शताब्दी के २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ से पहले हुये थे—शिक्षा पा चुके थे।

उक्त विद्वानों के अभिप्रायों से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म अति प्राचीन धर्म है। ये इतिहासकार, संशोधक और पुरातत्व के ज्ञाता अजैन हैं अतएव पक्षपात की आशंका नहीं हो सकती। इन विद्वानों ने अपने निष्पक्ष अनुसन्धान के आधार पर अपने अभिप्राय व्यक्त किये हैं। इससे यह भलि भांति प्रमाणित हो जाता है कि जैनधर्म सृष्टि-प्रवाह के समान ही अनादि है, अतएव प्राचीन है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्रमण संस्कृति का स्वरूप

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति मुख्य रूप से दो प्रकार की विचारधारा में प्रवाहित रही है-१ श्रमण संस्कृति २ ब्राह्मण संस्कृति।

'समण' प्राकृत भाषा का शब्द है उसीका संस्कृत स्वरूप 'श्रमण'' समन और शमन है।

'श्रमण' वह है जो अपने उत्कर्ष, अपकर्ष, सुख-दुःख विकास-पतन के लिये अपने को ही उत्तरदायी मानते हुए आत्मोत्कर्ष के लिये निरन्तर स्वयं श्रम शील रहता है। अपने उत्थान-पतन में वह किसी अन्य को कारण भूत नहीं मानता। अपने सद् असद् कार्यों को ही वह अपने सुख दुःख का कारण समझता है।

इस प्रकार आत्मोन्नति के लिये अपनी आत्मशक्ति और अपने सद् असद् कार्यों पर ही स्वाश्रयी और पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा देने वाली संस्कृति का ही नाम है "श्रमण संस्कृति"।

"समन" शब्द से तात्पर्य है सब पर समान भाव रखने वाला। प्राणी मात्र को आत्मवत समझने और "स्वयं जीओ और दूसरों को जीने दो" का उपदेश देने वाली संस्कृति को ही समन संस्कृति कहा गया है। इस संस्कृति में वर्ग, वर्ण या जाति पांति का या ऊँच नीच का कोई भेद भाव नहीं माना जाता। यहाँ शुद्ध आचार विचार का ही प्रधानता रहती है यहां भक्ति नहीं गुण की विशेष महत्व है।

अनुयोग द्वार सूत्र के उपक्रमाधिकार में श्रमण शब्द के निर्वचन पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला गया है :—

जह मम न पियं दुक्खं
जाणिय एमेव सव्वजीवाण।
न हणइ न हाणवेइ य,
सममणइ तेण सो समणो ॥१॥

अर्थात्-जिस प्रकार मुझे दुःख प्रिय नहीं उसी प्रकार संसार के अन्य सब प्राणियों को भी दुःख अच्छा नहीं लगता है। ऐसा समझ कर जो न स्वयं हिंसा करता है और न दूसरों से हिंसा करवाता है और न किसी भी प्रकार की हिंसा का अनुमोदन करता है और समस्त प्राणियों को आत्म वत् मानता है, वही श्रमण है।

णत्थि य से कोई वेसो,
पिओ अ सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो,
एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥२॥

अर्थात्-जो किसी से द्वेष नहीं करता, सभी जीवों पर जिसका समान भाव से प्रेम है वह श्रमण है।

तो समणो जइ सुमणो,
भावेण जइण होइ पाव मणो।
सयणे य जणे य समो,
समो अ माणावमाणेसु ॥३॥

अर्थात्—वही श्रमण जिसका मन पवित्र (सुमना) है-जिसके मन में कभी पाप पैदा नहीं होता अर्थात् जो कभी पाप मय चिन्तन नहीं करता और स्वजन या पर जन में तथा मान या अपमान में भी अपने बुद्धि का संतुलन नहीं खोता, वह श्रमण है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

'शमन' से अर्थ है अपनी वृतियों का शमन करना और उन पर विजय प्राप्त करना। इस प्रकार श्रमण संस्कृति श्रम, समानता और शमन रूप तीन तत्वों पर आधारित है। जैन श्रमण संघ ने स्व पर कल्याण के लिये इन्हीं तत्वों को अपनाना श्रेयस्कार समझा और इन्हीं तत्वों को अपनाने से वे श्रमण शब्द से सम्बोधित हुए।

ब्राह्मण संस्कृति का प्रवाह बाह्य क्रिया कांड प्रधान भौतिक जीवन की ओर विशेष गतिशील रहा तो श्रमण संस्कृति का प्रवाह उच्चतम आध्यात्मिक जीवन निर्माण का मार्ग बताने की ओर प्रवाहित रहा। जहाँ ब्राह्मण संस्कृति बाह्य क्रिया कांडों के विश्वास पर परमात्मा को प्रसन्न करके ऐहिक सुख प्राप्त करने की कल्पनाओं तक ही अटक जाती है वहां श्रमण संस्कृति स्व पुरुषार्थ से आत्म विकास के मार्ग पर आरुढ़ होकर त्याग द्वारा मन की वासनाओं का दलन करती हुई ऐहिक सुखों के प्रलोभनों को ठुकरा कर पूर्ण सच्चिदानन्द अजर अमर परमात्म पद प्राप्त करने के लिये सतत् प्रयत्न शील रहती है।

जहाँ ब्राह्मण संस्कृति के त्याग में भी भोग की भावना झलकती है वहाँ श्रमण संस्कृति के भोग में भी त्याग की ही भावना प्रतिध्वनित होती है।

ब्राह्मण संस्कृति का मूल आधार 'ब्रह्म' यानि परमेश्वर है। ईश्वरोपसना हेतु यज्ञ, पूजा, स्तुति आदि क्रिया कांड प्रधान आधार मानकर उनके आश्रय पर ही अपना उत्कर्ष मानना ब्राह्मण संस्कृति की मूल परम्परा रही है। वेद कालीन संस्कृति में प्रकृति पूजा के लिये अग्नि, वायु, जल, सूर्य आदि की स्तुति केलिये विविध प्रकार के विधि विधान तथा मन्त्रोंका उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार ब्राह्मण संस्कृत में भक्ति भाव की प्रधानता थी।

यद्यपि इस प्रकार को प्रकृति पूजा और ईश्वरोपासना के लिये सबको समान अधिकार था। वर्ग भेद या वर्ण भेद को कोई स्थान नहीं था।

किन्तु क्रिया कांड पर ही विशेष आधारित इस ब्राह्मण संस्कृति को धीरे धीरे ब्राह्मण वर्ग ने अपनी रोजी का आधार बना कर धार्मिक जगत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारंभ कर दिया। वे विधि विधान के विशेष जानकार होते थे अतः धार्मिक अनुष्ठान हेतु अन्य वर्ग को उनके आश्रित रहना पड़ने लगा।

इस प्रकार ब्राह्मण संस्कृति सिद्धान्तों पर आधारित न रह कर ब्राह्मण वर्ग के बताये हुए मार्गों पर प्रवाहित होने लगी जिसके परिणाम स्वरूप धार्मिक जगत् में व्यक्ति वाद, स्वार्थ एवं धर्म के नाम पर अन्ध श्रद्धा, अज्ञानता एवं पाखंड का बोल बाला होने लगा। धर्म के स्थान पर बाह्य क्रिया कांड पनपने लगे।

यही नहीं ब्राह्मण वर्ग ने अपनी स्वार्थ पूर्ति हेतु धर्म के मूल आधारों और सिद्धान्तों का प्रति पादन करना छोड़कर तथा जन समूह को धर्म का सत्यानुष्ठान कराने के स्थान पर अपनी स्थायी आमदनी और स्वार्थ सिद्धी का ही विशेष ध्यान रखना प्रारंभ किया और हर धार्मिक अनुष्ठान के साथ स्व निहित स्वार्थ-जोड़ दिया। इस प्रकार पर बुद्धिजिवियों के लिए बिना ब्राह्मण वर्ग के धार्मिक अनुष्ठान दुर्लभ रहा और इस वर्ग द्वारा प्रतिपादित धर्म का मार्ग सरल एवं सहज होने से यह शीघ्र लोक प्रचलन में आगया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भारतीय धार्मिक जगत पर इसका बहुत बुरा प्रभाव हुआ। वर्गवाद, वर्णवाद और व्यक्तिवाद का यहीं से प्रारंभ होता है। स्व पूजा प्रतिष्ठा हेतु धर्म के नाम पर अनेक मत मतान्तर बनने लगे।

इस प्रकार नये नये सम्प्रदायों का जन्म होने लगा और धीरे धरे इन सम्प्रदायों ने धर्म के असली स्वरुप को ही भुलावे में डाल दिया। मनुष्य स्व बुद्धि जीवी न रह कर पर बुद्धि रहने लगा। धर्माराधना के लिये वह दूसरे पर आश्रित रहने लगा और धीरे २ वह इन सम्प्रदायों को ही असली धर्म मानने लगा। इस प्रकार वह निरन्तर धर्म के नाम पर क्रिया कांड के जाल वाले पाखंड में फंसने लगा।

सामूहिक यज्ञों की वृद्धि हो जाती है, और गृह-शान्ति, धन, पुत्र, राज्य विस्तार, वर्षा, आदि हर कार्य के लिये यज्ञ का ही आश्रय बताकर ब्राह्मण वर्ग ने अपनी पुरोहित वृत्ति को सदा के लिये संरक्षित बना लिया है।

भारत के वर्तमान उपराष्ट्रपति महान् दार्शनिक विचारक सर राधाकृसन ने इस सम्बन्ध में कहा है-

"तत्कालीन यज्ञ संस्था ऐसी दुकानदारी है जिसकी आत्मा मर गई है और जिसमें यजमान एवं पुरोहित में सौदे होते हैं। यदि यजमान अच्छी दक्षिणा देकर बड़ा यज्ञ करता है तो उसे महान् फल की प्राप्ति होना बताया जाता है और थोड़ी दक्षिणा देने पर छोटे फलकी। यह ऐसी दुकानदारी होगई है जहाँ ग्राहक को माल परखने का भी अधिकार नहीं है। राज्याश्रय होने से ब्राह्मण वर्ग ने अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिये विविध विधान कर लिये जैसे कि वेद स्वयं प्रमाण है, ये नित्य है, इन्हें पढ़ने का अधिकार ब्राह्मणों को ही हैं (स्त्री शूद्रौ नाधीयेताम) इत्यादि।

ब्राह्मण संस्कृति ने यज्ञ और ईश्वर के नियन्तृत्व को ही धर्माराधना का मूल मंत्र माना है। इससे यह माना जाने लगा कि भगवान की जो इच्छा होगी वही होगा। इससे मनुष्य में अपने प्रति हीन भावना बनी और उसकी आत्मा शक्ति एवं पुरुषार्थ भावना को गहरा धक्का लगा।

ब्राह्मण संस्कृति में व्यक्ति अपने विकास के लिये सदा पर मुखापेक्षी रहा है। देवी-देवता, ईश्वर गृह नक्षत्र, आदि सैंकड़ों ऐसे तत्व हैं जो व्यक्ति के भाग्य पर नियंत्रण करते हैं। इसके विपरीत श्रमण संस्कृति का विधान है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास स्वयं कर सकता है। उसकी आत्मा सर्व-शक्तिमान है। वह अपने पुरुषार्थ बल पर सर्वोच्च परमात्म पद प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार ब्राह्मण संस्कृति में वर्ग वाद का विशेष महत्व है। ब्राह्मण चाहे जितना ही नैतिक दृष्टि से पतित क्यों न हो तो भी वह सदा पूज्यनीय बता दिया गया है। शूद्रों और स्त्रियों के प्रति ब्राह्मण संस्कृति में घृणा के दर्शन होते हैं, जबकि जैन श्रमण संस्कृति में प्राणी मात्र के लिये आत्मवत् समझने की घोषणा की गई है। वहां तो सद् असद् कार्यों पर ही वर्ग भेद माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर स्वामी ने स्पष्ट फरमाया है:—

कम्मुणा बम्भणो होइ,
कम्मुणा होइ खत्तिओ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वइसो कम्मुणा होइ,
सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

यहां तो महत्व गुणों का है। जन्म जात जाति पांति का नहीं यही सब ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृति के मूल भेद हैं।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययायन की तीसरी गाथा की टीका करते हुए 'श्रमण' शब्द का अर्थ तपस्वी किया है।

श्राम्यन्तीति श्रमणाः तपस्यन्ती त्यर्थः।"

अर्थात्-जो अपने ही श्रम से तपः साधना द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं वे श्रमण कहलाते हैं।

सूत्र कृतांग सूत्र के प्रथम श्रुत स्कधान्तर्गत १६ वीं गाथा अध्ययन में भगवान महावीर ने साधु के माहण (ब्राह्मण) श्रमण, भिक्षु और निर्ग्रन्थ ऐसे चार नामों का वर्णन किया है।

इन शब्दों पर महान टीका कारों ने निम्न प्रकार टीकाए की है:—

"माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनः।"

(आचार्य शीलांक, सूत्र कृतांग वृति १-१६)

अर्थात्-किसी भी प्राणी का हनन नहीं करो, यह प्रवृत्ति है जिसकी वह माहण है।

"यः शास्त्रनीत्या तपसा कर्म भिनत्ति स भिक्षुः।"

(आचार्य हरिभद्र सूरि,दशवैकालिक वृत्ति दशम अध्ययन)

अर्थात्-जो शास्त्र की नीति के अनुसार तपः साधना के द्वारा कर्म बन्धनों का नाश करता हैं, वह भिक्षु है।

"निर्गतो ग्रन्थाद् निर्ग्रन्थः॥"

(—आचार्य हरिभद्र, दश० वृत्ति प्र० अ०)

अर्थात्-जो ग्रन्थ अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित है, कुछ भी छिपाकर गांठ बांधकर नहीं रखता है, वह निर्ग्रन्थ है।

भगवान महावीर स्वामी ने सूत्र कृतांग सूत्र में श्रमण कहलाने योग्य कौन है इसका विवेचन करतेहुए फरमाया है कि:—एत्थ वि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणं च, अतिवायं च, मुसावायं च, बहिद्धं च,कोहं च,माणं च,मायं च, लोभं च पिज्जं च दोसं च, इच्चेयजओ आदाणं अप्पणो पदोसहेऊ, तओ तओ आदाणातो पुव्वं पडिविरते पाणाइवाया लिया दंते, दविए वो सट्ठकाए समणे ति वच्चे।

[सूत्र कृतांग १।१६।२]

"जो साधक शरीर आदि में आसक्ति नहीं रखता, किसी भी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं करता, किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, मैथुन और परिग्रह के विकार से अपने को दूर रखता है, क्रोध, मान, माया लोभ, राग द्वेष आदि जितने भी 'कर्मादान' और आत्मा को पतन मार्ग पर ले जाने वाले कारण हैं उन सबसे निवृत रहता है, इसी प्रकार जो इन्द्रियों का विजेता है, संयमी है, मोक्ष मार्ग का सफल यात्री है तथा शरीर के मोह ममत्व से रहित है वह श्रमण कहलाता है।"

भगवान ने साथ ही उत्तराध्ययन सूत्र में यह भी फरमाया है कि:—

न वि मुंडिएण समणो।
समयाए समणो होइ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात्—केवल मुंडित हो जाने मात्र से ही कोई श्रमण नहीं होता किन्तु समता की साधना से ही श्रमण कहलाता है।

सुप्रसिद्ध बौद्ध धर्म ग्रन्थ "धम्म पद" में तथागत् भगवान बुद्ध ने 'श्रमण' शब्द पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला है:—

न मुन्ड केन समणो अव्वतो अलिक भणं।
इच्छालोभ समापन्नो समणो कि भविस्सति ॥६

अर्थात्–जो व्रतहीन है, मिथ्या भाषी है, वह मुन्डित होने मात्र से ही श्रमण नहीं होता। इच्छा लोभ से भरा मनुष्य क्या श्रमण बनेगा?

योवो च समेति पापानि अणु थूलानी सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणोति पवुच्चति ॥?०॥

अर्थात्—जो छोटे बड़े सभी पापों का शमन करता है, उसे पापों का शमन कर्त्ता होने से श्रमण कहते हैं।

उपरोक्त विवेचन से श्रमण संस्कृति की महानता और उच्चता स्वत सिद्ध है। यदि यह कह दिया जाय तो सर्व प्रकारेण विशेष उपयुक्त होगा कि "भारतीय संस्कृति की आत्मा श्रमणसंस्कृति है।" इसी श्रमण संस्कृति को जैन धर्म ने अपने साधुओं के लिये प्ररूपण किया और इसी महान् उच्च संस्कृति का अनुशीलन करने से ही आज जैन श्रमण अपनी साधुचर्या के लिये जैन श्रमण भारतवर्ष को ही नहीं समस्त विश्व के संत समाज में विशिष्ट एवं अनुपमेय बने हुए हैं। और ऐसे महान् संतों के संरक्षण में चलने वाले जैन धर्म का पर्यायवाची नाम 'श्रमण धर्म' बन गया है

श्रमण-धर्म

["श्रमण-धर्म" के सम्बन्ध में जैनसमाज के महान्-श्रद्धेय संत कविवर उपाध्याय मुनिराज श्री अमरचन्दजी महाराज ने अपने "श्रमण सूत्र" ग्रन्थ में अति गवेषणापूर्ण विवेचन दिया है—हम उसे ही यहां उद्धृत करना विशेष उपयुक्त मान कर 'लेखक' के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए वह लेख यहाँ उद्धृत करते हैं। लेखक]

श्रावक-धर्म से आगे की कोटि साधु-धर्म की है। साधु-धर्म के लिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने आकाश यात्रा शब्द का प्रयोग किया है। अस्तु, यह साधु-धर्म की यात्रा साधारण यात्रा नहीं है। आकाश में उड़ कर चलना कुछ सहज बात है? और वह आकाश भी कैसा? संयम जीवन् की पूर्ण पवित्रता का आकाश। इस जड़ आकाश में तो मक्खी-मच्छर भी उड़ लेते हैं, परन्तु संयम-जीवन की पूर्ण पवित्रता के चैतन्य आकाश में उड़ने वाले विरले ही कर्मवीर मिलते हैं।

साधु होने के लिए केवल बाहर से वेष बदल लेना ही काफी नहीं है, यहां तो अन्दर से सारा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जीवन ही बदलना पड़ता है, जीवन का समूचा लक्ष्य ही बदलना पड़ता है। यह मार्ग फूलों का नहीं काँटों का है। नंगे पैरों जलती आग पर चलने जैसा दृश्य है साधु-जीवन का! उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन में कहा है कि—'साधु होना लोहे के जौ चबाना है, दहकती ज्वालाओं को पीना है, कपड़े के थैले को हवा से भरना है, मेरु पर्वत को तराजू पर रखकर तौलना है, और महा समुद्र को भुजाओं से तैरना है। इतना ही नहीं, तलवार की नग्न धार पर नंगे पैरों चलना है।'

वस्तुतः साधु-जीवन इतना ही उग्र जीवन है। वीर, धीर, गम्भीर, एवं साधक ही इस दुर्गम पथ पर चल सकते हैं—'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदिन्त।' जो लोग कायर हैं, साहस-हीन हैं, वासनाओं के गुलाम हैं, इन्द्रियों के चक्कर में हैं, और दिन-रात इच्छाओं की लहरों के थपेड़े खाते रहते हैं, वे भला क्यों कर इस क्षुर-धारा के दुर्गम पथ पर चल सकते हैं?

साधु-जीवन के लिए भगवान् महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में कहा है—"साधु को ममतारहित, निरहंकार, निःसंग, नम्र और प्राणिमात्र पर समभाव-युक्त रहना चाहिए। लाभ हो या हानि हो, सुख हो या दुःख हो, जीवन हो या मरण हो, निन्दा हो या प्रशंसा हो, मान हो, या अपमान हो, सर्वत्र सम रहना ही साधुता है। सच्चा मुनि न इस लोक में आसक्ति रखता है और न परलोक में। यदि कोई विरोधी तेज कुल्हाड़े से काटता है या कोई भक्त शीतल एवं सुगन्धित चन्दन का लेप लगाता है, मुनि को दोनों पर एक जैसा ही समभाव रखना होता है। वह कैसा मुनि जो क्षण-क्षण में राग-द्वेष की लहरों में बह निकले। न भूख पर नियंत्रण रख सके और न भोजन पर।"

निम्ममो निरहंकारो,
निस्संगो चत्त गारवो।
समो य सव्वभूएसु,
तसेसु थावरेसु य।
लाभाला भेसुहे दुक्खे,
जीविए मरणे तहा।
समो निंदा प्रसंसासु,
समो माणवमाणओ।
अणिस्सिओ इहं लोए,
परलोए अणिस्सिओ।
वासी चन्दणकप्पी य,
असणे अणसणे तहा॥

—उत्तरा० १६, ८६, ६२

भगवान महावीर की वाणी के अनुसार मुनि-जीवन न रागका जीवन है और न द्वेष का। वह तो पूर्ण रूपेण समभाव एवं तटस्थ वृत्ति का जीवन है। मुनी विश्व के लिये कल्याण एवं मंगल की जीवित मूर्ति है। वह अपने हृदय के कण कण में सत्य और करुणा का अपार अमृत सागर लिये भू-मण्डल पर विचरण करता है, प्राणी मात्र को विश्व मैत्री का अमर सन्देश देता है। वह समता के ऊंचे आदर्शों पर विचरण करता है। अपने मन, वाणी एवं शरीर पर कठोर नियंत्रण रखता है। संसार की समस्त भोग वासनाओं से सर्वथा अलिप्त रहता है और क्रोध, मान, माया एवं लोभ की दुर्गन्ध से हजार २ कोस की दूरी से बचकर चलता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देवाधिदेव श्रमण भगवन्त महावीर ने उपर्युक्त पूर्ण त्याग मार्ग पर चलने वाले मुनियों को मेरु पर्वत के समान अप्रकंप, समुद्र के समान गम्भीर, चन्द्रमा के समान शीतल, सूर्य के समान तेजस्वी और पृथ्वी के समान सर्वसह कहा है। सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्धान्तर्गत दूसरे क्रिया स्थान नामक अध्ययन में मुनि-जीवन सम्बन्धी उपमाओं की यह लम्बी श्रृंखला, आज भी हर कोई जिज्ञासु देख सकता है। इसी अध्ययन के अन्त में भगवान् ने मुनि जीवन को एकान्त पण्डित, आर्य, एकान्तसम्यक्, सुमुनि एवं सब दुःखों से मुक्त होने का मार्ग बताया है। 'एस ठाणे आयरिए जाव सव्वदुक्खपहीण मग्गे एगंतसम्मे सुसाहू।'

भगवती-सूत्र में पाँच प्रकार के देवों का वर्णन है। वहाँ भगवान् महावीर ने गौतम गणधर के प्रश्न का समाधान करते हुए मुनियों को साक्षात् भगवान् एवं धर्मदेव कहा है। वस्तुतः मुनि, धर्म का जीता-जागता देवता ही है। 'गोयमा! जे इमे अणगारा भगवन्तो इरियासमिया·····जाव गुत्तबभयारी, से तेणट्ठेण एवं वुच्चइ धम्मदेवा।'

—भग० १२ श० ६ उ०।

भगवती-सूत्र के १४ वें शतक में भगवान् महावीर ने साधुजीवन के अखण्ड आनन्द का उपमा के द्वारा एक बहुत ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। गणधर गौतम को सम्बोधित करते हुए भगवान् कह रहे हैं—"हे गौतम! एक मास की दीक्षा वाला श्रमण निर्ग्रन्थ वानव्यन्तर देवों के सुख को अतिक्रमण कर जाता है। दो मास की दीक्षा वाला नागकुमार आदि भवनवासी देवों के सुख को अतिक्रमण कर जाता है। इसी प्रकार तीन मास की दीक्षा वाला असुरकुमार देवों के सुख को, चार मास की दीक्षा ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओं के सुख को, पाँच मास की दीक्षा वाला ज्योतिष्क देव जाति के इन्द्र चन्द्र एवं सूर्य के सुख को, छः मास की दीक्षा वाला सौधर्म एवं ईशान देवलोक के सुख को, सात मास की दीक्षा वाला सनत्कुमार एवं माहेन्द्र देवों के सुख को, आठ मास की दीक्षा वाला ब्रह्मलोक एवं लांतक देवों के सुख को, नवमास की दीक्षा वाला आनन्त एवं प्राणत देवों के सुख को, दश मास की दीक्षा वाला आरण एवं अच्युत देवों के सुख को, ग्यारह मास की दीक्षा वाला नव ग्रैवेयक देवों के सुख को तथा बारह मास की दीक्षा वाला श्रमण अनुत्तरोपपातिक देवों के सुख को अतिक्रमण कर जाता है।" —भग० १४, ६।

पाठक देख सकते हैं—भगवान् महावीर की दृष्टि में साधुजीवन का कितना बड़ा महत्व है? बारह महीने की कोई विराट साधना होती है? परन्तु यह क्षुद्रकाल की साधना भी यदि सच्चे हृदय से की जाय तो उसका आनन्द विश्व के स्वर्गीय सुख साम्राज्य से बढ़ कर होता है। सर्व श्रेष्ठ अनुत्तरोपपातिक देव भी उसके समक्ष हतप्रभ, निस्तेज एवं निम्न हैं। साधुता का दंभ कुछ और है, और सच्चे साधुत्व का जीवन कुछ और! सच्चा साधु भूमण्डल पर साक्षात् भगवत्स्वरूप स्थिति में विचरण करता है। स्वर्ग के देवता भी उस भगवदात्मा के चरणों की धूल को मस्तक पर लगाने के लिए तरसते हैं। वैष्णव कवि नरसी महता कहता है—

आपा मार जगत में बैठे नहिं किसी से काम,
उनमें तो कुछ अन्तर नाहीं, संत कहो चाहे राम,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हम तो उन संतन के हैं दास,
जिन्होंने मन मार लिया।

सन्त कबीर ने भी मुनि को प्रत्यक्ष भगवान रूप कहा है और कहा है कि मुनि की देह निराकार की आरसी है, जिसमें जो चाहे वह अलख को अपनी आँखों से देख सकता है।

निराकार की आरसी, साधू ही की देह,
लख जो चाहे अलख को, इनही में लखि लेह।

सिक्ख-सम्प्रदाय के गुरु अर्जुन देव ने कहा है कि मुनि की महिमा का कुछ अन्त ही नहीं है, सचमुच वह अनन्त है बेचारा वेद भी उसकी महिमा का क्या वर्णन कर सकता है।

साधू की महिमा वेद न जानै,
जैता सुनै तेता बखानै।
साधू की सोभा का नहिं अन्त,
साधू की सोभा सदा बे-अन्त।

आनन्दकन्द व्रजचन्द्र श्री कृष्णचन्द्र ने भागवत में कहा है—सन्त ही मनुष्यों के लिए देवता हैं। वे ही उनके परम बान्धव हैं। सन्त ही उनकी आत्मा हैं। बल्कि यह भी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि सन्त मेरे ही स्वरूप हैं, अर्थात् भगवत्स्वरूप हैं।

देवता बान्धवाः सन्तः,
सन्त आत्माअहमेव च।
—भाग० ११।२६।३४।

जैन-धर्म में साधू का पद बड़ा ही महत्वपूर्ण है। आध्यात्मिकविकास क्रम में उसका स्थान छठा गुण स्थान है, और यहाँ से यदि निरन्तर ऊर्ध्वमुखी विकास करता रहे तो अन्त में वह चौदहवें गुणस्थान की भूमिका पर पहुँच जाता है और फिर सदा काल के लिए अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हो जाता है। जैन-साहित्य में मुनि जीवन सम्बन्धी आचार-विचार का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। ऐसा सूक्ष्म एवं नियम-बद्ध वर्णन अन्यत्र मिलना असंभव है। यही कारण है कि आज के युग में जहाँ दूसरे संप्रदाय के मुनिओं का नैतिक पतन हो गया है, किसी प्रकार का संयम ही नहीं रहा है, वहाँ जैन मुनि अब भी अपने संयम-पथ पर चल रहा है। आज भी उसके संयम-जीवन की झाँकी के दृश्य आचारांग, सूत्र कृतांग एवं दशवैकालिक आदि सूत्रों में देखे जा सकते हैं। हजारों वर्ष पुरानी परपरा को निभाने में जितनी दृढ़ता जैन-मुनि दिखा रहे है, उसके लिए जैन-सूत्रों का नियमबद्ध वर्णन ही धन्यवाद का पात्र है।

आगम-साहित्य में जैन-मुनि की नियमोपनियम सम्बन्धी जीवनचर्या का अतीव विराट एवं तलस्पर्शी वर्णन है। विशेष जिज्ञासुओं को उसी आगम-साहित्य से अपना पवित्र सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। यहाँ हम संक्षेप में पाँच महाव्रतों[1] का परिचय मात्र दे रहे हैं। आशा है, यह हमारा क्षुद्र उपक्रम भी पाठकों की ज्ञान वृद्धि एवं सच्चरित्रता में सहायक हो सकेगा।

अहिंसा महाव्रत

मन, वाणी एवं शरीर से काम, क्रोध, लोभ,

१—आचरितानि महद्भिर्,
यच्च महान्तं प्रसाधयन्त्यर्थम्।
स्वयमपि महान्ति यस्मान्
महाव्रतानीत्यतस्तानि॥
—आचार्य शुभचन्द्र

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मोह तथा भय आदि की दूषित मनोवृत्तियों के साथ किसी भी प्राणी को शारीरिक एवं मानसिक आदि किसी भी प्रकार की पीड़ा या हानि पहुँचाना, हिंसा है। केवल पीड़ा और हानि पहुँचाना ही नहीं उसके लिए किसी भी तरह की अनुमति देना भी हिंसा है। किं बहुना, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से किसी भी प्राणी को हानि पहुँचाना हिंसा से बचना अहिंसा है।

महापुरुषों द्वारा आचरण में लाए गये हैं, महान् अर्थ मोक्ष का प्रसाधन करते हैं, और स्वयं भी व्रतों में सर्व महान् हैं, अतः मुनि के अहिंसा आदि व्रत महाव्रत कहे जाते हैं।

योग-दर्शन के साधन-पाद में महाव्रत की व्याख्या के लिए ३१ वाँ सूत्र है—'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः महाव्रतम्।' इसका भावार्थ है—जाति, देश, काल और समय की सीमा से रहित सब अवस्थाओं में पालन करने योग्य नियम महाव्रत कहलाते हैं।

जाति द्वारा संकुचित—गौआदि पशु अथवा ब्राह्मण की हिंसा न करना।

देश द्वारा संकुचित—गंगा, हरिद्वार आदि तीर्थ भूमि में हिंसा न करना।

काल द्वारा संकुचित—एकादशी, चतुर्दशी आदि तिथियों में हिंसा नहीं करना।

समय द्वारा संकुचित—देवता अथवा ब्राह्मण आदि के प्रयोजन की सिद्धि के लिए हिंसा करना, अन्य प्रयोजन से नहीं। समय का अर्थ यहाँ प्रयोजन है।

इस प्रकार की संकीर्णता से रहित सब जातियों के लिए सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा अहिंसा, सत्य आदि पालन करना महाव्रत है।

अहिंसा और हिंसा की आधार-भूमि अधिकतर भावना पर आधारित है। मन में हिंसा है तो बाहर में हिंसा हो तब भी हिंसा है, और हिंसा न हो तब भी हिंसा है। और यदि मन पवित्र है, उपयोग एवं विवेक के साथ प्रवृत्ति है तो बाहर में हिंसा होते हुए भी अहिंसा है। मन में द्वेष न हो, घृणा न हो, अपकार की भावना न हो, अपितु प्रेम हो करुणा की भावना हो, कल्याण का संकल्प हो तो शिक्षार्थ उचित ताड़ना देना, रोग-निवारणार्थ कटु औषधि देना सुधारार्थ या प्रायश्चित्त के लिए दण्ड देना हिंसा नहीं है। परन्तु जब ये ही द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह एवं भय आदि की दूषित वृत्तियों से मिश्रित हों तो हिंसा हो जाती है। मन में किसी भी प्रकार का दूषित भाव लाना हिंसा है। यह दूषित भाव अपने मन में हो, अथवा संकल्प पूर्वक अपने निमित्त से किसी दूसरे के मन में पैदा किया हो, सर्वत्र हिंसा है। इस हिंसा से बचना प्रत्येक साधक का परम कर्तव्य है।

जैन-मुनि अहिंसा का सर्वश्रेष्ठ साधक है। वह मन, वाणी और शरीर में से हिंसा के तत्वों को निकाल कर बाहर फेंकता है, और जीवन के कण-कण में अहिंसा के अमृत का संचार करता है। उसका चिन्तन करुणा से ओत-प्रोत होता है, उसका भाषण दया का रस बरसाता है, उसकी प्रत्येक शारीरिक प्रवृति में अहिंसा की झनकार निकलती है। वह अहिंसा का देवता है। अहिंसा भगवती उसके लिए ब्रह्म के समान उपास्य है। हिंस्य और हिंसक दोनों के कारण के लिए ही वह हिंसा से निवृत्ति करता है, अहिंसा का प्रण लेता है। सब काल में सब प्रकार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से सब प्राणियों के प्रति चित्त में अणुमात्र भी द्रोह न करना ही अहिंसा का सच्चा स्वरुप है। और इस स्वरुप को जैन-मुनि न दिन में भूलता है और न रात में, न जगते में भूलता है और न सोते में, न एकान्त में भूलता है और न जन समूह में।

जैन-श्रमण की अहिंसा, व्रत नहीं महाव्रत है। महाव्रत का अर्थ है महान् व्रत, महान् प्रण। उक्त महाव्रत के लिए भगवान महावीर 'सव्वाओ पाणाइवायओ विरमण' शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ है मन वचन और कर्म से न स्वयं हिंसा करना, न दूसरों से करवाना और न हिंसा करने वाले दूसरे लोगों का अनुमोदन ही करना। अहिंसा का यह कितना ऊंचा आदर्श है! हिंसा को प्रवेश करने के लिए कहीं छिद्रमात्र भी नहीं रहा है। हिंसा तो क्या, हिंसा की गन्ध भी प्रवेश नहीं पा सकती।

एक जैनाचार्य ने बालजीवों को अहिंसा का मर्म समझाने के लिए प्रथम महाव्रत के ८१ भंग वर्णन किये हैं। पृवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय—ये नौ प्रकार के संसारी जीव हैं। उनकी न मन से हिंसा करना, न मन से हिंसा कराना, न मन से हिंसा का अनुमोदन करना। इस प्रकार २७ भंग होते हैं। जो बात मन के सम्बन्ध में कही गई है, वही बात वचन और शरीर के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिये। हां, तो मन के २७, वचन के २७, और शरीर के २७, सब मिल कर ८१ भंग हो जाते हैं।

जैन साधु की अहिंसा का यह एक संक्षिप्त एवं लघुतम वर्णन है। परन्तु यह वर्णन भी कितना महान् और विराट है! इसी वर्णन के आधार पर जैन साधु न कच्चा जल पीता है, न अग्नि का स्पर्श करता है, न सचित्त वनस्पति का ही कुछ उपयोग करता है। भूमि पर चलता है तो नंगे पैरों चलता है, और आगे साढ़े तीन हाथ परिमाण भूमि को देखकर फिर कदम उठाता है। मुख के उष्ण श्वास से भी किसी वायु आदि सूक्ष्म जीव को पीड़ा न पहुँचे, इसके लिए मुख पर मुखवस्त्रिका का प्रयोग करता है। जन साधारण इस क्रिया काण्ड में एक विचित्र अटपटेपन की अनुभूति करता है। परन्तु अहिंसा के साधक को इस में अहिंसा भगवती के सूक्ष्म रूप की झाँकी मिलती है।

सत्य महाव्रत

वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही सत्य है। उक्त सत्य का शरीर से काम में लाना शरीर का सत्य है, वाणी से कहना वाणी का सत्य है, और विचारमें लाना मन का सत्य है। जो जिस समय जिसके लिए जैसा यथार्थ रूप से करना, कहना एवं समझना चाहिए, वही सत्य है। इनके विपरीत जो भी सोचना, समझना, कहना और करना है, वह असत्य है।

सत्य, अहिंसा का ही विराट रूपान्तर है। सत्य का व्यवहार केवल वाणी से ही नहीं होता है, जैसा कि सर्व-साधारण जनता समझती है। उसका मूल उद्गम-स्थान मन है। अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना ही सत्य है। अर्थात् जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, जैसा अनुमान किया हो, वैसा ही वाणी से कथन करना और मन में धारण करना, सत्य है। वाणी के सम्बन्ध में यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि केवल सत्य कह देना ही

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सत्य नहीं है, अपितु सत्य कोमल एवं मधुर भी होना चाहिये। सत्य के लिए अहिंसा मूल है। अतः यथार्थ ज्ञान के द्वारा यथार्थ रूप में अहिंसा के लिए जो कुछ विचारना, कहना एवं करना है, वही सत्य है। दूसरे व्यक्ति को अपने बोध के अनुसार ज्ञान कराने के लिये प्रयुक्त हुई वाणी धोखा देने वाली और भ्रान्ति में डालने वाली न हो, जिससे किसी प्राणी को पीड़ा तथा हानि न हो, प्रत्युत सब प्राणियों के उपकार के लिए हो, वही श्रेष्ठ सत्य है। जिस वाणी में प्राणियों का हित न हो, प्रत्युत प्राणियों का नाश हो तो वह सत्य होते हुए भी सत्य नहीं है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति द्वेष से दिल दुखाने के लिए अन्धे को तिरस्कार के साथ अन्धा कहता है तो यह असत्य है, क्योंकि यह एक हिंसा है। और जहाँ हिंसा है, वह सत्य भी असत्य है, क्योंकि हिंसा सदा असत्य है। कुछ अविवेकी पुरुष दूसरे के हृदय को पीड़ा पहुंचाने वाले दुर्वचन कहने में ही अपने सत्यवादी होने का गर्व करते हैं, उन्हें ऊपर के विवेचन पर ध्यान देना चाहिए।

जैन-श्रमण सत्यव्रत का पूर्णरूपेण पालन करता है, अतः उसका सत्य महाव्रत कहलाता है। वह मन, वचन और शरीर से न स्वयं असत्य का आचरण करता है, न दूसरे से करवाता है, और न कभी असत्य का अनुमोदन ही करता है। इतना ही नहीं, किसी तरह का सावद्य वचन भी नहीं बोलता है। पापकारी वचन बोलना भी असत्य ही है। अधिक बोलने में असत्य की आशंका रहती है, अतः जैन-श्रमण अत्यन्त मितभाषी होता है। उसके प्रत्येक वचन से स्व-पर कल्याण की भावना टपकती है, अहिंसा का स्वर गूँजता है। जैन-मुनि के लिए हँसी में भी झूठ बोलना निषिद्ध है। प्राणों पर संकट उपस्थित होने पर भी सत्य का आश्रय नहीं छोड़ा जा सकता। सत्य महाव्रती की वाणी में अविचार, अज्ञात, क्रोध, मान, माया लोभ, परिहास आदि किसी भी विकार का अंश नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि मुनि दूर से पशु आदि को लैंगिक दृष्टि से अनिश्चय होने पर सहसा कुत्ता, बैल, पुरुष आदि के रूप में निश्चयकारी भाषा नहीं बोलता। ऐसे प्रसंगों पर वह कुत्ते की जाति, बैल की जाति, मनुष्य की जाति, इत्यादि जातिपरक भाषा का प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र आदि का भी उपयोग नहीं करता। ज्योतिष आदि की प्ररूपणा में भी हिंसा एवं असत्य का संमिश्रण है।

जैन-मुनि जब भी बोलता है, अनेकान्तवाद को ध्यान में रखकर बोलता है। वह 'ही' का नहीं, 'भी' का प्रयोग करता है। अनेकान्तवाद का लक्ष्य रखे बिना सत्य की वास्तविक उपासना भी नहीं हो सकती। जिस वचन के पीछे 'स्यात्' लग जाता है, वह असत्य भी सत्य हो जाता है। क्योंकि एकान्त असत्य है, और अनेकान्त सत्य। स्यात् शब्द अनेकान्त का द्योतक है, अतः यह एकान्त को अनेकांत बनाता है, दूसरे शब्दों में कहें तो असत्य को सत्य बनाता है। आचार्य सिद्धसेन की दार्शनिक एवं आलंकारिक वाणी में यह स्यात् वह अमोघ स्वर्णरस है, जो लोहे को सोना बना देता है। 'नचास्तव स्यात्पदलाञ्छिता इमे, रसोपविद्धा इव लोहधातवः।'

एक आचार्य सत्य महाव्रत के ३६ भंगों का निरूपण करते हैं। क्रोध, लोभ, भय और हास्य इन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चार कारणों से झूठ बोला जाता है। अस्तु, उक्त चार कारणों से न स्वयं मन से असत्यरण करना, न मन से दूसरों से कराना, न मन से अनुमोदन करना, इस प्रकार मनोयोग के १२ भंग हो जाते हैं। इसी प्रकार वचन के १२ और शरीर १२, सब मिल कर सत्य महाव्रत के ३६ भंग होते हैं।

अचौर्य महाव्रत

अचौर्य, अस्तेय एवं अदत्तादानविरमण सब एकार्थक है। अचौर, अहिंसा और सत्य का ही विराट रूप है। केवल छिपकर या बलात्कार-पूर्वक किसी व्यक्ति की वस्तु एवं धन का हरण कर लेना ही स्तेय नहीं है, जैसा कि साधारण मनुष्य समझते हैं। अन्यायपूर्वक किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र का अधिकार हरण करना भी चोरी है। जैन-धर्म का यदि हम सूक्ष्म निरीक्षण करें तो मालूम होगा कि भूख से तंग आकर उदरपूर्त के लिए चोरी करने वाले निर्धन एवं असहाय व्यक्ति स्तेय पाप के उतने अधिक अपराधी नहीं हैं जितने कि निम्न श्रेणी के बड़े माने जाने वाले लोग।

(१) अत्याचारी राजा या नेता, जो अपनी प्रजा के न्यायप्राप्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नागरिक अधिकारों का अपहरण करता है।

(२) अपने को धर्म का ठेकेदार समझने वाले संकीर्ण हृदय, समृद्धिशाली, ऊँची जाति के सवर्ण लोग; भ्रान्तिवश जो नीची जाति के कहे जाने वाले निर्धन लोगों के धार्मिक, सामाजिक तथा नागरिक अधिकारों का अपहरण करते हैं।

(३) लोभी जमींदार, जो गरीब किसानों का शोषण करते हैं, उन पर अत्याचार कर हैं।

(४) मिल और फैक्ट्रियों के लोभी मालिक, जो मजदूरों को पेट-भर अन्न न देकर सबका सब नफा स्वयं हड़प जाते हैं।

(५) लोभी साहूकार, जो दूना-तिगुना सूद लेते हैं और गरीब लोगों की जायदाद आदि अपने अधिकार में लाने के लिए सदा सचिन्त रहते हैं।

(६) धूर्त व्यापारी, जो वस्तुओं में मिलावट करते हैं, उचित मूल्य से ज्यादा दाम लेते हैं, और कम तोलते हैं।

(७) घूंसखोर न्यायाधीश तथा अन्य अधिकारी गण, जो वेतन पाते हुए भी अपने कर्तव्य-पालन में प्रमाद करते हैं और रिश्वत लेते हैं।

(८) लोभी वकील, जो केवल फीस के लोभ से झूठे मुकदमे लड़ाते हैं और जानते हुए भी निरपराध लोगों को दण्ड दिलाते हैं।

(९ लोभी वैद्य, जो रोगी का ध्यान न रखकर केवल फीस का लोभ रखते हैं और ठीक औषधि नहीं देते हैं।

(१०) वे सब लोग, जो अन्याय पूर्वक किसी भी अनुचित रीति से किसी व्यक्ति का धन, वस्तु समय, श्रम और शक्ति का अपहरण एवं अपव्यय करते हैं।

अहिंसा, सत्य एवं अचौर्य व्रत की साधना करने वालों को उक्त सब पाप व्यापारों से बचना है, अत्यन्त सावधान से बचना है। जरासा भी यदि कहीं चोरी का छेद होगा तो आत्मा का पतन अवश्यं-भावी है। जैन-गृहस्थ भी इस प्रकार की चोरी से बचकर रहता है, और जैन-श्रमण तो पूर्णरूप से चोरी का त्यागी होता ही है। वह मन, वचन और कर्म से न स्वयं किसी प्रकार की चोरी करता है, न

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दूसरों से करवाता है, और न चोरी का अनुमोदन ही करता है। और तो क्या, वह दाँत कुरेदने के लिये तिनका भी बिना आज्ञा ग्रहण नहीं कर सकता है। यदि साधु कहीं जंगल में हो, वहाँ तृण, कंकर, पत्थर अथवा वृक्ष के नीचे छाया में बैठने और कहीं शौच जाने की आवश्यकता हो तो शास्त्रोक्त विधि के अनुसार उसे इन्द्रदेव की ही आज्ञा लेनी होती है। अभिप्राय यह है कि बिना आज्ञा के कोई भी वस्तु न ग्रहण की जा सकती है और न उसका क्षणिक उपयोग ही किया जा सकता है। पाठक इसके लिए अत्युक्ति का भ्रम करते होंगे। परन्तु साधक को इस रूप में व्रत पालन के लिए सतत जागृत रहने की स्फूर्ति मिलती है। व्रतपालन के क्षेत्र में तनिक सा शैथिल्य (ढील) किसी भी भारी अनर्थ का कारण बन सकता है। आप लोगों ने देखा होगा कि तम्बू की प्रत्येक रस्सी खूंटे से कस कर बाँधी जाती है। किसी एक के भी थोड़ी सी ढीली रह जाने से तम्बू में पानी आ जाने की सम्भावना बनी रहती है।

अस्तु, अचौर्य व्रत की रक्षा के लिए साधु को बार-बार आज्ञा ग्रहण करने का अभ्यास रखना चाहिए। गृहस्थ से जो भी चीज ले, आज्ञा से ले। जितने काल के लिए ले, उतनी देर ही रक्खे, अधिक नहीं। गृहस्थ आज्ञा भी देने को तैयार हो, परन्तु वस्तु यदि साधु के ग्रहण करने के योग्य न हो तो न ले। क्योंकि ऐसी वस्तु लेने से देवाधिदेव तीर्थंकर भगवान की चोरी होती है। गृहस्थ आज्ञा देने वाला हो, वस्तु भी शुद्ध हो, परन्तु गुरुदेव की आज्ञा न हो तो फिर भी ग्रहण न करे। क्योंकि शास्त्रानुसार यह गुरु अदत्त है, अर्थात् गुरु की चोरी है।

एक आचार्य तीसरे अचौर्य महाव्रत के ५४ भंगों का निरूपण करते हैं। अल्प=थोड़ी वस्तु, बहु=अधिक वस्तु, अणु=छोटी वस्तु, स्थूल वस्तु, सचित्त=शिष्य आदि, अचित्त=वस्त्र पात्र आदि उक्त छः प्रकार की वस्तुओं की न स्वयं मन से चोरी करे, न मन से चोरी कराए, न मन से अनुमोदन करे। ये मन के १८ भंग हुए। इसी प्रकार वचन के १८, और शरीर के १८, सब मिलाकर ५४ भंग होते हैं। अचौर्य महाव्रत के साधक को उक्त सब भंगों का दृढ़ता से पालन करना होता है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत

ब्रह्मचर्य अपने आप में एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है। शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक आदि सभी ब्रह्मचर्य पर निर्भर हैं। ब्रह्मचर्य वह आध्यात्मिक स्वास्थ्य है, जिसके द्वारा मानव-समाज पूर्ण सुख और शान्ति को प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता के सम्बन्ध में भगवान् महावीर कहते हैं कि देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी दैवी शक्तियाँ ब्रह्मचारी के चरणों में प्रणाम करती हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्य की साधना बड़ी ही कठोर साधना है। जो ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं, वस्तुतः वे एक बहुत बड़ा दुष्कर कार्य करते हैं—

देव-दाणव-गंधव्वा,
जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति,
दुक्करं जे करेंति ते॥

—उत्तराध्ययन-सूत्र

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भगवान महावीर की उपर्युक्त वाणी को आचार्य श्री शुभचन्द्र भी प्रकारान्तर से दुहरा रहे हैं—

एकमेव व्रतं श्लाघ्यं,
ब्रह्मचर्य जगत्त्रये।
यद्-विशुद्धि समापन्नाः,
पूज्यन्ते पूजितैरपि॥

—ज्ञानार्णव

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए काम के वेग को रोकना होता है। यह वेग बड़ा ही भयंकर है। जब आता है तो दृढ़ी से बड़ी शक्तियाँ भी लाचार हो जाती हैं। मनुष्य जब वासना के हाथ का खिलौना बनता है तो बड़ी दयनीय स्थिति में पहुँच जाता है। वह अपनेपन का कुछ भी भान नहीं रखता, एक प्रकार से पागल-सा हो जाता है। धन्य हैं वे महा-पुरुष, जो इस वेग पर नियंत्रण रखते हैं और मन को अपना दास बना कर रखते हैं। महाभारत में व्यास की वाणी है कि—'जो पुरुष वाणी के वेग को, मन के वेग को, क्रोध के वेग को, काम करने की इच्छा के वेग को, उदर (कामवासना) के वेग को रोकता है, उसको मैं ब्रह्मवेत्ता मुनि समझता हूँ।'

वाजो वेगं, मनसः क्रोध-वेगं,
विधित्सा वेगमुदरोपस्थ-वेगम्।
एतान् वेगान् यो विषहेदुदीर्णांस
तं मन्येऽहंब्राह्मणं वै मुनिं च॥
(महाभ शान्ति० २६६। १४)

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल सम्भोग में वीर्य का नाश न करते हुए उपस्थ इन्द्रिय का संयम रखना ही नहीं है। ब्रह्मचर्य का क्षेत्र बहुत व्यापक क्षेत्र है। अतः उपस्थेन्द्रिय के संयम के साथ-साथ अन्य इन्द्रियों का निरोध करना भी आवश्यक है। वह जितेन्द्रिय साधक ही पूर्ण ब्रह्मचर्य पाल सकता है, जो ब्रह्मचर्य के नाश करने वाले उत्तेजक पदार्थों के खाने, कामोद्दीपक दृश्यों के देखने, और इस प्रकार की वार्ताओं के सुनने तथा ऐसे गन्दे विचारों को मन में लाने से भी बचता है।

आचार्य शुभचन्द्र ब्रह्मचर्य की साधना के लिए निम्नलिखित दश प्रकार के मैथुन से विरत होने का उपदेश देते हैं—

(१) शरीर का अनुचित संस्कार अर्थात् कामोत्तेजक शृंगार आदि करना।
(२) पौष्टिक एवं उत्तेजक रसों का सेवन करना।
(३) वासनामय नृत्य और गीत आदि देखना, सुनना।
(४) स्त्री के साथ संसर्ग=घनिष्ठ परिचय रखना।
(५) स्त्री सम्बन्धी संकल्प रखना।
(६) स्त्री के मुख, स्तन आदि अंग-उपांग देखना।
(७) स्त्री के अंग दर्शन संबंधी संस्कार मन में रखना।
(८) पूर्व भोगे हुए काम भोगों का स्मरण करना।
(९) भविष्य के काम भोगों की चिन्ता करना।
(१०) परस्पर रतिकर्म अर्थात् सम्भोग करना।

जैन भिक्षु उक्त सब प्रकार के मैथुनों का पूर्ण त्यागी होता है। वह मन, वचन और शरीर से न स्वयं मैथुन का सेवन करता है, न दूसरों से सेवन करवाता है, और न अनुमोदन ही करता है। जैन भिक्षु एक दिन की जन्मी हुई बच्ची का भी स्पर्श नहीं कर सकता। उस के स्थान पर रात्रि को कोई भी स्त्री नहीं रह सकती। भिक्षु की माता और बहन को भी रात्रि में रहने का अधिकार नहीं है। जिस मकान में स्त्री के चित्र हों उसमें भी भिक्षु नहीं रह सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यही बात साध्वि के लिये पुरुषों के सम्बन्ध में हैं।

एक आचार्य चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के २७ भंग बतलाते हैं। देवता सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी और तिर्यञ्च-सम्बन्धी तीन प्रकार का मैथुन है। उक्त तीन प्रकार का मैथुन न मन से सेवन करना, न मन से सेवन करवाना, न मन से अनुमोदन करना, ये मनः सम्बन्धी ६ भंग होते हैं। इसी प्रकार वचन के ६, और शरीर के ६, सब मिलकर २७ भंग होते हैं। महाव्रती साधक को उक्त सभी भगों का निरतिचार पालन करना होता है।

अपरिग्रह महाव्रत

धन, सम्पत्ति, भोग-सामग्री आदि किसी भी प्रकार की वस्तुओं का ममत्व-मूलक संग्रह करना परिग्रह है। जब मनुष्य अपने ही भोग के लिए स्वार्थ बुद्धि में आवश्यकता से अधिक संग्रह करता है तो यह परिग्रह बहुत ही भयंकर हो उठता है। आवश्यकता की यह परिभाषा है कि आवश्यक वह वस्तु है, जिसके बिना मनुष्य की जीवन यात्रा, सामाजिक मर्यादा एवं धार्मिक क्रिया निर्विघ्नता-पूर्वक न चल सके। अर्थात् जो सामाजिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक उत्थान में साधन-रूप से आवश्यक हो। जो गृहस्थ इस नीति मार्ग पर चलते हैं, वे तो स्वयं भी सुखी रहते हैं और जनता में भी सुख का प्रवाह बहाते हैं। परन्तु जब उक्त व्रत का यथार्थ रूप से पालन नहीं होता है तो समाज में बड़ा भयंकर हाहाकार मचजाता है। आज समाज की जो दयनीय दशा है, उसके मूल में यही आवश्यकता से अधिक संग्रह का विष रहा हुआ है। आज मानव-समाज में जीवनोपयोगी सामग्री का उचित पद्धति से वितरण नहीं है। किसी के पास सैकड़ों मकान खाली पड़े हुए हैं तो किसी के पास रात में सोने के लिए एक छोटी-सी झोंपड़ी भी नहीं हैं। किसी के पास अन्न के सैकड़ों कोठे भरे हुए हैं तो कोई दाने-दाने के लिए तरसता भूखा मर रहा है। किसी के पास संदूकों में बन्द सैकड़ों तरह के वस्त्र सड़ रहे हैं तो किसी के पास तन ढाँपने के लिए भी कुछ नहीं है। आज की सुख सुविधाएँ मुट्ठी भर लोगों के पास एकत्र हो गई हैं और शेष समाज अभाव से ग्रस्त है। न उसकी भौतिक उन्नति ही हो रही है और न आध्यात्मिक। सब ओर भुखमरी की महाचारी जनता का सर्व ग्रास करने के लिए मुंह फैलाए हुए है। यदि प्रत्येक मनुष्य के पास केवल उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप ही सुख-सुविधा की साधन-सामग्री रहे तो कोई मनुष्य भूखा, गृहहीन एवं असहाय न रहे। भगवान् महावीर का अपरिग्रह-वाद ही मानव जाति का कल्याण कर सकता है, भूखी जनता के आँसू पोंछ सकता है।

भगवान् महावीर ने गृहस्थों के लिए मर्यादित अपरिग्रह का विधान किया है, परन्तु भिक्षु के लिए पूर्ण अपरिग्रही होने का। भिक्षु का जीवन एक उत्कृष्ट धर्म जीवन है, अतः वह भी यदि परिग्रह के जाल में फँसा रहे तो क्या खाक धर्म की साधना करेगा? फिर गृहस्थ और भिक्षु में अन्तर ही क्या रहेगा?

जैन धर्म ग्रन्थों में परिग्रह के निम्न लिखित नौ भेद किए हैं। गृहस्थ के लिए इनकी अमुक मर्यादा करने का विधान है और भिक्षू के लिए पूर्ण रूप से त्याग करने का।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(१) १ क्षेत्र—जंगल में खेती-बाड़ी के उपयोग में आने वाली धान्य भूमि को क्षेत्र कहते हैं। यह दो प्रकार का है—सेतु और केतु। नहर, कुआ आदि कृत्रिम साधनों से सींची जाने वाली भूमि को सेतु कहते हैं और केवल वर्षा के प्राकृतिक जल से सींची जाने वाली भूमि को केतु।

(२) वास्तु—प्राचीन काल में घर को वास्तु कहा जाता था।

यह तीन प्रकार का होता है—खात, उच्छ्रित और खातोच्छ्रित। भूमिग्रह अर्थात् तलघर को 'खात' कहते हैं। नींव खोदकर भूमि के ऊपर बनाया हुआ महल आदि 'उच्छ्रित' और भूमिगृह के ऊपर बनाया हुआ भवन 'खातोच्छ्रित' कहलाता है।

(३) हिरण्य—आभूषण आदि के रूप में गढी हुई तथा बिना गढ़ी हुई चाँदी।

(४) सुवर्ण—गढ़ा हुआ तथा बिना गढ़ा हुआ सभी प्रकार का स्वर्ण। हीरा, पन्ना, मोती आदि जवाहरात भी इसी में अन्तर्भूत हो जाते हैं।

(५) धन—गुड़, आदि।

(६) धान्य—चावल, गेहुँ बाजरा आदि।

(७) द्विपद—दास, दासी आदि।

(८) चतुष्पद-हाथी, घोड़ा, गाय आदि पशु।

(९) कुप्य-धातु के बने हुए पात्र, कुरसी, मेज आदि घर-गृहस्थी के उपयोग में आने वाली वस्तुएँ।

जैनश्रमण उक्त सब परिग्रहों का मन, वचन और शरीर से न स्वयं संग्रह करता है, न दुसरों से करवाता है और न करने वालों का अनुमोदन ही करता है। पूर्णरूपेण असंग, अनासक्त, अकिंचन वृत्ति का धारक होता है। कौड़ीमात्र परिग्रह भी उसके लिए विष है। और तो क्या, वह अपने शरीर पर भी ममत्व भाव नहीं रख सकता। वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि जो कुछ भी उपकरण अपने पास रखता है, वह सब संयम-यात्रा के सुचारु रूप से पालन करने के निमित्त ही रखता है, ममत्वबुद्धि से नहीं। ममत्वबुद्धि से रक्खा हुआ उपकरण जैनसंस्कृति की भाषा में उपकरण नहीं रहता, अधिकरण हो जाता है, अनर्थ का मूल बन जाता। कितना ही अच्छा सुन्दर उपकरण हो, जैनश्रमण न उस पर मोह रखता है, न अपने पन का भाव लाता है, न उसके खोए जाने पर आर्तध्यान हीं करता है। जैन भिक्षु के पास वस्तु केवल वस्तु बनकर रहती है, वह परिग्रह नहीं बनती। क्योंकि परिग्रह का मूल मोह है, मूर्च्छा है, आसक्ति है, ममत्व है, साधक के लिए यही सबसे बड़ा परिग्रह है। आचार्य शय्यंभव दशवैकालिक सूत्र में भगवान महावीर का संदेश सुनाते हैं—'मूर्च्छा परिग्गहो वुत्तो नाइपुत्तेण ताइणा।' आचार्य उमास्वाति कहते हैं—'मूर्च्छा परिग्रहः।' मूर्च्छा का अर्थ आसक्ति है। किसी भी वस्तु में, चाहे वह छोटी, बड़ी, जड, चेतन, बाह्य एवं आभ्यन्तर आदि किसी भी रूप में हो, अपनी हो या पराई हो, उसमें आसक्ति रखना, उसमें बंध जाना, एवं उसके पीछे पडकर अपना आत्म-विवेक खो बैठना, परिग्रह है। बाह्य वस्तुओं को परिग्रह का रूप यह मूर्च्छा ही देती है। यही सबसे बड़ा विष है। अतः जैनधर्म भिक्षु के लिए जहाँ बाह्य धन, सम्पत्ति आदि परिग्रह के त्याग का विधान करता है, वहाँ ममत्व भाव आदि अन्तरंग परिग्रह के त्याग पर भी विशेष बल देता है। अन्तरंग परिग्रह के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

त्याग पर भी विशेष बल देता है। अन्तरंग परिग्रह के मुख्य रूपेण चौदह भेद हैं—मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ।

जैन भिक्षु का आचरण अतीव उच्चकोटि का आचरण है। उसकी तुलना आस-पास में अन्यत्र नहीं मिल सकती। वह वस्त्र, पात्र आदि उपधि भी अत्यन्त सीमित एवं संयमोपयोगी ही रखता है। अपने वस्त्र पात्रादि वह स्वयं उठा कर चलता है। संग्रह के रूप में किसी गृहस्थ के यहां जमा करके नहीं छोड़ता है। सिक्का, नोट एवं चेक आदि के रूप में किसी प्रकार की भी धन संपत्ति नहीं रख सकता। एक बार का लाया हुआ भोजन अधिक से अधिक तीन पहर ही रखने का विधान है, वह भी दिन में ही। रात्रि में तो न भोजन रखा जा सकता है और न खाया जा सकता है। और तो क्या, रात्रि में एक पानी की बूँद भी नहीं पी सकता। मार्ग में चलते हुए भी चार मील से अधिक दूरी तक आहार पानी नहीं लेजा सकता। अपने लिए, बनाया हुआ न भोजन ग्रहण करता है और न वस्त्र, पात्र, मकान आदि। वह सिर के बालों को हाथ से उखाड़ता है, लोंच करता है। जहां भी जाना होता है नंगे पैरों पैदल जाता है, किसी भी सवारी का उपयोग नहीं करता।

जैनधर्म का प्राचीन इतिहास

['आदि युग' तथा तीर्थंकर परम्परा]

जैन वैज्ञानिकों ने समय प्रवाह (काल चक्र) को दो विभागों में विभाजित किया है—१ उत्सर्पिणी काल २ अवसर्पिणी काल अथवा उत्कर्ष और अपकर्ष काल। 'चक्रनेमी-क्रम' की तरह यह संसार कभी उत्कर्ष की उत्कट पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो कभी अपकर्ष की चरम सीमा पर।

उत्सर्पिणी (उत्कर्ष) काल के ६ उपविभाग हैं, इन्हें जैन दृष्टि अनुसार ६ 'आरे' कहते हैं– १ दुखमा दुखम २ दुखम ३ दुखमा सुखम ४ सुखमा दुखम ५ सुखम६ सुखमा सुखम। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल में यह संसार उत्तरोत्तर सुख की ओर बढ़ता हुआ छट्ठे आरे में पूर्ण सुख को प्राप्त होता है जिसे वैदिक प्रणालो का सतयुग कह सकते हैं।

इसी प्रकार अवसर्पिणी (अपकर्ष) काल के ६ आरे निम्न हैं– १ सुखमा सुखम २ सुखम ३ सुखमा दुखम ४ दुखमा सुखम ५ दुखम ६ दुखमा दुखम।

वर्तमान काल अवसर्पिणी कालका ५ वाँ आरा 'दुखम' है।

जैन मान्यतानुसार हर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं और वे नई संघ व्यवस्था करते हैं, जिसे 'तीर्थ परुपणा' कहा जाता है। इस तीर्थ में ४ पद होते हैं:-१ साधु (श्रमण) २ साध्वी ३ श्रावक और ४ श्राविका। इन्हें तीर्थ कहते हैं इन चार विभागों से युक्त संघ-संगठन की तीर्थ परुपणा याने तीर्थ स्थापना करने वाले को तीर्थंकर रूप में पूजा जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन मान्यतानुसार ऐसी अनन्त चौबिसियां हुई हैं और हर आगामी काल में होती रहेंगी। वर्तमान चौवीसी के परम आराध्य तीर्थंकर भगवानों के शुभनाम आदि इस प्रकार हैं:--

॥ तीर्थंकरों के माता पितादिक ॥

	नाम	जन्मस्थान	माता	पिता	लछन	जन्म
१	ऋषभदेव	विनीता	मरुदेवी	नाभिराजा	वृषभ	चै० कृ० ८
२	अजितनाथ	अयोध्या	विजया	जित शत्रु	हाथी	म० शु० ८
३	संभवनाथ	सावत्थी	सेन्या	जितारी	अश्व	म० शु०१४
४	अभिनन्दन	अयोध्या	सिद्धारथ	संवर	बंदर	म० शु० २
५	सुमतिनाथ	अयोध्या	सुमंगला	मेघरथ	क्रौंच	वै० शु० ८
६	पद्मप्रभु	कौशांबी	सुसीमा	श्रीधर	पद्म	का० कृ०१२
७	सुपार्श्वनाथ	वणारसी	पृथ्वी	सुप्रतिष्ठ	स्वास्तिक	जे० शु० १२
८	चंद्रप्रभु	चंद्रपुरी	लक्ष्मणा	महासेन	चंद्रमा	पौ० कृ०१२
९	सुविधिनाथ	काकंदी	श्यामा	सुग्रीव	मगर	म० कृ० ५
१०	शीतलनाथ	भद्दिलपुर	नंदा	दृढरथ	श्रीवत्स	म० कृ० १२
११	श्रेयांसनाथ	सिंहपुरी	विष्णु	विष्णु	गेंडा	फा०कृ० १२
१२	वासुपूज्य	चंपापुरी	जया	वसुपूज्य	भैंसा	का० कृ० १४
१३	विमलनाथ	कपिलपुर	श्यामा	कृतवर्म	सुअर	म० शु० ३
१४	अनंतनाथ	अयोध्या	सुयशा	सिंहसेन	बाज	व० कृ० १३
१५	धर्मनाथ	रत्नपुरी	सुव्रता	भानु	वज्र	म० शु० ३
१६	शांतिनाथ	हस्तिनापुर	अचिरा	विश्वसेन	मृग	ज्ये० कृ०१३
१७	कुंथुनाथ	हस्तिनापुर	श्रीदेवी	सूरराज	बकरा	वै० कृ० १४
१८	अरहनाथ	हस्तिनापुर	श्रीदेवी	सुदर्शन	नंदावर्त	म० शु० १०
१९	मल्लीनाथ	मथुरा	प्रभावती	कुंभराज	कुम्भ	म० शु० १०
२०	मुनिसुव्रत	राजग्रही	पद्मावती	सुमित्र	कछुआ	जे० कृ० ८
२१	नेमिनाथ	मथुरा	वप्रादेवी	विजयसेन	नीलकमल	श्री० कृ० ८
२२	नेमिनाथ	सौरीपुर	शिवादेवी	समुद्रविजय	शंख	श्री० शु० ५
२३	पार्श्वनाथ	वणारसी	वामादेवी	अश्वसेन	सर्प	पो० कृ० १०
२४	महावीर स्वामी	क्षत्रियकुंड	त्रिशला	सिद्धार्थ	सिंह	चै० शु० १

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भगवान ऋषभदेव

अनादिकालीन जगत् के जिस काल से मानव का सभ्यता भरा व्यवहारिक स्वरूप ज्ञात होता है वहीं से 'आदि युग' माना गया है।

इस 'आदि युग' के सर्व प्रथम शिक्षक जिन्होंने मानव को मानवीय सभ्यता और व्यवहार की शिक्षा दी वे हैं 'आदिनाथ भगवान श्री ऋषभदेवजी"।

भगवान ऋषभदेव के काल में न गांव बसे थे न नगर। न खेती होती थी न और कोई धंधा। वह काल अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे 'सुखमा दुखम' का समय था। 'कल्प वृक्ष' युग का अंतिम काल था वह। यानि मनोवांछित पदार्थ प्रदान करने वाले कल्प वृक्षों का सुख धीरे २ लोप होने जा रहा था।

अतः अब मानव को पुरुषार्थ का भान करना था और उसे श्रमशील बनने का मार्ग बताना था। यह सर्व जगत् के आद्य गुरु "भगवान ऋषभदेव" ने किया। वे ही तत्कालीन कल्प वृक्षों के सुख में अनाथ बनने जा रहे हैं जगत् के मार्ग दर्शक और रक्षक बने इसी से संसार में 'आदिनाथ भगवान' के नाम से वे सदा काल सुविख्यात हैं और रहेंगे।

भगवान रिषभदेव के सम्बन्ध में वैदिक धर्म ग्रन्थ श्री मद् भागवत के पंचम और बारहवें स्कंध में स्तुति पूर्ण विशेष उल्लेख हैं।

भगवान रिषभदेव के काल को जैन धर्म में 'युगलिया काल' भी कहते हैं। पुराणों में आये 'यम-यमी' के संवाद से भी इस जैन मान्यता का समर्थन मिलता है।

प्रायः एक बालक और एक बालिका जुड़वां ही उत्पन्न होते थे और उनके वयस्क होने पर परस्पर विवाह सम्बन्ध भी हो जाता था। सच तो यह है कि उस समय के मनुष्य बड़े भद्र स्वभावी और पवित्र विचारों के होते थे।

किन्तु यह निर्मलता धीरे धीरे समाप्त होने लगी थी, कल्प वृक्षों ने भी अब मनः इच्छित फल देना बंद कर दिया था-प्रकृति का वैभव क्षीण होने लगा था। युगलियों में परस्पर कलह और असंतोष बढ़ने लगा। ऐसे समय भगवान रिषभदेव ने जगत् को मानव सभ्यता का नया पाठ पढ़ाया और उन्हें असि, मसि, कृषि आदि जीवनोपयोगी समस्त शिक्षाएँ दीं खेती द्वारा अन्न उत्पन्न करना, वस्त्र बनाना, भोजन बनाना, बर्तन बनाना, घर बनाना, आदि सभी कार्य सीखा कर स्वावलम्बी बनाने का महान् प्रयत्न किया। युगलियों में जब आपस में विशेष झगड़े होने लगे तो जन नायक के रूप में 'राजा' बनाने का निश्चय किया गया। भगवान रिषभदेव के नेतृत्व में ही सर्व प्रथम विनीता नामक नगरी बसाई गई जो आगे जाकर अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध हुई। नाभिराजा को सर्व प्रथम 'राजा' माना गया।

इस प्रकार भगवान रिषभदेव ने भोग भूमि को कर्म भूमि में परिणित किया। स्त्रियों को चौंसठ और पुरुषों को बहत्तर कला निधान बनाया। अक्षर ज्ञान और लिपी विज्ञान की शिक्षा दी। इस प्रकार भगवान ने असि (शस्त्र) मसि (लेखन) और कृषि (खेती) की सर्व प्रथम शिक्षा देकर इस जगत् को महान् संकट से उबार लिया।

एक ही माता पिता की संतान के बीच होने वाले विवाह (युगलिया धर्म) का भी भगवान ने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

निवारण कर नवीन विवाह विधि का प्रचलन किया और स्वयं अपनी सहोदरा सुमंगला के अतिरिक्त सुनन्दा नामक अन्य कन्या से विधिवत विवाह किया। कन्या अपने सहोदर भाई के अवसान के कारण हतोत्साहित और अनाथ बन गई थी। भगवान ने अपने आदर्श गृहस्थाश्रम द्वारा जगत् को गृहस्थ-धर्म की शिक्षा दी। सुमंगला के परम प्रतापी 'भरत' नामक पुत्र हुए। ये बड़े ही प्रतिभाशाली, और इस युग के प्रथम चक्रवर्ती हुए। इन्हीं भरत के नाम से ही हमारा देश "भारतवर्ष" कहलाता है। सुनंदा के गर्भ से बाहुबली उत्पन्न हुए। ये महान् शूरवीर कर्मवीर और धर्मवीर थे। इन्होंने अपनी महान् तपस्या से जगत् का चमत्कृत किया था। भरत और बाहुबली के सिवाय भगवान के अट्ठानवें और पुत्र थे यानि कुल सौ पुत्र और ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की २ कन्याएं थीं। भगवान ने ब्राह्मी को प्रथम लिपि का ज्ञान प्रदान किया था इसीसे "ब्राह्मी लिपि" प्रसिद्ध है। प्रजा के संगठन को सुव्यस्थित बनाने हेतु से वर्ण व्यवस्था भी उसी काल में हुई। परन्तु उसमें भी कर्म की ही प्रधानता रक्खी गई। इस प्रकार भगवान रिषभदेव ने जीवनोपयोगी साधनों के उत्पादन की, सामाजिक प्रथाओं की राजनैतिक रीति नीतियों की सामाजिक प्रथाओं आदि आवश्यक बातों की सुन्दर व्यवस्था की।

इस प्रकार मानव जाति की सभी आवश्यकताओं की पूर्ण व्यवस्था कर भगवान ने आत्म कल्याण का मार्ग अपनाया। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रों में बांट दिया और स्वयं संसार का त्याग कर चार हजार पुरुषों के साथ भागवती दीक्षा अंगीकार कर महान् श्रमण बन गये।

एक हजार वर्ष तक कठोर आत्म साधना में लीन रहे। तपश्चर्या करते हुए ग्रामानुग्राम विचरण करते रहे। भगवान ने बारह मास तक पूर्ण निराहारी रह कठोर तपस्या की। इस कठोर साधना से उन्होंने पुरमिताल नगर केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान प्राप्त के पश्चात् भगवान ने धर्म का उपदेश दिया। उन्होंने स्त्री और पुरुष को समानता देते हुए चार तीर्थ की स्थापना की—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। भगवान ने साधु तथा ग्रहस्थ के कर्तव्यों का उपदेश प्रदान किया उसी आत्म कल्याण कारी मार्ग का नाम 'जैन धर्म' है।

कतिपय लोग भगवान रिषभदेव को केवल पौराणिक पुरुष मानते हैं और उनकी यथार्थता में शंका करते हैं। यह शंका निर्मूल है। भगवान रिषभदेव का उल्लेख केवल जैन ग्रन्थों में ही नहीं वरन वैदिक ग्रन्थ भागवत, वेदों और पुराणों तथा बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त है। "जैन धर्म की प्राचीनता" शीर्षक पिछले पृष्ठों में ऐसे उल्लेखों का वर्णन दिया जा चुका है।

बौद्धाचार्य आर्यदेवने "सतशास्त्र" में भगवान रिषभदेव को जैन धर्म का आदि प्रचार लिखा है। आचार्य धर्म कीर्ति ने भी सर्वज्ञ के उदाहरण में रिषभ और महावीर का उल्लेख किया है। धर्मपद के "उसमें पवरवीरं" पद नं० ४२२ में यह उल्लेख है। इन उद्धरणों से उनकी यथार्थता में किंचित भी शंका करना निर्मूल है।

मानव जाति के महान् उद्धार कर्त्ता और आदि गुरु भगवान रिषभदेव की जय हो! जय हो!!

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इनके पश्चात् द्वितीय तीर्थंकर श्री अजीतनाथजी से लेकर इक्कीसवें तीर्थंकर अत्यन्त प्राचीन काल में हो गये हैं। जिनके विशेष विवरण कम सुलभ हैं। एतदर्थ कलि काल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री मद् हेमचन्द्राचार्य रचित "श्री त्रिषष्ठी श्लाघ्य महापुरुष" ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये।

१६वें श्री शांतिनाथजी, १७ वें श्री कुंथुनाथजी और १८ वें श्री अरहनाथजी अपने राज्य काल में चक्रवर्ती थे। श्वेताम्बर जैन मान्यतानुसार उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथजी स्त्री रूप में थे। विश्व के किसी भी धर्म में स्त्री जाति को इस प्रकार धर्म संस्थापक रूप में महानता देकर समदृष्टि पूर्ण उदारता प्रकट नहीं की गई है जैसी कि जैन धर्म में सुलभ है। बीसवें तीर्थंकर श्री मुनि सुव्रत स्वामी के समय श्रीराम और सीता हुए।

बावीसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमी (नेमीनाथजी) हुए। ये कर्मयोगी श्री कृष्ण के पैतृक भाई थे।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर भंडारकर ने भगवान नेमीनाथ को ऐतिहासिक महा पुरुष स्वीकार किया है। नेमीनाथ देवकी पुत्र श्री कृष्ण के चचेरे भाई और यदुवंश के कुल दीपक थे। उन्होंने ठीक लग्न के मौके पर भोजनार्थ मांस के लिये एकत्र किये गये पशुओं की करुण-क्रन्दन सुनकर लग्न करने से मुंह मोड़कर उन्हें अभयदान प्रदान करने का महान साहस कर, विश्व में अहिंसा धर्म का दुंदुभीनाद किया। तेवीसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को भी वर्तमान सभी इतिहासकर एवं विद्वान मानते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ—

ऐतिहासिक विद्वानों ने इनका समय ईसा से पूर्व ८०० वर्ष माना है। विक्रम संवत् पूर्व ८२० से ७२० तक का आपका जीवनकाल है। महावीर स्वामी के निर्वाण से २५० वर्ष पूर्व आपका निर्वाण काल है।

भगवान् पार्श्वनाथ अपने समय के युगप्रवर्त्तक महापुरुष थे। वह युग तापसों का युग था। हजारों तापस उग्र शारीरिक क्लेशों के द्वारा साधना किया करते थे। कितने ही तापस वृक्षोंपर औंधे मुँह लटका करते थे। कितने ही चारों ओर अग्नि जला कर सूर्य की आतापना लेते थे। कई अपने आपको भूमि में दबा कर समाधि लेते थे। अग्नितापसों का उस समय बड़ा प्राबल्य था। शारीरिक कष्टों की अधिकता में ही उस समय धर्म समझा जाता था। जो साधक जितना अधिक देह को कष्ट देता था वह उतना ही अधिक महत्व पाता था। भोलीभाली जनता इन विवेक शून्य क्रिया काण्डों में धर्म समझती थी, इस प्रकार उस समय देहदण्ड का खूब दौरदौरा था। भगवान् पार्श्वनाथ ने धर्म के नामपर चलते हुए उस पाखण्ड के विरुद्ध प्रबल क्रान्ति की। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि विवेक हीन क्रिया काण्डों का कोई महत्व नहीं है। सत्य विवेक के बिना किया गया घोरतम तपश्चरण भी किसी काम का नहीं है। हजार वर्ष पर्यन्त उग्र देहदमन किया जाय परन्तु यदि विवेक का अभाव है तो वह व्यर्थ होता है। विवेक शून्य क्रियाकाण्ड आत्मा को उन्नत बनाने के बजाय उसका अधः पतन करने वाला होता है। भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन की यही सर्वोत्तम महानता है कि उन्होंने देहदमन की अपेक्षा आत्मसाधना पर विशेष जोर दिया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कमठ, उस समय का एक महान् प्रतिष्ठा प्राप्त तापस था। वह वाराणसी के बाहर गंगातट पर डेरा डाल कर पंचाग्नि तप किया करता था। इस पंचाग्नि तप के कारण वह हजारों लोगों का श्रद्धाभाजन और माननीय बना हुआ था। हजारों लोग उसके दर्शन के लिए जाते थे। पार्श्वनाथ भी वहाँ गये। उन्होंने देखा कि तापस की धूनी में जलने वाली बड़ी २ लकड़ियों में नाग और नागिनी भी जल रहे हैं। उनका अन्तःकरण इस दृश्य को देखकर द्रवित हो गया। साथ ही उन्होंने इस पाखण्ड को, ढोंग को आडम्बर को दूर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। तात्कालिन प्रथा के विरुद्ध और बहुमत वाले लोकमत के खिलाफ आवाज उठाना साधारण काम नहीं है इसके लिए प्रबल आत्मबल की आवश्यकता होती है। पार्श्वनाथ ने निर्भयता पूर्वक अपने अन्तःकरण की आवाज को उस तापस के सामने रक्खी। उसके साथ धर्म के सम्बन्ध में गम्भीर चर्चा की और सत्य का वास्तविक स्वरूप जनता के सामने रखा। उन्होंने अपने पर आने वाली जोखिम की परवाह न करते हुए स्पष्ट उद्घोषित किया कि ऐसा तप अधर्म है जिसमें निरपराध प्राणी मरते हों। पार्श्वनाथ की सत्यमय, ओजस्वी और युक्तियुक्त वाणी को सुनकर कमठ हतप्रभ होगया। पार्श्वनाथ ने जलते हुए नाग नागिनी को बचाया और उन्हें सम्यक धर्म शरण के द्वारा सद्गति का भागी बनाया। कमठ पर पार्श्वनाथ की विवेक शून्य देह दण्ड पर आत्मसाधना की विजय थी।

आत्मा का शुद्ध स्वरूप, कर्म जनित विकार और कर्मविकार से मुक्त होने के उपायों का भगवान् पार्श्वनाथ ने तत्कालीन जनता को भलीभांति दिग्दर्शन कराया। आत्मा की साधना और मोक्ष की प्राप्ति के लिए, उन्होंने चार महाव्रतों का पालन करने का विधान किया। वे चार महाव्रत इस प्रकार हैं:— (सव्वाओ पाणाइवायाओवेरमणं) सब प्रकार की हिंसा से दूर रहना, (सव्वाओ मुसावायाओवेरमणं) सब प्रकार के मिथ्याभाषण से दूर रहना, (सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं) सब प्रकार के अदत्तादान से दूर रहना और (सव्वाओं बहिद्धादाणाओ वेरमणं) सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करना। अर्थात् अहिंसा, सत्य, अचौर्य और अपरिग्रह की आराधना करने से आत्मा का सर्वांगीण विकास हो सकता है। अपरिग्रह में ब्रह्मचर्य का भी समावेश हो जाता था क्योंकि उसकाल में स्त्री भी परिग्रह समझी जाती थी। इस प्रकार पार्श्वनाथ ने चतुर्याम मय धर्म का उपदेश दिया। बाह्य क्रिया काण्डों और विवेक शून्य दैहिक तपस्याओं के चक्कर में फँसी हुई जनता को आत्मतत्व और आत्मविकास का उपदेश देकर भगवान् पार्श्वनाथ ने विश्व का महान् कल्याण किया।

सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् श्री धर्मानन्द कौशाम्बीने "भारतीय संस्कृति और अहिंसा" नामक अपनी पुस्तक में पार्श्वनाथ के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है:—

"परिक्षित के बाद जननेजय हुए और उन्होंने कुरुदेश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झंडा लहराया। उसी समय काशी देश में पार्श्व एक नवीन संस्कृति की आधार शिला रख रहे थे।"

"श्री पार्श्वनाथ का धर्म सर्वथा व्यवहार्य था हिंसा, असत्य, अस्तेय और परिग्रह का त्याग करना,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह चतुर्याम संवरवाद उनका धर्म था। इसका इन्होंने भारत में प्रचार किया। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुव्यवस्थित रूप देने का, यह प्रथम ऐतिहासिक उदाहरण है।

"श्री पार्श्वमुनि ने सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियमों के साथ अहिंसा का मेल बिठाया। पहले अरण्य में रहने वाले ऋषि मुनियों के आचरण में जो अहिंसा थी, उसे व्यवहार में स्थान न था अस्तु उक्त तीन नियमों के सहयोग से अहिंसा सामाजिक बनी, व्यवहारिक बनी।

"श्री पार्श्वमुनि ने अपने धर्म के प्रचार के लिए संघ बनाया। बौद्ध साहित्य से ऐसा मालूम होता है कि बुद्ध के काल में जो संघ अस्तित्व में थे उनमें जैन साधु तथा साध्वियों का संघ सब से बड़ा था।"

उक्त उदाहरण से भगवान पार्श्वनाथ के महान जीवन की झाँकी मिल जाती है। भगवान पार्श्वनाथ वाराणसी-नरेश अश्वसेन और महारानी श्री वामा देवी के सुपुत्र थे। गृहस्थदशा में भी आपने विवेक शून्य बापसों से विचार संघर्ष किया और सत्य प्रचार का मंगल आरम्भ किया तत्पश्चात् राजसी वैभव को ठुकरा कर आप आत्म साधना के लिए निर्ग्रन्थ बन गये। आपके हृदय में समभाव का श्रोत उमड़ रहा था। साधनावस्था में कमठ ने इन्हें भीषण कष्ट दिये परन्तु आप उस पर भी दया का श्रोत बहाते रहे। धरणेन्द्र ने आपकी उस उपसर्ग से रक्षा की तो भी उस पर अनुराग न हुआ। आपत्तियों का पहाड़ गिराने वाले कमठ पर न तो द्वेष हुआ और न भक्ति करने वाले धरणेन्द्र पर अनुराग हुआ। इस प्रकार पार्श्वप्रभु ने अखण्ड साम्यभाव की सफल साधना की। परिणाम स्वरूप आपको केवल ज्ञान का आलोक प्राप्त हुआ। आपने विश्वकल्याण के लिए चतुर्विध संघ की स्थापना की और ज्ञान का प्रकाश फैलाया। सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर आप निर्वाण पधारे।

प्रभु पार्श्वनाथ के बाद उनके आठ गणधरों में से शुभदत्त संघ के मुख्य गणधर हुए इनके बाद हरिदत्त, आर्यसमुद्र, प्रभ और केशि हुए। पार्श्वनाथ के निर्वाण और केशि स्वामी के अधिकार पद पर आने के बीच के काल में पार्श्वनाथ प्रभु के द्वारा उपदिष्ट व्रतों के पालन में क्रमशः शिथिलता आगई थी। इस समय निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में काल प्रवाह के साथ विकार प्रविष्ट हो गये थ। सद्भाग्य से ऐसे समय में पुनः एक महाप्रतापी महापुरुष का जन्म हुआ, जिन्होंने संघ को नवीन संस्कार प्रदान किये। ये महापुरुष थे चरम तीर्थंकर, भगवान महावीर।

भ० महावीर और उनकी धर्म क्रान्ति

प्राचीन भारत के धार्मिक इतिहास में भगवान् महावीर प्रबल और सफल क्रांतिकार के रूप में उपस्थित होते हैं। उनकी धर्म क्रान्ति से भारतीय धर्मों के इतिहास का नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। वे तत्कालीन धर्मों का काया कल्प करने वाले और उन्हें नव जीवन प्रदान करने वाले युग निर्माता महापुरुष हुए। विश्व में अहिंसा धर्म की प्रतिष्ठा का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं महामानव महावीर को है। मानव जाति के इस महान् शिक्षक की उदात्त शिक्षाओं के अनुसरण में ही सच्चा सुख और शाश्वत शान्ति सन्निहित है। इस सत्य को यह विश्व जितना जल्दी समझ सकेगा उतना ही उसका कल्याण हो सकेगा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और वह सच्चा शांति निकेतन बन सकेगा। डा० वाल्टर शूब्विंग ने नितान्त सत्य ही कहा "संसार सागर में डूबते हुए मानवोंने अपने उद्धार के लिए पुकारा इसका उत्तर श्री महावीर ने जीव के उद्धार का मार्ग बता कर दिया। दुनिया में ऐक्य और शांति चाहने वालों का ध्यान महावीर की उदात्त शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।" सचमुच भगवान महावीर मानव जाति के महान् त्राता के रूप में अवतरित हुए।

महावीर स्वामी का जन्म विक्रम संवत् पूर्व ५४२ (ईस्वी सन् पूर्व ५९९) में हुआ। इनकी जन्मभूमि क्षत्रियकुण्डपुर है। यह स्थान वर्तमान बिहार प्रदेश के पटना नगर के उत्तर में आये हुए वैशाली (वर्तमान बसाड़) प्रदेश का मुख्य नगर था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था। इनके पिता ज्ञातृवंश के प्रभावशाली राजा थे। वैसे ये क्षत्रियों के स्वाधीन तंत्र मण्डल के प्रमुख थे। इन सिद्धार्थ का विवाह वैशाली के अधिपति चेटक राजा की बहन त्रिशला के साथ हुआ। इसीसे इनके महान् प्रभावशाली होने का परिचय मिलता है। भगवान् महावीर का जन्म ज्ञातृकुल में हुआ इसलिए वे ज्ञातपुत्र के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। इनका गौत्र काश्यप था। माता पिता ने इनका नाम वर्धमान रक्खा था क्योंकि इनके जन्म से उनकी सम्पत्ति में वृद्धि हुई थी। किन्तु सम्पत्ति की निःसारता से प्रेरित होकर उन्होंने त्याग और तपस्या का जीवन स्वीकार किया। उनकी घोर अत्युत्कट साधना के कारण इनका नाम महावीर होगया और इसी नाम से वे विशेष प्रसिद्ध हुए। वर्धमान नाम इतना प्रचलित नहीं है जितना इनका आत्म गुणनिष्पन्न महावीर नाम।

भगवान् महावीर के माता पिता भ० पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। अतः बचपन में महावीर भी त्यागी महात्माओं के संसर्ग में आये हों यह सम्भव है। महावीर राजकुमार थे, सब प्रकार के सुखोपभोग के साधन उन्हें प्राप्त थे उनके चारों ओर संसारिक सुख वैभव बिछा पड़ा था। यह सब कुछ था, परन्तु महावीर के हृदय में कुछ दूसरी ही भावनाएँ काम कर रही थी। उनका चित्त सांसारिक सुखों से ऊपर उठकर किसी गम्भीर चिन्तन में लगा रहता था। वे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और विविध परिस्थितियों पर विचार करते थे। उनका चित्त उस काल के धार्मिक और सामाजिक पतन के कारण खिन्नसा रहता था उस समय का विकारमय वातावरण उन्हें क्रान्ति की चुनौति दे रहा था उस चुनौति का स्वीकार करने के लिए उनके चित्त में पर्याप्त मन्थन हो रहा था। उन्होंने उन परिस्थिति में आमूल चूल क्रान्ति पैदा करने का संकल्प कर लिया था। वे दीर्घदर्शी थे अतः उन्होंने एकदम बिना साधना के क्रान्ति के क्षेत्र में उतरने का साहस नहीं किया, उन्होंने क्रांति पैदा करने के पहले अपने आपको तैयार करना और अपनी दुर्बलताओं पर विजयप्राप्त करना अधिक हितकारी समझा। इसलिए अपनी २८ वर्ष की उम्र में माता पिता के स्वर्गवासी हो जाने पर उन्होंने त्याग मार्ग, आत्मसाधना का मार्ग स्वीकार करना चाहा। परन्तु उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन के आग्रह के कारण दो वर्ष तक गृहस्थ जीवन में ही वे तपस्वियों-सा अलिप्त जीवन बिताते हुए रहे और परिस्थिति का अध्ययन करते हुए अपनी तैयारी करते रहे। अन्ततोगत्वा तीस वर्ष की भरी जवानी में विशाल साम्राज्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लक्ष्मी को ठुकरा कर मार्गशीर्ष कृष्ण दसवीं के दिन पूर्ण अकिञ्चन भिक्षु के रूप में वे निर्जन वनों की ओर चल पड़े।

महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए ध्यान, धारणा, समाधि और उपवास अनशन आदि सात्विक तपस्याओं का आश्रय लिया। वे मानव समाज से अलग दूर पर्वतों की कन्दराओं में और गहन वन प्रदेशों में रहकर आत्मा की अनन्त, परन्तु प्रसुप्त आध्यात्मिक शक्तियों को जगाने में ही संलग्न रहे। एक से एक भयंकर आपत्तियों ने उन्हें घेरा, अनेक प्रलोभनों ने उन्हें विचलित करना चाहा परन्तु भगवान हिमालय की तरह अडोल रहे। जिन घटनाओं का वर्णन पढ़ने से हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से जिस जीवन पर गुजरी होंगी वह कितना महान् होगा!

साधनाकाल में भगवान महावीर ने दीर्घ तपस्वी बन कर असह्य परिषह और उपसर्ग सहन किये। कठोर शीत, गरमी, डांस मच्छर और नाना क्षुद्र जन्तु जन्य परिताप को उन्होंने समभाव से सहन किया। बालकों ने कुतूहल वश उन्हें अपने खेलका साधन बनाया, पत्थर और कंकर फेंके। अनार्यों ने उनके पीछे कुत्ते छोड़े। स्वार्थी और कामी स्त्री-पुरुषों उन्हें भयंकर यातनाएँ दीं। परन्तु उन्होंने अरक्तद्विष्ट भाव से सब कुछ सहन किया। वे कभी श्मसान में रह जाते, कभी खंडहर में, कभी जंगल में और कभी वृक्ष की छाया में। उन्होंने कभी अपने निमित्त बना हुआ आहार-पानी ग्रहण नहीं किया शुद्ध भिक्षाचर्या से जो कुछ जैसा तैसा मिला उसीसे निर्वाह किया। उन्होंने साढ़े बारह वर्ष के लम्बे साधना काल में सब मिलाकर ३४० से अधिक दिन भोजन नहीं किया। कितनी कठोर साधना है!

उन महासाधक ने कभी प्रमाद का अवलम्बन नहीं किया। सदा अप्रमत्त होकर साधना में लीन रहे। रात्रि में भी निद्रा का त्याग कर वे ध्यानस्थ रहते। मानापमान को उस जितेन्द्रिय पुरुष ने समभाव से सहन किया। इस प्रकार आन्तरिक और बाह्य सब प्रकार के कष्टोंको उन्होंने जिस समभाव से सहन किया वह सचमुच विस्मय का विषय है। उनकी साधना काल का जीवन अपूर्णता की ओर प्रस्थित एक अप्रमत संयमी का खुला हुआ जीवन है। उन्होंने अपने जीवन के द्वारा अपने उपदेशों की व्यावहारिकता सिद्ध की है। जो कुछ उन्होंने अपने जीवन में किया, जिस कार्य को करके उनने अपना साध्य सिद्ध किया वही उन्होंने दूसरों के सामने रक्खा। उससे अधिक कोई कठिन नियम उन्होंने दूसरों के लिए नहीं बताये। सचमुच महावीर का जीवन मानवीय आध्यात्मिक विकास का एक जीता जागता आदर्श है। वे केवल उपदेश देने वाले नहीं परन्तु स्वयं आचरण करने के बाद दूसरों को मार्ग बताने वाले सच्चे महापुरुष थे।

भगवान् महावीर ने संसारिक सुखों को छोड़कर संयम का मार्ग अपनाते समय प्रतिज्ञा की थी कि मैं किसी भी प्राणी को पीड़ा न दूंगा, सर्व सत्वों से मैत्री रक्खूँगा, अपने जीवन में जितनी भी बाधाएँ उपस्थित होंगी उन्हें बिना किसी दूसरे की सहायता के समभाव पूर्वक सहन करूँगा। इस प्रतिज्ञा को एक वीर पुरुष की तरह इन्होंने निभाया, इसीलिए वे महावीर कहलाये। अहिंसा और सत्य की निरन्तर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

साधना के बल से उन्होंने अपने समस्त दोषों विकारों और दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर ली। साढ़े बारह वर्ष तक दीर्घ तपस्या का अनुष्ठान करने के पश्चात् उन्हें अपने लक्ष्य में सफलता मिली। वे वीतराग बनगये। आत्मा की अनन्त ज्ञान ज्योति जगमगा उठी। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन उन्हें केवलज्ञान और केवल दर्शन का विमल प्रकाश प्राप्त हुआ। तब वे लोगों को हित का उपदेश देने वाले तीर्थंकर बने। यह है महावीर की कठोर साधना और उसका दिव्य-भव्य परिणाम।

भगवान महावीर के उपदेश और उनकी क्रान्ति को समझने के पहले उस काल की परिस्थिति का ज्ञान करना आवश्यक है। महापुरुष अपने समय की परिस्थिति के अनुसार अपना सुधार आरम्भ करते है। अपने समय के वातावरण में आये हुए विकारों में सुधार करना ही उनका प्रधान काम हुआ करता है। अतः हमें यहां यह देखना है कि भगवान् महावीर के सामने कैसी परिस्थिति थी। उस समय भारत के धार्मिक क्षेत्र में वैदिक कर्मकाण्डों का प्राबल्य था। सब तरफ हिंसक यज्ञों का दौरदौरा था। लाखों मूक पशुओं की लाशें यज्ञ की बलिवेदी पर तड़फती रहती थीं। पशु ही नहीं बालक, वृद्ध और लक्षण सम्पन्न युवक तक देव पूजा के बहम से मौत के घाट उतारे जाते थे। यज्ञों में जितनी अधिक हिंसा की जाती थी उतना ही अधिक उसका महत्व समझा जाता था। ब्राह्मणों ने धार्मिक अनुष्ठानों को अपने हाथ में रख लिया था। देवों और मनुष्यों का सम्बन्ध पुरोहित की मध्यस्थता के बिना हो सकता था। सहायक के तौर पर नहीं बल्कि स्थिर स्वार्थों की रक्षा के लिए प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में ब्राह्मणों ने अपनी सत्ता अनिवार्य कर दी थी। धार्मिक विधि-विधान भी जटिल बना दिये गये थे ताकि उन्हें सम्पन्न कराने वाले पुरोहित के बिना काम ही न चले। इस तरह ब्राह्मण वर्ग ने अपना एकाधिपत्य जमा रखा था। उन्होंने अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए जातिवाद का भूत खड़ा कर रक्खा था। जिसके अनुसार वे अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानकर समाज के एक वर्ग को सर्वथा हीन मानते थे। अपने ही खड़े किये जातिवाद के आधार पर उन्होंने शुद्रों को धार्मिक एवं सामाजिक लाभों से वंचित कर दिया था। स्त्रियों की स्वतन्त्रता का अपहरण हो चुका था। उन्हें धार्मिक अनुष्ठान का स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं था। सामाजिक क्षेत्र में रातदिन की दासता के सिवा और कोई उनका काम हीं नहीं था। "स्त्री-शूद्रौ नाधीयेताम्" का खूबप्रचार था। मनुष्यों का महान् व्यक्तित्व नष्ट हो चुका था और वे अपने आपको इन ब्राह्मण पुजारियां के हाथ का खिलौना बनाये हुए थे। प्रत्येक नदी नाला, प्रत्येक ईट-पत्थर प्रत्येक झाड़-झंखाड देवता माना जाता था। भोला समाज अपने आपको दीन मान कर इनके आगे अपना मस्तक रगड़ता फिरता था। इस तरह आध्यात्मिक और संस्कृतिक पतन के काल में भगवान महावीर को अपना सुधार-कार्य प्रारम्भ करना पड़ा।

अपनी अपूर्णताओं को पूर्ण करने के पश्चात् विमल केवल-ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर भगवान् महावीर ने लोक-कल्याण के लिए उपदेश देना प्रारंभ किया। उन्होंने अपने उपदेशों के द्वारा मानवता को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जागृत करने का प्रयत्न किया। इसके लिए तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक भ्रान्त रूढ़ियों के विरुद्ध उन्होंने प्रबल आन्दोलन किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि धर्म, बाह्य क्रिया काण्डों ही के द्वारा नहीं किन्तु आत्मा के गुणों का विकास करने से होता है। धर्म के नाम पर की जाने वाली याज्ञिकी हिंसा धर्म का कारण नहीं बल्कि घोर पाप का कारण है। हिंसा से धर्म होना मानना, विष खाकर जीवित रहने के समान असम्भव कल्पना है। उन्होंने हिंसक यज्ञों के विरुद्ध प्रबल क्रान्ति की। ब्राह्मण धर्म गुरुओं की दाम्भिकताका पर्दा-फाश किया। जिस जातिवाद के आधार पर वे अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए थे उसके विरुद्ध महावीर ने सिंहनाद किया। उन्होंने जाति-पांति के भेद भाव को निर्मूल बताया। उन्होंने डंके की चोट यह उद्घोषणा की कि मानव मात्र ही नहीं, प्राणी-मात्र धर्म का अधिकारी है। धर्म किसी वर्ग या व्यक्ति की पैतृक सम्पत्ति नहीं, वह सर्वसाधारण के लिए है। प्रत्येक प्राणी को धर्म के आराधन का अधिकार है। धर्म की दृष्टि में जाति की कोई महत्ता नहीं। मानव मानव के बीच भिन्नता की जाति पांति की दीवार खड़ी करने वाले जातिवाद के विरुद्ध भगवान् महावीर ने प्रबलतम आन्दोलन किया। इसके फलस्वरूप अन्धविश्वासों के दुर्ग ढह-ढह कर भूमिसात् होने लगे। ब्राह्मण गुरुओं के चिर प्रतिष्ठित सिंहासन हिल उठे। चारों ओर क्रान्ति का ज्वाला मुखी फूट पड़ा। प्राचीनता के पुजारियों ने प्रचलित परम्पराओं की रक्षा के लिए तनतोड प्रयत्न किये, नम क्रान्ति को मिटाने के लिए अनेक उपायों का प्रयोग किया। महान् क्रान्तिकार के मार्ग में काँटे बिछाये; पर महापुरुष इन बाधाओं से कब रुका करते है? वे तो अपने निश्चित ध्येय की ओर अविराम आगे बढ़ते रहते हैं और साध्य पर पहुँच कर ही विराम लेते हैं। पुराण पन्थियों के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी भगवान् महावीर के सचोट और सक्रिय उपदेशों ने जनता में क्रान्ति की लहर व्याप्त कर दी। हिंसामय धर्म कृत्यों के प्रति जनता में घृणा के भाव पैदा हो गये और ब्राह्मण धर्म गुरुओं के एकाधिपत्य को उसने अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार भगवान महावीर की धर्म-क्रान्ति ने तत्कालीन भारत की काया पलट दी।

भगवान महावीर के उपदेश का सार थोड़े शब्दों में इस प्रकार दिया जा सकता है—सब जीव जीवन और सुख के अभिलाषी हैं, दुःख और मरण सब को अप्रिय है, सब को जीना अच्छा लगता है, जीवन है, जीवन सब को वल्लभ है। मरना कोई नहीं चाहता। अतएव जीवो और दूसरे को जीने दो। अहिंसा की आराधना ही सच्चा धर्म है। यह धर्म ही शुद्ध है, ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और सब त्रिकालदर्शी अनुभवियों के अनुभव का निचोड़ है। (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र ये जाति से नहीं किन्तु कर्म से होते हैं। जन्मगत जाति का कोई महत्व नहीं। जन्म से ऊँची-नीच का भेद वास्तविक नहीं मिथ्या है। धर्माचरण और शास्त्र श्रवण का सबको समान अधिकार है। ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म-आत्मा के स्वरूप को जाने और अहिंसा धर्म का पालन करे। (३) यज्ञ का अर्थ आत्म बलिदान है जिस में हिंसा होती है वह यज्ञ, वास्तविक यज्ञ नहीं है। (४) आत्मा का उद्धार आत्मा ही अपने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पुरुषार्थ से कर सकता है और वह परमात्मा बन सकता है। आत्मा पर लगे हुए कर्म के आवरणों को सम्यग ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र के द्वारा दूर कर प्रत्येक व्यक्ति मुक्ति का अधिकारी हो सकता है। (५) आत्मा स्वयं अपने कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है। इस तरह भगवान् महावीर के उपदेश और सिद्धांतों को हम इन चार विभागों के समाविष्ट कर सकते हैं:—(१) अहिंसावाद (२) कर्मवाद (३) साम्यवाद और (४) स्याद्वाद।

भगवान् महावीर की अहिंसा-प्रधान उपदेश प्रणालीने आचार मार्गमें तथा व्यवहार में अहिंसा की पुनः प्रतिष्ठा की। उनकी स्याद्वादमयी उदार दृष्टि ने तत्वज्ञान और दार्शनिक विचार-संसार में नवीन दृष्टिकोण की सृष्टि की। उनके कर्मवाद ने मानव जगत् को मानसिक दासता और आध्यात्मिक परतन्त्रता से मुक्ति दिलाई तथा पुरुषार्थ एवं स्वावलम्बन का पुनीत पाठ पढ़ाया। उनके साम्यवाद के सिद्धांत ने जाति पांति के भेद को मिटा कर मानव मात्र की एक रूपता का आदर्श उपस्थित किया। इसी साम्यवाद ने स्त्रियों की पुनः सन्मान पूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा की। भगवान के साम्य सिद्धांत ने जाति भेद, लिंगभद, वर्गभेद और अमीर-गरीब के भेद को निर्मूल किया और अपने धर्मशासन में गुणपूजा को महत्व दिया। "गुणः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः" कालिदास की यह उक्ति भगवान महावीर के धर्मशासन में यथार्थ रूप से चरितार्थ होती है। भगवान महावीर ने अपने संघ में नारी को भी पुरुष के समान समाधिकार देकर स्त्रीस्वातन्त्र्य की प्रतिष्ठा की और उसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। इसी तरह आपने श्रमण संघ में चाण्डाल जाति के व्यक्ति को भी मुनि दीक्षा देकर गुरुपद का अधिकारी बनाया। "सक्खं खुदीसइ तवो विसेसो न दीसइ जाइविसेस कोवि" अर्थात् "तप और संयम का वैशिष्ट्य है, जाति की कोई महत्ता नहीं" यह कह कर चाण्डाल पुत्र हरिकेशी को भी मुनि संघ में स्थान दिया और उसे ब्राह्मणों के यज्ञवाडे में भेज कर उनको भी पूजनीय बना दिया, यह भगवान महावीर के सामाजिक साम्य का भव्य उदाहरण है।

भगवान् महावीर ने अहिंसा और समता के आध्यात्मिक सिद्धान्तों को सामाजिक क्षेत्र में भी सफलता पूर्वक प्रयुक्त किये। जैसाकि पं० सुखलालजी ने लिखा है:—

"महावीर ने तत्कालीन प्रबल बहुमत की अन्यायी मान्यता के विरुद्ध सक्रिय कदम उठाया और मेतार्य तथा हरिकेशी जैसे सब से निकृष्ट गिने जाने वाले अस्पृश्यों को अपने धर्मसंघ में समान स्थान दिलाने का द्वार खोल दिया। इतना ही नहीं बल्कि हरिकेशी जैसे तपस्वी आध्यात्मिक चाण्डाल को छुआछूत में आनवशिख डूबे हुए जात्यभिमानी ब्राह्मणों के धर्म वीरों में भेजकर गाँधीजी के द्वारा समर्थित मन्दिर में अस्पृश्य प्रवेश जैसे विचार के धर्म बीज बोने का समर्थन भी महावीरनुयायी जैन परम्परा ने किया है। यज्ञयाज्ञादि में अनिवार्य मानी जाने वाली पशु आदि प्राणी हिंसा से केवल स्वयं पूर्णतया विरत रहते तो भी कोई महावीर या उनके अनुयायी त्यागी को हिंसाभागी नहीं कहता। पर वे धर्म के मर्म को पूर्णतया समझते थे इसीसे जयघोष जैसे वीर साधु यज्ञ के महान् समारंभ पर विरोध व संकट की परवाह

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किये बिना अपने अहिंसा सिद्धान्त को क्रिया शील व जीवित बनाने जाते हैं। अन्त में उस यज्ञ में मारे जाने वाले पशु को प्राण से तथा मारने वाले याज्ञिक को हिंसा वृत्ति से बचालेते हैं।"

आजके युग के महापुरुष महात्मा गांधीजी ने जिन जिन साधनों का अवलम्बन लेकर भारत में सफल क्रान्ति पैदा की और आधुनिक विश्व को विस्मय चकित किया उनका मूल श्रोत भगवान् महावीर के आदर्श जीवन और सिद्धान्तों में है। अहिंसा और सत्य का सिद्धान्त, अस्पृश्यता निवारण का सिद्धान्त, नारी जागरण, सामाजिक साम्य, ग्राम्यजनों की सुधारणा, श्रमिकों का आदर आदि २ कार्यों के लिए महात्माजी ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तों से प्रेरणा प्राप्त की है। महात्माजी की इन शिक्षाओं का उदगम भ० महावीर की शिक्षाओं में है।

भगवान् महावीर स्वयं सब प्रकार के दोषों से अतीत हो चुके थे इसलिए उनके उपदेशों का जादू के समान चमत्कारिक प्रभाव होता था।

जिस व्यक्ति का अन्तः करण पवित्र होता है उसके मुख से निकली हुई आवाज श्रोताओं के अन्तः-करण को छू लेती है। इसके विपरीत जिस उपदेशक का आचरण अपने कहने के अनुसार नहीं होता उसका प्रभाव नहीं सा होता है।

यदि हो भी जाता है तो वह क्षणिक ही होता है। भगवान् महावीर की वाणी में हृदय की पवित्रता का पुट था अतः उसका चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। भगवान् ने जिस २ क्षेत्र में प्रवेश किया उसमें सफलता प्राप्त की। उनका सबसे प्रधान कार्य था हिंसा का विरोध। इस दिशा में उन्हें जो सफलता मिली वह इसी बात से प्रकट हो जाती है कि अब हिंसकयज्ञों की प्रथा लुप्तसी हो गई है। यह भगवान् महावीर का अभूतपूर्व प्रभाव है कि जिन यज्ञों की पूर्णाहुति पशुवध के बिना नहीं हो सकती थी ऐसे यज्ञ भारत में नामशेष हो गये। इस विषय में आनन्द शंकर बापू भाई ध्रुव लिखते हैं:—

"ऐतरीय कहा गया है कि सर्वप्रथम पुरुषमेध था, इसके बाद अश्वमेध और अजामेध होने लगे। अजामेध में से अन्त में यवों से यज्ञ की समाप्ति मानी जाने लगी। इस प्रकार धर्म शुद्ध होते गये। महावीर स्वामी के समय में भी ऐसी ही प्रथा थी ऐसा उत्तराध्ययन सूत्र में आये हुए विजय घोष और जयघोष के संवाद से मालूम होता है। इस संवाद में यज्ञ का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट किया गया है। वेद का सच्चा कर्त्तव्य अग्नि होत्र है। अग्नि होत्र का तत्व भी आत्म बलिदान है। इस तत्व को कश्यप धर्म अथवा ऋषभ देव का धर्म कहा जाता है। ब्राह्मण के लक्षण भी अहिंसा धर्म विशिष्ट दिये गये हैं। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में भी ब्राह्मण के ऐसे ही लक्षण दिये हैं। गौतमबुद्ध के समय में ब्राह्मणों का जीवन इसी ही तरह का होगया था। ब्राह्मणों के जीवन में जो त्रुटियाँ आगई थी वे बहुत बाद में आई थी और जैनों ने ब्राह्मणों की त्रुटियों को सुधारने में अपना कर्त्तव्य बजाया है। यदि जैनों ने इस त्रुटि को सुधारने का कार्य न किया होता तो ब्राह्मणों को अपने हाथों पर काम करना पड़ता।"

इसी तरह लोकमान्य तिलक ने भी कहा है कि— जैनों के अहिंसा परमो धर्मः के उदारसिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप डाली है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ज्ञययागादिक में पशुओं की हिंसा होती थी। यह प्रथा आज कल बन्द होगई है। यह जैन धर्म की एक महान् छाप ब्राह्मण धर्म पर अंकित हुई है। यज्ञार्थ होने वाली हिंसा से आज ब्राह्मण मुक्त हैं यह जैन धर्म का ही पुनीत प्रताप है।

भगवान् महावीर के उपदेश, कार्य और पुण्य प्रभाव का उल्लेख करते हुए कवि सम्राट डॉ० रविन्द्र नाथ टेगौर ने कहा है:—

"महावीर ने डिंडम नाद से आर्यावर्त्त में ऐसा संदेश उद्घोषित किया कि धर्म कोई सामाजिक रूढ़ि नहीं है परन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष बाह्य क्रिया काण्डों के पालन मात्र से नहीं मिलता है परन्तु सत्य धर्म स्वरूप में आश्रय लेने से मिलता है। धर्म में मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद नहीं रह सकता है। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीर की ये शिक्षाएँ शीघ्र ही सब बाधाओं को पार कर सारे आर्यावर्त्त में व्याप्त होगई।"

कवि सम्राट के इन वाक्यों से भगवान् महावीर के उपदेशों का क्या पुण्य प्रभाव हुआ सो स्वयमेव व्यक्त हो जाता है।

भगवान् महावीर पूर्ण वीतराग थे अतः उनकी दृष्टि में राजा-रंक का, गरीब-अमीर का, धनी-निर्धन का, ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं था। वे जिस निस्पृहता से रंक को उपदेश देते थे उसी निस्पृहता से राजा को भी उपदेश देते थे। वे राजा आदि को जिस तत्परता से उपदेश देते थे उसी तत्परता से साधारण जीवों को भी उपदेश देते थे। यही कारण है कि उनके संघ में जहाँ एक ओर बड़े २ राजा राज्य का त्याग कर अनगार बने हैं वहीं दूसरी ओर साधारण, दीन, शूद्र और अति शूद्र भी मुनि बन सके हैं। भगवान् के अपूर्व वैराग्य का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता था। इस लिए बड़े २ राजा, राजकुमार, रानियाँ, सेठ साहूकार और उनके सुकुमार भगवान् के पास दीक्षित हो गये थे। भोग विलासों में सर्वदा बेभान रहने वाले धनी नवयुवकों पर भी भगवान् के वैराग्य और त्याग का गहरा असर पड़ा। राजगृही के धन्ना और शालिभद्र जैसे धनकुबेरों के जीवन परिवर्त्तन की कथाएँ कट्टर से कट्टर भोगवादी के हृदय को भी हिला देती हैं। बड़े २ राजा महाराजाओं के सुकुमार पुत्रों को भिक्षु का बाना पहने हुए, तप और त्यागी की साक्षात् जीती जागती मूर्त्ति बने हुए और गाँव गाँव में अहिंसा दुंदुभी बजाते हुए देखकर भगवान् के महान् प्रभाव से हृदय पुलकित हो उठता है। मगध सम्राट श्रेणिक की उन महारानियों को जो पुष्प शय्या से निचे पैर तक नहीं रखती थी जब भिक्षाणियों के रूप में घर-घर भिक्षा माँगते हुए, धर्म की शिक्षा देते हुए देखते हैं तो हमारा हृदय एकदम "धन्य धन्य" पुकार उठता है। यह था भगवान महावीर के उपदेशों का चमत्कारी पुण्य प्रभाव।

भगवान के उपदेश को सुनकर वीरांगक, वीरयश, संजय, एणेयक, सेय, शिव उदयन और शंख इन समकालीन राजाओं ने प्रव्रज्या अंगीकार की थी। अभयकुमार, मेघकुमार आदि अनेक राजकुमारों ने घर-बार छोड़कर व्रतों को अंगीकार किया। स्कन्धक प्रमुख अनेक तापस तपस्या का रहस्य जानकर भगवान के शिष्य बन गये। अनेक स्त्रियाँ भी संसार की असारता जानकर श्रमण संघ में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सम्मिलित हो गई थीं। भगवान के गृहस्थ अनुयायियों में मगधराज श्रेणिक, अवन्तिपति चण्डप्रद्योत आदि थे। आनन्द आदि वैश्य श्रमणोपासकों के साथ ही साथ शकडालपुत्र जैसे कुम्भकारभी उपासक संघ में सम्मिलित थे।

सबसे आश्चर्य की बात यह है कि भगवान् के सर्वप्रथम शिष्य ब्राह्मण पण्डित हुए-इन्द्रभूति गौतम। जो अपने समय के एक धुरन्धर दार्शनिक, साथ ही अग्रणी क्रियावादी ब्राह्मण माने जाते थे वे भगवान के प्रथम शिष्य हुए। गौतम पर भगवान के अप्रतिम ज्ञान प्रकाश का और अखण्ड तपस्तेज का वह विलक्षण प्रभाव पड़ा कि वे अज्ञवाद का पक्ष छोड़कर भगवान के पास चार हजार चार सौ ब्राह्मण विद्वानों के साथ दीक्षित होगये। यह है भगवान के उपदेश का पुण्य प्रभाव।

भगवान् महावीर स्वयं राज कुमार थे। उनके पिता सिद्धार्थ प्रतापी राजा थे। माता त्रिशला वैशाली के नरेश चेटक की बहन थी। चेटक नरेश की पुत्री का विवाह मगध के प्रतापी राजा बिम्बसार (श्रेणिक) के साथ हुआ था। राज परिवारों के सम्बन्ध के कारण भी भगवान् महावीर को अपने धर्म प्रचार में संभवतः कुछ सहुलियत हुई हो। भगवान् महावीर के उपदेशों से अनेक नृपति प्रभावित हुए। उनके अनुयायी नरेशों में—वैसाली नरेश चेटक—(जो गणसत्तात्मक राज्य के नायक थे) कौशाम्बी के राजा शतानिक, मगध नरेश श्रेणिक (बौद्ध ग्रन्थों में जिसे बिम्बिसार भी कहा गया है।) जैन सूत्रों में भंभासार नाम भी मिलता है। सेणिय नाम तो जैन और बौद्ध दोनों ग्रन्थों में पाया जाता है।) श्रेणिक का पुत्र राजा कोनिक (अजात शत्रु), उसका पुत्र राजा उदायी, उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत, पोतनपुर के राजा प्रसन्नचन्द्र बतिभय पट्टन का उदायी राजा आदि मुख्य हैं। कथा साहित्य परसे यह मालूम होता है कि कम से कम तेवीस राजाओं ने भगवान् महावीर का उपदेश सुन कर उनका धर्म स्वीकार किया और उनके दृढ़ अनुयायी हो गये।

जैन सूत्रों में जो भगवान् के समवसरण और धर्म कथा का वर्णन आता है उससे यह प्रतीत होता है कि राज वर्ग के लोग भगवान् के उपदेश को सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक रहते थे। बड़े २ प्रतापी राजा अपने अन्तः पुर, दरबारी गण और दल बल सहित तीर्थंकरों का उपदेश सुनने के लिए जाते थे। भगवान के उपदेश इतने सचोट होते थे कि अनेक राजाओं ने उससे प्रभावित होकर दीक्षा धारण करली थी। मगध देश—भगवान की मातृभूमि के अग्रगण्य नृपति भगवान् के विशेष सम्पर्क में आये। महाराजा श्रेणिक, उनका पुत्र कोणिक और तत्पुत्र उदायी ये बड़े धर्मनिष्ठ राजा हुए। यह परम्परा अशोक वर्धन और सम्प्रति तक चलती रही थी। महान् सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तब नव नन्द वंश ने शिशुनाग राजाओं का राज्य ले लिया। इस नन्द वंश के आश्रय में भी महावीर का धर्म विकासित हुआ। इसके बाद नन्दवंश के अन्तिम नन्द के पास से मौर्यवंश के महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त ने राज्य ले लिया तब भी जैनधर्म का खूब विकास हुआ। भारत के प्रथम इतिहास प्रसिद्ध महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त जैनधर्मानुयायी हो गये थे। स्वयं जैन थे। दिगम्बर सम्प्रदाय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के कथनानुसार चन्द्रगुप्त ने राजपाट छोड़कर अन्त में मुनि दीक्षा धारण कर ली थी और भद्र बाहु स्वामी के साथ मैसूर चला गया था। वहां श्रवण बेलगोल की गुफा में ही उसका देहोत्सर्ग हुआ। चन्द्रगुप्त बिन्दुसार और उसके बाद अशोक भी जैन-धर्म के साथ गाढ़ सम्पर्क रखने वाले राजा हुए हैं। सम्राट अशोक का जैनधर्म के साथ सम्बन्ध था इस विषयक प्रमाणों में किसी तरह का विवाद नहीं है। अशोक ने अपने उत्तर जीवन में बौद्ध धर्म को विशेषतया स्वीकार कर लिया था तदपि जैनधर्म के साथ उसका व्यमहार ठीक-ठीक बना रहा। इस तरह मगध की राजपरम्परा में भगवान् महावीर का धर्म दीर्घकाल तक चलता रहा।

भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् तीर्थ की स्थापना की। अपने उपदेशों के प्रभाव से उनके तीर्थ में साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। भगवान पार्श्वनाथ ने अपने संघ के साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य पालन की आज्ञा दी थी परन्तु उसे अलग व्रत न मान कर अपरिग्रह व्रत में ही सम्मिलित कर लिया था परन्तु धीरे-धीरे परिग्रह का अर्थ संकुचित होता गया। अब परिग्रह से धन, धान्य, जमीन आदि ही समझे जाने लगे। भगवान महावीर के समय में कई दाम्भिक परिव्राजक ऐसा भी प्रतिपादन करने लगे थे कि स्त्री-सेवन में कोई दोष नहीं है। इस तरह की परिस्थिति में भगवान महावीर ने चतुर्याम धर्म के स्थान में पंचयाम मय धर्म का उपदेश किया और पाँचवा ब्रह्मचर्य महाव्रत बताया।

भगवान् महावीर ने नवीन सम्प्रदाय या मत की स्थापना नहीं की। उन्होंने भगवान पार्श्वनाथ के शासन में जो विकारी तत्व प्रविष्ट हो गये थे उन्हें दूर कर उसका संशोधन किया। पार्श्वनाथ के साधु-साध्वी विविध वर्ण के वस्त्र रख सकते थे जब भगवान महावीर ने अपने साधु-साध्वियों के लिए श्वेत वस्त्र रखने की ही आज्ञा प्रदान की। सचेल-अचेल का यह भेद उत्तराध्ययन सूत्र के केशि-गौतम संवाद से प्रकट होता है। चतुर्याम-पंचयाम और सचेल-अचेल के भेद से ही भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की परम्परा में नगण्यसा भेद था। इसके अतिरिक्त और कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं था इसलिए ये दोनों परम्पराएँ भगवान महावीर के शासन के रूप में एक हो गई।

भगवान महावीर में उपदेश प्रदान करने की जैसी अनुपम कुशलता थी वैसी ही अपने अनुयायियों की व्यवस्था करने की भी अद्वितीय क्षमता थी। प्रोफेसर ग्लासनाप ने भगवान की संघ-व्यवस्था की प्रशसा करते हुए लिखा है कि:—

"महावीर के धर्म में साधु-संघ और श्रावक-संघ के बीच जो निकट का सम्बन्ध बना रहा उसके फलस्वरूप ही जैन धर्म भारतवर्ष में आज तक टिका रहा है। दूसरे जिन धर्मों में ऐसा सम्बन्ध नहीं था वे गंगा भूमि में बहुत लम्बे समय तक नहीं टिक सके।" महावीर में योजना और व्यवस्था करने की अद्भुत शक्ति थी। इस शक्ति के कारण इन्होंने अपने शिष्यों के लिए जो संघ के नियम बनाये अब भी चल रहे हैं। महावीर के समय में स्थापित साधु-संघों में सब जैन साधुओं को व्यवस्थित नियमन में रखने का बल अब भी विद्यमान है, ऐसा जब हम देखते हैं तो काल-बल जिस पर जरा भी असर नहीं कर सकता ऐसा स्वरूप पार्श्वनाथ के साधु संघ को देनेवाले इस महापुरुष को देख कर आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता है।"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन श्रमण-परम्परा

२४ तीर्थंकरों के गणधर तथा साधु समुदाय की संख्या

तीर्थंकर नाम	प्रथम गणधर,	कुल गणधर	साधु	साध्वी
(१) श्री ऋषभदेव भगवान	ऋषभसेन (पुंडरीक स्वामी)	८४	८४,०००	३,००,०००
(२) श्री अजितनाथ भगवान	सिंहसेन	९५	१,००,०००	३,३०,०००
(३) श्री संभवनाथ भगवान	चारु	१०२	२,००,०००	३,३६,०००
(४) श्री अभिनंदन स्वामी	वज्रनाभ	११६	३,००,०००	६,३०,०००
(५) श्री सुमतिनाथ भगवान	चमर	१००	३,२०,०००	५,३०,०००
(६) श्री पद्मप्रभ स्वामी	प्रद्योत	१०७	३,३०,०००	४,२०,०००
(७) श्री सुपार्श्वनाथ भगवान	विदर्भ	९५	३,००,०००	४,३०,०००
(८) श्री चंद्रप्रभ स्वामी	दत्तप्रभु	९३	२,५०,०००	३,८०,०००
(९) श्री सुविधिनाथ भगवान	वराह	८८	२,००,०००	१,२०,०००
(१०) श्री शीतलनाथ भगवान	प्रभुनंद	८१	१,००,०००	१,००,००६
(११) श्री श्रेयांसनाथ भगवान	कौस्तुभ	७६	८४,०००	१,०३,०००
(१२) श्री वासुपूज्य स्वामी	सुभौम	६६	७२,०००	१,००,०००
(१३) श्री विमलनाथ भगवान	मन्दर	५७	६८,०००	१,००,८००
(१४) श्री अनंतनाथ भगवान	यश	५०	६६,०००	९२,०००
(१५) श्री धर्मनाथ भगवान	अरिष्ट	४३	६४,०००	६२,४००
(१६) श्री शांतिनाथ भगवान	चक्रायुध	३६	६२,०००	६१,६००
(१७) श्री कुंथुनाथ भगवान	शंभ	३५	६०,०००	६०,६००
(१८) श्री अरहनाथ भगवान	कुंभ	३३	५०,०००	६०,०००
(१९) श्री मल्लिनाथ भगवान	भिषज	२८	४०,०००	५५,०००
(२०) श्री मुनिसुव्रत स्वामी	मल्लि	१८	३०,०००	५०,०००
(२१) श्री नमिनाथ भगवान	शुंभ	१७	२०,०००	४१,०००
(२२) श्री अरिष्टनेमि भगवान	वरदत्त	११	१८,०००	४०,०००
(२३) श्री पार्श्वनाथ भगवान	आर्यदिन्न (आर्यदत्त)	१०	१६,०००	३८,०००
(२४) श्री वर्धमानस्वामी (महावीर स्वामी)	इन्द्रभूति (गौतमस्वामी)	११	१४,०००	३६,०००

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पार्श्वनाथ प्रभु के महातापी पट्टधर

श्री शुभदत्ताचार्य— (वि० पूर्व ७५० वर्ष)

भगवान पार्श्वनाथ के प्रथम गणधर भगवान शुभदत्ताचार्य हुए। आप पार्श्व प्रभु के हस्तदीक्षित गणधरों में मुख्य थे। आपने ज्ञान, ध्यान, तप संयम की आराधना करते हुए घाति कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान व केवल दर्शन प्राप्त किया। आपके हस्त दीक्षित शिष्य मुनिवरदत्तजी ने हरिदत्तादि ५०० चोरों को प्रतिबोध देकर जैनधर्म में दीक्षित किया। यही हरिदत्त बाद में जाकर महान् प्रतापी संत हुए और श्री शुभदत्ताचार्य के पट्टधर हुए।

आचार्य हरिदत्त सूरि—(वि. पूर्व ६६ वर्ष आप द्वादशांगी एवं चतुर्दश पूर्व के पूर्ण ज्ञाता प्रखर पंडित थे। सावत्थी नगरी में तत्कालीन महान् यज्ञ प्रचारक लोहिताचार्य के साथ राजा अदीन शत्रु की राज्य सभा में आपने शास्त्रार्थ कर "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का प्रबल विरोध किया। लोहित्याचार्य सत्यप्रेमी विद्वान थे। वे अपने १००० शिष्यों सहित आचार्य हरिदत्त सूरि के पास जैनधर्म में दीक्षित हुए। आपने महाराष्ट्र प्रान्त में जैनधर्म का प्रचार किया। आपको सूरिपद से विभूषित किया गया। इन लोहित्याचार्य की शिष्य समुदाय बाद में 'लोहित्य शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इधर आचार्य हरिदत्त सूरि बंगाल कलिंग हिमालय आदि में जैन-धर्म का प्रचार करते हुए मुनि आर्य समुद्र को सूरि पद प्रदान कर व्यवहार गिरी पर्वत पर स्वर्ग वासी हुए। हरीदत्त सूरि की संतान पूर्व भारत में रही वह 'निर्ग्रन्थ शाखा' कहलाई।

डॉ० फ्रेजर साहिब ने अपने इतिहास में लिखा है कि "यह जैनियों के ही प्रयत्न का फल है कि दक्षिण भारत में नया आदर्श, साहित्य, आचार-विचार एवं नूतन भाषा शैली प्रकट हुई।"

आ० समुद्र सूरि—(वि० ६२६ पूर्व) वर्ष आपके समय पशु हिंसकों का विरोध कुछ तिव्र रहा पर अंत में अहिंसा की ही विजय रही। आपके विदेशी नामक प्रभावशाली शिष्य हुए। आपके उपदेशों से प्रभावित हो अवन्ति (उज्जैन) पति राजा जयसेन के पुत्र केशीकुमार आपके पास दीक्षित हुए। आपके साथ आपके पिता व माता अनंगसुन्दरी ने भी भागवती दीक्षा अंगीकार की।

बालर्षि केशी श्रमण ने अल्प काल में ही जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त किया और थोड़े ही समय में बड़ी प्रसिद्धी प्राप्त कर ली।

आचार्य केशी श्रमण[वि० ५४४ वर्ष पूर्व] जैन इतिहास में बाल ब्रह्मचारी चतुर्दश पूर्वधर महाप्रतापी आचार्य केशी श्रमण का स्थान बड़ा ही महत्व पूर्ण है। आपके समय भारत की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था बड़ी छिन्न-भिन्न थी। धर्म के नाम पर पोप लीला चरम सीमा पर पहुँच रही थी। जातिवाद और ऊँच-नीच का बड़ा भेद भाव था। केशी श्रमणाचार्य ने समस्त श्रमण संघ का एक विराट सम्मेलन बुलाया और समस्त भारत में जैन धर्म के प्रबल प्रचार द्वारा अहिंसा का नारा बुलंद करने का संदेश फरमाया। और धर्म प्रचारार्थ और मुनियों को अलग २ टुकड़ियों में दशों दिशाओं में भेजा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री के इस महान् कदम का बड़ा सुन्दर परिणाम निकला। 'यज्ञ की हिंसा' निर्बल होने लगी। सर्वत्र जैनधर्म चमक उठा। निम्न राजाओं ने जैनधर्म स्वीकार किया:—

१ वैशाली के राजा चेटक २ राजगृही के राजा प्रसेनजीत ३ चम्पानगरी के राजा दधिवाहन ४ क्षत्रिय कुंड के राजा सिद्धार्थ ५ कपिल वस्तु के राजा शुद्धोदन ६ पोलासपुर के राजा विजय सेन ७ साकेनपुर के राजा चन्द्रपाल ८ श्रावस्थी के राजा ऊदीनशत्रु ९ कांचनपुर के राजा धर्मशील १० कपिलपुर नगर का राजा जयकेतु ११ कोशाम्बी का राजा संतानी १२ श्वेताम्बि का राजा प्रदेशी तथा १३ सुग्रीव एवं १४ काशी कोशल के राजाओं ने भी जैनधर्म स्वीकार किया था।

महात्मा बुद्ध प्रभावित—आचार्य केशी, श्रमण के पेहित नामके एक शिष्य एक समय कपिल वस्तु पधरे। यहाँ के राजा शुद्धोदन ने आपका बड़ा स्वागत किया और धर्मोपदेश सुना। धर्मोपदेश श्रवण के समय आपके पुत्र बुद्धकिर्ती (गौतमबुद्ध) भी साथ थे। राजकुमार बुद्ध बड़े प्रभावित हुए। उनके हृदय में वैराग्य के बीजांकुर अंकुरित होगये। माता पिता के कठोर नियंत्रण के बाद भी समय पाकर वे घर से भाग निकले और आचार्य केशी श्रमण के साधुओं के पास 'जन दीक्षा' स्वीकार की। निम्न प्रमाणों से इसकी सत्यता आंकी जासकती है:—

१ बौद्ध धर्म के 'महावग्ग' नामक ग्रन्थ में बुद्ध के भ्रमण समय का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि 'एक समय बुद्ध राजगृह' गये और वहाँ 'सुघ' सुपास वसति में ठहरे। सुपास से अर्थ है 'पार्श्वप्रभु का मंदिर'।

२ बौद्ध ग्रन्थ ललित विस्तरा के कई उल्लेखों से भी यह स्पस्ट सिद्ध होता है कि गौतम बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन जैन श्रमणोपासक थे।

३ डॉ० स्टीवेन्सन ने भी एक जगह लिखा है कि राजा शुद्धोदन का घराना जैन था।

४ इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया वोल्यूम २ के पृष्ठ ५४ पर लिखा है कि-कोई इतिहास कार तो यह भी मानते हैं कि "गौतम बुद्ध को महावीर स्वामी से ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।"

कुछ भी हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि उस समय जैन धर्म के आत्मोत्कर्षकारी सिद्धान्तों ने महात्मा बुद्ध का मार्ग दर्शन अवश्यक किया है।

५ सरभंडारकर ने भी महात्मा बुद्ध का जैन मुनि होना स्वीकार किया है। इस प्रकार केशी श्रमण और उनके शिष्य समुदाय के हाथों भारत में सद् धर्म का प्रचार प्रबल रूप से हुआ।

केशी गौतम संवाद

भगवान पार्श्वनाथ के चतुर्थ पट्टधर केशी श्रमण और भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर गौतम स्वामी की श्रावस्ती नगरी में प्रथम बार भेंट हुई थी। उस समय दोनों में चतुर्याम और पंचयाम धर्म सचेल। अचेल आदि अनेक पारस्परिक भिन्नताओं पर विचार विमर्ष हुआ जिनका जैनागमों में विवेचन किया गया है। और जिसका बड़ा महत्व है।

आचार्य स्वयंप्रभ सूरि [वि० ४७० वर्ष पूर्व]

आप पार्श्व पट्ट परम्परा के पांचवे महा प्रतापी पट्टधर हुए हैं। आपने अर्बुदाचल की अधिष्ठात्री

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चक्रेश्वरी देवी की प्रार्थना पर श्रीमाल नगर में होने जारहे एक महा यज्ञ में होमे जाने वाले सवालक्ष जीवों को अपने उपदेश बल से अभय दान प्रदान कराया और करीब ६०००० नर नारियों को जैन बनाया। उनमें से अनेक नर नारियों ने भागवती दीक्षा भी अंगीकार की। कई स्थानों पर जिन मंदिर बनवाये और जैन शासन की अपूर्व सेवा की।

श्रीमाल और पोरवाल जाति की स्थापना कर उन्हें जैन धर्म के सत्पथ पर आरुढ़ करने का सम्पूर्ण श्रेय आपही को है।

ओसवाल जाति संस्थापक

महान् उपकारी छट्ठे पट्टधर आचार्य रत्न प्रभसूरिजी

२५०० वर्ष पूर्व जब कि भात वाममार्गियों के हाथों से रसातल की ओर प्रयाण कर रहा था, बेचारे लाखों मूक पशु व्यर्थ ही धर्म के नाम पर यज्ञ की हिंसात्मक वेदी पर निर्दयता पूर्वक होम कर दिये जाते थे। विश्व में चारों ओर हिंसा का साम्राज्य फैला हुआ था। जनता की त्राही त्रही की करुण आक्रंदें किसी महान व्यक्ति के अवतार के लिये पुकार रही थीं ऐसे ही समय में परम पूज्य जैनाचार्य श्रीमद् रत्नप्रभसूरीश्वजी ने अवतीर्ण होकर दुराचारी पाखण्डियों के माया जाल में अंध श्रद्धालु बन अधर्म के गहरे गर्त में गिरते हुए लाखों मनुष्यों को कुमार्ग से बचाकर मानवोचित गुणों एवं सुसंस्कारों की ओर प्रवर्तित बना कर "जन से महाजन" बनाया। जिसके लिये समस्त महाजन जाति और खास कर ओसवाल जाति आपकी चिरऋणी रहेगी।

आचार्य श्री स्वयं प्रभसूरिजी की यह उत्कट अभिलाषा थी कि वे एक ऐसे मिशन की स्थापना करें जो कि अपने प्रचार द्वारा विश्व में जैन धर्म की विजय पताका फहरावे तथा जैन जाति की मान मर्यादा एवं गौरव बढ़ावे। 'जहां चाह तहां राह' की उक्ति के अनुसार आचार्य श्री को ऐसे ही योग्य महापुरुष भी प्राप्त हो गये।

एक समय जब कि स्वयं प्रभसूरिजी जंगल में देवी देवताओं को धर्म देशना दे रहे थे तब रत्नचूड़ विद्याधर का विमान उधर से निकल रहा था कि उसकी गति रुक गई। शीघ्र ही रत्नचूड़ ने इस गति अवरोध का कारण आचार्य श्री की आशातना होना समझ भूमि पर उतर कर आचार्य श्री स्वयप्रभसूरिजी से क्षमा याचना की। आपका उपदेशमृत मान कर विद्याधर इतना प्रभावित हुआ कि सम्पूर्ण राज्य वैभव को त्याग करके अपने ५०० साथियों के साथ आचार्य देव के पास दीक्षा स्वीकार करली।

रत्नचूड़ विद्याधर ने अत्यन्त विनय एवं भक्ति पूर्वक द्वादशांगी का अध्ययन किया। दिनों दिन आपकी प्रतिभा रविरश्मि के समान प्रखर तेजस्वी होती गई। अतः स्वयंप्रभसूरि ने आपको वीर निर्वाण से ५२ वें वर्ष में सूरिपद प्रदान कर आपका श्री रत्नप्रभसूरिजी नाम रक्खा।

जिस समय आचार्य रत्नप्रभसूरि ने आबू तीर्थ पर पदार्पण किया तो वहां की अधिष्ठात्री देवी ने आपसे मरुधर प्रदेश में विचरने की प्रार्थना की। भव्य जीवों के उपकारार्थ आचार्य श्री ने भी मरुधर प्रदेश में विचरना स्वीकार कर लिया एवं अनेकों परिषह सहन करते हुए उपकेशपुर पधारे। उपकेशनगर वाम मर्गियों का केन्द्र स्थान था। यहां पर मुनियों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को शुद्ध आहार प्राप्त नहीं हो सका इसलिए शिष्यों ने सूरिजी से इस देश से लौट चलने के लिये प्रार्थना की। श्रीमद् रत्नप्रभसूरीश्वरजी ने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार करके अनुमति प्रदान करदी किन्तु वहां की अधिष्ठात्री देवीने आपसे प्रार्थना की कि यह चातुर्मास तो आप यहां ही करें। इस पर ४६५ शिष्यों ने तो वहां से कोरन्टपुर की ओर विहार कर दिया। बाकी ३५ साधुओं ने आचार्य श्री के साथ उपकेश नगर में ही चातुर्मास कर उस अनार्य देश को आर्य बनाने का निश्चय किया।

इस समय यहां के राजा उपलदेव ने सुपुत्री को विवाह योग्य हो जाने पर मन्त्री उहड़देव के सुपुत्र त्रिलोक्यसिंह के साथ विवाह कर दिया। दोनों दाम्पत्य जीवन सानन्द व्यतीत करने लगे। एक दिन रात्रि में एक विषैले सर्प ने राजकुमार को डस लिया। जिससे राजकुमार मृत्यु को प्राप्त हुए। अनेकानेक उपचार किये गये गये परन्तु कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई सारे शहर में शोक छा गया। समस्त जैन समुदाय राजकुमार को विमान में आरूढ़ कराकर श्मशान भूमि की ओर प्रयाण कर रहे थे। समस्त प्रजाजन करुण स्वर से रुदन कर रहे थे। जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानों सर्वत्र दुख की घटा छा रही हों।

इस समय किसी ने एक लघु साधु का रूप बनाकर उन लोगों से कहा कि भाइया! राजकुमार तो जीवित है, इन्हें मत जलाओ। इन्हें आचार्य श्री रत्नप्रभसूरीजी के पास ले जाओ वे इसे जीवित कर देंगे। इतना कह कर वे साधु वहां से अन्तरध्यान हो गये। सब लोग आचार्यजी के पास आये। प्रासुक जल से आचार्य की का चरणांगुष्ट प्रक्षालन करके वह जल राजपुत्र पर छिड़कने से कुमार शीघ्र ही अंगड़ाई ले कर उठ बैठा। यह कौतुक देख कर सारे नगर वासी स्तब्ध रह गये और आचार्य श्री के चरणों में पड़ कर विनय करने लगे कि हमें सन्मार्ग का प्रदर्शन कराइये।

राजा ने बड़ी अनुनय विनय की कि हे प्रभु आपकी कृपा से मेरा पुत्र जो कि इस नगर का भावी नाथ होता पुनर्जिवित हुआ है, अतः मैं खुशी से आधा राज्य आपको भेंट करता हूँ। इस पर आचार्य श्री ने फरमाया हे राजन्! हम जैन साधु हैं—कंचन कामिनी के त्यागी हैं, हमें राज्य नहीं चाहिये। हम तो यह चाहते हैं कि तुम्हारे राज्य में जो अनार्यता फैली हुई है वह मिट जाय, हिंसा न हो, साधुजनों का सन्मान हो—सब लोग सातों व्यसनों को त्याग कर 'महाजन' बने, उत्तम पुरुष बने। जैन का अर्थ है उत्तम आचरण वान। इस प्रकार के कथन से प्रभान्वित हो कर समस्त नगर निवासी जनता ने जैन धर्म ग्रहण किया। आचार्य श्री ने सब को मास मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थ का त्याग करवाया एवं 'सम्यग दर्शन ज्ञान चरित्राणि मोक्ष मार्ग' का उपदेश फरमाया।

इस प्रकार उपस्थित जन समूह पर सूरिजी के उपदेश का काफी प्रभाव पड़ा। राजा एवं मन्त्री ने आचार्य देव से प्रार्थना की हे भगवान, आपने हम अनाथ को सनाथ बना दिया है, हम अन्तरात्मा की साक्षी से प्रण करते हैं कि आज से हम आपके अनुयायी एवं सच्चे उपासक बन गये हैं। इस समय को अनुकूल समझ कर आचार्य श्री ने उपस्थित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जनता को महाजन जाति की संज्ञादी। सबको १ सूत्र में, एक समाज में बांधा और इस संगठन का नाम दिया 'महाजन संघ'।

कुछ समय पश्चात् ही 'महाजन संघ अत्यधिक विनास को प्राप्त हो गया। आबादी की अधिकता के कारण और व्यापार के निमित्त लोग उपकेशपुर (वर्तमान ओसियाँ) को छोड कर भारत के अन्य नगरों में बसने लगे। ओसियां आने के कारण उन नगरों में वे 'ओसवाल' नाम से प्रसिद्ध हुए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ठ है कि आचार्य श्री ने हमारी ओसवाल सवाल समाज पर कितना महान् उपकार किया है। सूरीश्वरजी के जीवन का अधिक अंश प्रायः आचार पतित जातियों का उद्धार करने में ही व्यतीत हुआ है। आपने अपने सदुपदेशों द्वारा केवल मनुष्य समाज को ही मुग्ध नहीं कर लिया था वरन कितनी ही अधिष्ठात्री देवियों एवं चक्रेश्वरी देवियों ने आपके पास मिथ्यात्व का त्याग करके सम्यक्त्व ग्रहण किया था।

धन्य है ऐसे महान उपकारी आत्मा को जिन्होंने ऐसे महान शुभ कार्योंद्वारा विश्व में अपना नाम विख्यात ही नहीं किया अपितु अमर कर दिया है। आपका समय वीर निर्वाण सवत् ७० है।

आचार्य यक्षदेव सूरि—(वि० ३८६ वर्ष पूर्व) सातवें पट्टधर आ० यक्षदेव सूरि महान् चमत्कारिक महापुरुष हुए हैं। अपने पूर्वाचार्य श्री रत्नप्रभ सूरि द्वारा अंकुरित 'महाजन संघ' के पौधे को आपने विशेष रूप से परिप्लावित बनाया। आपकी प्रचार भूमि मरुधर के बाद विशेष रूप से सिन्ध प्रान्त रहा। उधर अब तक जैन मुनियों का ध्यान कम था अतः आपने उस क्षेत्र के उद्धारार्थ निश्चय किया। सिन्ध प्रदेश के शिवनगर के राजा रुद्राक्ष के पुत्र कक्क कंवर से, उसके जंगल में शिकार खेलते समय आपकी भेंट हुई। आपने उसे जीव हिंसा के महा पाप बताये। कनक कंवर बहुत प्रभावित हुआ और हिंसा पथ से मुंह मोड़ अहिंसा पालक बना। राजा रुद्राक्ष भी जैनधर्मानुयायी बना और सिन्ध भूमि में कई जैन मंदिरों का निर्माण कराया। राज पुत्र कक्क कंवर आचार्य के पास दीक्षित हुआ। यही आगे जाकर आठवें पट्टधर कक्कसूरि हुए।

अनेकानेक भोजन व पानी आदि के कष्ट, विरोधियों द्वारा हिंसक आघात प्रत्याघात को सहन करते हुए भी आचार्य श्री ने सिन्ध भूमि में जैनधर्म का डंका बजाया।

आचार्य कक्कसूरि—(वि० सं० ३४२ वर्ष पूर्व) पार्श्व प्रभु के आठवें पट्टधर कक्कसूरि भी महान् प्रभाविक आचार्य हुए हैं। आपने भी सिन्ध भूमि में जैनधर्म प्रचार को ही अपना मुख्य लक्ष्य बनाया था। आपको भी अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ा। यज्ञों में तथा देव मन्दिरों में पशु बलि के साथ नर बलि का अभी पूर्ण रूपेण अन्त नहीं हो पाया था। बलिदान के समर्थक जैन मुनियों के कट्टर दुश्मन बने हुए थे।

विहार काल में एक स्थान पर आपने जगदम्बा के मंदिर में एक बत्तीस लक्षण युक्त राजकुमार की बलि दी जाने का वृत्तान्त सुना—विश्व शान्ति के नाम पर इस राजपुत्र की बलि हो रही थी। आचार्य देव ने मंदिर में पहुँच कर सब को जगदम्बा के मातृ-स्वरूप को समझाया और इस हिंसकारी कुमार्ग से सब को बचाया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऐसे अनेकों महान् उपकार आचार्य श्री के हाथों हुए हैं। मरुधर वासियों की विनंति पर आपने अपना अन्तिम चातुर्मास उपकेशपुर किया। दिव्यज्ञान द्वारा अन्तिम समय जान लूणाद्रि पर्वत पर १८ दिन का अनशन कर स्वर्ग सिधारे।

आपके पश्चात् और भी पट्टधर हुए हैं पर इस समय तक भगवान महावीर की परम्परा का प्राबल्य बढ़ चला था अतः अब हम भगवान महावीर की परम्परा का वर्णन प्रारंभ करते हैं।

भगवान महावीर स्वामी की शिष्य-परम्परा

प्रथम गणधर गौतम स्वामी—भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रदत्त दूसरी देशना के समय तत्कालीन महान् याज्ञीक ग्यारह ब्राह्मण विद्वानों और उनके साथ ४४०० ब्राह्मण जो भगवान महावीर से वाद विवाद कर उन्हें पराजित करने की भावना से आये थे—भगवान के कल्याण कारी उपदेशामृत को सुन कर—स्वयं पराजित हो; धर्म की यथार्थता समझ सब के सब भगवान के शिष्य बन गये। ये ग्यारह विद्वान जैनधर्म के भी महान विद्वान बने। महावीर शासन के गण नायक बन ग्यारह गणधर के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) २ अग्नि भूति (३) वायुभूति (४) व्यक्त स्वामी (५) सुधर्मा स्वामी (६) मांडित पुत्र [७] मौर्यपुत्र [८] अकंपित [९] अचलभ्राता [१०] मेतार्य और [११] प्रभास।

भगवान की वाणी को सूत्र में गूंथ कर द्वादशांग को सुव्यवस्थित रखने का कार्य इन गणधरों ने किया।

भगवान महावीर के ३० वर्ष पर्यन्त प्रदत्त धर्म देशना से भगवान के चतुर्विध श्री संघ में १४,००, साधु ३६,००० साध्वियां तथा लाखों श्रावक तथा श्राविकाएँ हुईं।

साधुओं में इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) मुख्य थे तथा साध्वियों में महासति चन्दनबाला मुख्यथी।

छद्मावस्था और केवल पर्याय मिलकर ४२ वर्ष की दीक्षा पर्याय में भगवान ने १ अट्ठ ग्राम में, १ वाणीज्य ग्राम में, ५ चम्पानगरी में ५ पृष्ठ चम्पा में १४ राजगृही में, १ नालंदा पांडा में, ६ मिथिला में, २ भद्रिका नगरी में, १ आलंभिका नगरी, १ श्रावस्ती नगरी में आदि ४१ चातुर्मास कर अन्तिम ४२ वें चातुर्मास के लिये पावापुरी पधारे। सर्व जीव हितकारी अमृत वाणी से दशोदिगंत में प्रभु की अमर कीर्ति फैल रही थी।

आयुष्य कर्म का क्षय निकट जानकर प्रभु ने कार्तिक वदी १४ को संथारा किया। अपने प्रिय शिष्य गौतम को समीपवर्ती ग्राम में देव शर्मा को प्रतिबोध देने के लिये भेजा। चतुर्दशी और अमावस्या के दो दिन के १६ प्रहर तक सतत् प्रवचन फरमाते हुए आज से २४९१ वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्णा अमावस्या को अर्थात् दीपमालिका की रात्रि में भगवान महावीर स्वामी निर्वाण पद को प्राप्त हुए। गौतम स्वामी जब वापस लौटे और भगवान के निर्वाण का समाचार जाना तो अत्यन्त शोकाकुल

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हुए। भगवान के प्रति उनका अत्यन्त ममता भरा स्नेह था और इसी 'मोह' पाश में ग्रथित रहने से ही वे अबतक सुधर्मा स्वामी को छोड़ अन्य ६ गणधरों के समान केवल ज्ञान के धारक भगवान नहीं बन पारहे थे। परतु निर्मल हृदयी गौतम को तत्काल सत्य ज्ञान हो आया। वे बोल उठे अरे। प्रभु तो वितरागी थे और मैं मोह में पड़ा हुआ था-धन्य है प्रभु को जिन्होंने मुझे इस मोह की असारता का भान कराकर वितरागता का मार्ग प्रशस्त किया।

गौतम स्वामी की यह विचार धारा क्षपक श्रेणी तक पहुँची और तत्क्षण घनघाति कर्म चकना चूर हो गये और गौतम स्वामी ने भी भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण गमन की रात्री में ही केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त कर लिया।

केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् बारह वर्ष तक आपने धर्म देशना फरमाई और भगवान महावीर के शासन की संघव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया।

इस प्रकार भगवान के ग्यारह गणधरों में से केवल ५ वें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी ही केवल ज्ञान से शेष रहे अतः आप ही भगवान महावीर स्वामी के प्रथम पट्टधर प्रसिद्ध हुए और वर्तमान साधु समुदाय श्री सुधर्मा स्वामी का ही आज्ञानुवर्ती माना जाता है।

१ श्री सुधर्मास्वामी

आपने भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्ररूपित चतुर्विध श्री संघ को आन्तरिक एवं बाह्य सर्व विध ऐसा सुदृढ़ बनाया की उसकी नींव अमर होगई और आजतक जैनधर्म का गौरव पूर्ववत बना हुआ है और भविष्य में भी ऐसा ही बने रहने की आशा की जाती है। आपने ऐसे आगम साहित्य और विचार परम्परा का सर्जन किया कि जो भी प्राणी एक बार जैन धर्मानुयायी बनजाय। उसके और उसके वंश परम्परा के खून में ही इस संस्कृति का प्रभाव जमजाय। यह सब श्री सुधर्मा स्वामी के शुभ प्रयत्नों का ही सुफल है। आपको ९२ वें वर्ष की अवस्था में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। आप १०० वर्ष की अवस्था तक धर्म देशना द्वारा जगत् का उद्धार करते हुए निर्वाण प्राप्त हुए।

केवल ज्ञान प्राप्ति पर संघ व्यवस्था का भार श्री जम्बूस्वामी को सौंपा वर्तमान द्वादशाङ्गी के सूत्र रूप के प्रणेता भी श्री सुधर्मा स्वामी ही हैं। श्री द्वादशांगी के नाम इस प्रकार हैं:—

१ आचारांग सूत्र, २ सूत्र कृतांग; ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्या प्रज्ञप्ति ६ ज्ञातृ धर्म कथांग ७ उपासक दशांग ८ अन्तकृद् दशांग ९ अनुत्तरो पपातिक १० प्रश्न व्याकरण ११ विपाक सूत्र और १२ दृष्टिवाद।

बारहवें दृष्टिवाद के अन्दर १४ पूर्व भी समाविष्ट हैं। चौदहपूर्वों के नाम इस प्रकार हैं:—

१ उत्पाद पूर्व, २ अग्रायनीय पूर्व, ३ वीर्यप्रवाद पूर्व ४ अस्तिनास्ति प्रवाद ५ ज्ञान प्रवाद ६ सत्य प्रवाद ७ आत्म प्रवाद ८ कर्म प्रवाद ९ प्रत्याख्यान प्रवाद १० विद्या प्रवाद ११ कल्याणप्रवाद १२ प्राणप्रवाद १३ क्रया विशाल पूर्व १४ लोक बिन्दुसार।

वैसे तो समस्त जैनागमों का दृष्टिवाद में ही समावेश होजाता है किन्तु अल्पमति मनुष्यों के लिये अलग अलग ग्रन्थों की रचना की जाती है। जैनधर्म के प्राण भूत सकल श्रुतागमों का मूलाधार श्रीसुधर्मा स्वामी गणधर ग्रथित द्वादशांग ही है। अंग बाह्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ग्रन्थों की रचना स्थाविरों के द्वारा की गई मानी जाती है।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार वर्तमान में द्वादशांग और अंग बाह्य ग्रन्थ सब विच्छिन्न होना माना जाता जाता है जब कि श्वेताम्बर मतानुयायी ऐसा नहीं मानते।

श्वेताम्बरों में मूर्ति पूजक एवं स्थानक वासी सामुदायों में भी अंग बाह्य ग्रन्थों परस्पर कुछ भेद हैं।

२ श्री जम्बू स्वामी

भगवान महावीर स्वामी की पाट परम्परा के द्वितीय पट्टधर श्रीजम्बू स्वामी बड़े प्रभाविक महापुरुष हुए हैं। आप एक बड़े श्रीमन्त व्यापारी के पुत्र थे। अखूट सम्पति होने पर भी वैराग्य की प्रबलता से अपने विवाह के दूसरे दिन ही अपनी नव विवाहिता आठों रानियों का छोड़कर आपने दीक्षा अंगीकार की थी। विवाह के सुहागरात को जब आप महलों में सो रहे थे तब ५०० चोर महलों में सेंध लगाकर चोरी करने का प्रयत्न कर रहे थे। श्री जम्बू स्वामी उस समय ध्यान मग्न थे। ध्यान खुलने पर आपने सेंध लगाते चोरों को चोरी करने का दुष्परिणाम समझाया और इस कुमार्ग को छोड़े आत्मोद्धार का संदेश सुनाया। इस उपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि ५०० ही चोर आपके साथ साधु बनने को कटिबद्ध होगये। देखते ही देखते विवाह के दूसरे ही दिन श्री जम्बू स्वामी, नव विवाहिता आठों पत्नियां, खुद के माता पिता, आठों स्त्रियों के माता पिता तथा ५०० चोर इस प्रकार कुल ५२७ भव्य आत्माओं ने दीक्षा स्वीकार की। श्री जम्बू स्वामी की अन्य कथाएँ भी जैनशास्त्र में समादरणीय हैं।

इस अवसर्पिणी काल की जैन परम्परा में केवल ज्ञान प्राप्ति का श्रोत भगवान ऋषभदेव से प्रारंभ होकर अंतिम केवल ज्ञानी श्री जम्बू स्वामी तक विसर्जित होता है। श्री जम्बूस्वामी के निर्वाण के साथ निम्न दस विशेषताओं का भी लोप होगया।

१ परम अवधि ज्ञान २ मनः पर्यव ज्ञान ३ पुलाक लब्धि ४ आहारक शरीर ५ क्षायिक सम्यक्त्व ६ यथा ख्यात चरित्र ७ जिन कल्पी साधु ८ परिहार विशुद्ध चरित्र ९ सूक्ष्मी संपराय चरित्र १० यथा ख्यात चारित्र इस प्रकार भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् ६४ वर्ष तक केवल ज्ञान रहा।

३ श्री प्रभव स्वामी

आप विन्ध्याचल पर्वतान्तर्गत जयपुर के राजा जयसेन के पुत्र थे और प्रारंभ में इनका सम्बन्ध एक कुख्यात भीमसेन के डाकू दल से था। जब इन्होंने श्री जम्बुकुमार के विवाह करके ९९ करोड़ का दहेज लाने का समाचार सुना तो उसी रात्री को ५०० चोरों सहित उनके महलों में चोरी करने का प्रयत्न किया और एवज में जम्बुकुमार के सदुपदेशों से मुक्ति धन प्राप्त कर जम्बु स्वामी के ही महा प्रतापी पट्टधर 'श्री प्रभव स्वामी' हुए।

दीक्षा समय आपकी आयु मात्र ३० वर्ष थी। बीस वर्ष तक ज्ञान साधना के उपरान्त ५० वर्ष की आयु में आप जैन संघ के नायक आचार्य बने।

आपने भी अनेक दार्शनिकों और याज्ञिकों को अपने उपदेश बल से जैन धर्मानुयायी बनाया। तत्कालीन महा पंडित स्वयंप्रभ ब्राह्मण को प्रतिबोध प्रदान कर जैन धर्म में दीक्षित बनाया। जो आपके पाट पर भगवान महावीर के चतुर्थ पट्टधर हुए।

श्री प्रभव स्वामी वीर निर्वाण संवत् ७५ में स्वर्ग पधारे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

४ स्वयंभवस्वामी—आपका जन्म राजगृही के ब्राह्मण कुल में हुआ था। अपने समय के बड़े प्रकांड पंडित गिने जाते थे। प्रभव स्वामी से प्रतिबोधित हो जैन मुनि बने और जैन शासन की अपूर्व सेवा की। जैनागम "देश वैकालिक सूत्र" की रचना आप ही ने की थी।

५ यशोभद्र स्वामी तथा संभूति विजयजी—वीर निर्वाण संवत् ६८ में श्री यशोभद्र आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। वीर निर्वाण सं १०८ में श्री संभूति विजयजी ने दीक्षा ली।

दोनों ही तत्कालीन संघ के आचार्य माने गये

६ भद्र बाहु स्वामी

वीर निसं० १३६ के बाद आचार्ययशोभद्रस्वामी के पास आप दीक्षित हुए। आप चतुर्दश पूर्व धर एवं अन्तिम श्रुत केवली थे। आपने अपनी साहित्य सेवा द्वारा जैन शासन की जो महान् प्रभावना की है वह सदा काल अमर एवं विस्मरणीय रहेगी।

आपने अनेक निर्युक्तियां एवं उवसग्ग स्तोत्र आदि अध्यात्म ज्ञान विषयक ग्रन्थों की रचनाएं की। आप गृहस्थाश्रम में ४५ वर्ष तक रहे और ७० वर्ष तक गुरू सेवा में रह चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया। चौदह वर्ष तक संघ के एक मात्र आचार्य रहे।

१५ से महाराजा चन्द्रगुप्त ने पौषध किया था उस दिन रात को रात्री में स्वप्न में एक बारह फणधारी सर्प देखा। भद्रबाहु स्वामी ने इसका फल बताते हुए १२ वर्ष के एक भयंकर दुष्काल पड़ने की बात बताई जो सत्य सिद्ध हुई।

स्वप्न का यह अनिष्ट फल सुन कर महाराजा चन्द्रगुप्त को यह संसार क्षणभंगुर लगा और उन्होंने आचार्य श्री के पास दीक्षा अंगीकार करली। बाद आचार्य भद्रबाहू स्वामीने चन्द्र गुप्तादि १२००० मुनियों को संग ले दक्षिण में कर्नाटक की ओर विहार कर दिया। भद्र बाहु स्वामी का स्वर्गवास भी दक्षिण में ही हुआ। श्री चन्द्रगुप्त मुनि एक पर्वत पर घोर तप्पस्या लीन रहे, अतः इस पर्वत का नाम चन्द्र गिरी पहाड़ हो गया।

श्री भद्रबाहू स्वामी के दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान करने से उत्तर भारत के जैन संघ को बड़ा दुःख हुआ हुआ और उन्हें वापस लौटा लाने के अनेक अनेक प्रयत्न किये गये। पर जब सब प्रयत्न असफल हहे तब श्री स्थूलि भद्रजी को आचार्य पर प्रदान कर उन्हें १४ पूर्व का ज्ञान प्राप्त करने हेतु आचार्य भद्र बाहु स्वामी के पास भेजा गया। आपने भी बड़ी तन्मयता से ज्ञानाभ्यास किया। एक बार आपने 'रूप परावर्तिनी' विद्या का परीक्षण करने के लिये सिंह का रूप बनाया। आका सिंह रूप देख सब मुनि भयभीत हो गये। जब आ० भद्रबाहु स्वामी ने यह घटना सुनी तो बड़े खिन्न हुए और इस प्रकार विद्या का दुरुपयोग न हो सके यह सोच आगे पढ़ाने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार १४ में से १० पूर्व का विच्छेद हो गया।

७ श्री स्थूलिभद्रजी

आप नन्द वन्श के ६ वें राजा के महामन्त्री शकडाल के ज्येष्ठ पुत्र थे। वीर निर्वाण सं० १५६ में दीक्षा हुई। ससारावस्था में समस्त कुटुम्ब को छोड़ कर कोशा नामक वेश्या के घर रहे थे। उनके पिता की मृत्यु के बाद राजा ने इन्हें मंत्री बनाया

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर पिताजी की मृत्यु से उन्हें वैराग्य हो गया था। अतः आचार्य संभूतिविजयजी के पास दीक्षा अंगीकार कर आत्मोत्कर्ष में लग गये।

दीक्षित होने के बाद आपने गुरु आज्ञा ले प्रथम चातुर्मास कोशा वैश्या के उद्यान में ही किया पर वह था साधना के लिये। वे अपनी साधना से किंचित भी विचलित नहीं हुए। यही नहीं इनकी कठोर तपः साधना से प्रभावित हो स्वयं कोशा वैश्या ने भी जैन धर्म की दीक्षा अंगीकार कर सुसाध्वी बनी।

आचार्य श्री के सदुपदेशों का तत्कालीन कई राजाओं पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। नंद वंश के अंतिम राजा तथा मौर्य सम्राट राजा चन्द्रगुप्त को भी जैनधर्म में आपही ने प्रति बोधित किया था।

इस प्रकार आपने जैन शासन की महान् प्रभावना की थी।

एकबार भद्रबाहू स्वामी के अंतेवासी श्री विशाखा चार्य अपने गुरु के कालधर्म प्राप्त करने पर जब मगध आये तो उन्होंने देखा कि स्थूलीभद्रजी के साधु अब वनों और उद्यानों को छोड़ कर नगरों में रहने लगे हैं। उन्हें यह उचित न लगा। दोनों में इस विषय को लेकर काफी विचार विमर्ष भी हुआ। पर विचार एक न होसके। बस यहीं से जैन शासन रूप वृक्ष की दिगम्बर तथा श्वेतम्बर रूप दो शाखाएँ फूटी। यहीं से सचेलकत्व और अचेलकत्व का प्रश्न विशेष चर्चास्पद बना अचेलकत्व के आग्रह वाले दिगम्बर कहलाये।

श्वेताम्बर संघ ने अपनी स्तुति में श्री स्थूलिभद्र जी को प्रमुखता दी:—मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतम प्रभु। मंगलम् स्थूलिभद्राद्या, जैनधर्मोस्तु मंगलम्॥ श्री स्थूलिभद्र जी के पास वीर नि० सं० १७६ में आर्य महागिरी ने दीक्षा ली।

आर्य महागिरी और आर्य सुहस्तिसूरि

श्री स्थूलिभद्रजी के पाट पर उक्त दोनों आचार्य हुए। आर्य महागिरी महान् त्यागी योगीश्वर थे।

आर्य सुहस्ति सूरिजी ने तत्कालीन राजाओं पर अच्छा प्रभाव जमाया था मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के पौत्र और महाराजा अशोक के पुत्र महाराजा सम्प्रति आपका अनन्य भक्त बन गया था।

राजा सम्प्रति ने उज्जनी नगरी में एक वृहत साधु सम्मेलन भरवाया और भारत के कोने कोने में साधुओं को भेजकर जैन धर्म का प्रचार करवाया। यही नहीं सम्प्रति ने सवालाख जैन मन्दिरों का भी निर्माण कराया था। छत्तीस हजार जन मन्दिरों का जिर्णोद्धार कराया, सातसौ दानशालाएँ खुलवाई, सवाकरोड़ जिन बिम्ब, ६५ हजार धातु प्रतिमा कराई। कहते हैं महाराजा संप्रति का नियम था कि जब तक नये मन्दिर निर्माण की बधाई नहीं आती तब तक दतौन नहीं करता था।

धाधणो, पावागढ़, हमीरगढ़, रोहीशनगर, इलौरा की गुफा में नेमीनाथजी का मन्दिर, देव पत्तन (प्रभास पट्टन) ईडरगढ़ सिद्धगिरी सवंतगिरी श्री शखेश्वरजी, नंदोय नादिया ब्राह्मण वाटक (बाम०न-वाड़जी का प्रसिद्ध महावीर स्वामी का मन्दिर) आदि स्थानों में कई भव्य जिन मन्दिर अब भी उनकी अमर कीर्ति गारहे हैं।

सुप्रसिद्ध इतिहास वेता कर्नल टॉड ने 'टॉड राजस्थान, हिन्दी, भाग १ खंड २ अ० २६ पृष्ठ ७२१ से ७२३ में लिखा है:—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"मैंने कमलमेर पर्वत, जो समुद्र तल से ३३५३ फुट ऊँचा है; उसके ऊपर एक प्राचीन जैन मंदिर देखा। यह मन्दिर उस समय का है जब मौर्य सम्राट चन्दगुप्त के वंशज राजा सम्प्रति मरुदेश का राजा था, उसीने यह जिन मन्दिर बनवाया है। मन्दिर की बांधणी अति प्राचीन और अन्य मान्दरों से बिलकुल भिन्न है। मन्दिर पर्वत पर होने से अब भी सुरक्षित है।

६ सुस्थित, सुप्रतिबद्ध

नवें पाट पर उक्त दोनों आचार्य हुए। आचार्य सुप्रतिबद्ध ने उदय गिर पर्वत पर एक करोड़ सूरि मंत्र का जाप किया जिससे उनकी शिष्य परम्परा "कोटिक गच्छ" के नाम से प्रसिद्ध हुई और निर्ग्रन्थ गच्छ की एक शाखा बनी। आपके समय भी महाराजा खारवेल, महाराजा चेटक, अजात शत्रु, कलिंगाधिपति वृद्धराज आदि कई राजा गण आपके भक्त बने थे आपके समय एक भयंकर दुष्काल पड़ा। कलिंगाधिपति राजा खारवेल ने इस दुष्काल के प्रभाव से आगमज्ञान को क्षीण होता जान सभी जैन स्थविरों को कुमारी पर्वत पर एकत्र किया, जिसमें करीब ३०० स्थविर कल्पी साधु तथा ३०० साध्वियां ७०० श्रमणोपासक तथा ७०० श्रमणोपासिकाएं एकत्र हुई थीं। कलिंग राज की विनंति से कई साधु साध्वी मगध मथुरा बंगाल की ओर भी गये। अवशेष दृष्टिवाद का भी संग्रह किया गया।

आपके बाद की पाट परम्परा को संख्या बद्ध लिखना विवादस्पद सा है अतः वीर परम्परा के मुख्य २ आचार्यों का ही आगे वर्णन करते हैं।

आचार्य उमास्वाति—आर्य महागिरी के शिष्य बलिसिह के आप सुशिष्य थे। आपने 'जैन तत्वों के प्रकाशनार्थ जैन शासन की ही नहीं भारतीय साहित्य संसार की महान सेवा की है।

आचार्य उमास्वाति रचित 'तत्वार्थ सूत्र' जैन-धर्म के मर्म को प्रकाशित करने वाला सर्व मान्य ग्रन्थ बना है। आचार्य वादिदेव सूरि ने 'स्याद्वाद रत्नाकर' में लिखा है। "प्रणयन प्रमीगौस्त्र भवदभरुमा स्वाति वाचक मुख्यै"। इससे स्पष्ट है कि आचार्य उमास्वाति ने महान् "तत्वार्थ सूत्र" के साथ २ जैन तत्वार्थ आदि विषयों पर ५०० ग्रन्थों की रचना की थी।

आपका समय वीर निर्वाण सं० ३३५ से ३७६ का है।

कालिकाचार्य

जैन इतिहास में गर्दाभिल्लोच्छेदक तथा पंचमी को होने वाली संवत्सरी को चौथ की करमे वाले कालिकाचार्य का विशेष महत्व पूर्ण स्थान है।

आप धारावास नगर के राजा वीरसिंह के पुत्र तथा भरुच के के राजा बालमित्र के मामा थे। आप आचार्य गुणाकर (गुण सुन्दर) सूरिजी के पास दीक्षित हुए और स्कंदिलाचार्य के पूर्व युग प्रधान हुए हैं। आपका मूल नाम श्यामाचार्य है। आपकी बहिन सरस्वति भी आपके साथ दीक्षित हुई थी—वह बड़ी रूपवति थीं। एक बार उज्जैन के राजा गर्दभिल्लने उसका साध्वी अवस्था में हरण कर लिया। कालिकाचार्य ने उसे छुड़ाने के अनेक प्रयत्न किये पर कोई फल नहीं निकला देख आप ईरान देश गये और वहां ९६ राजाओं का एक संगठन बनाकर भारत पर चढ़ाई की! भीषण युद्ध हुआ। गर्दभिल्ल मारागया

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। शक लोगों कुछ समय राज्य कर बलमित्र और भानुमित्र को राजा बनाकर चल दिये। दोनों परम जैन धर्म भक्त हुए हैं तत्पश्चात् कालिकाचार्य दक्षिण में विचरने लगे। प्रतिष्ठानपुर के राजा के आग्रह से संवत्सरी चतुर्थी की करने का आपने विधान किया। वही प्रथा आज भी श्वेताम्बर समाज मान रहा है। पंजाब के 'भावड़ा गच्छ' के प्रवर्तक भी आप ही थे।

इस प्रकार युग प्रधान कालिकाचार्य अपने समय के एक प्रबल राज्य एवं धार्मिक क्रान्ति कर्त्ता रहे हैं। आपका वीर नि० सं० ४६० में स्वर्गवास हुआ।

आ० विमल सूरि—आपने वि० सं० ६० में 'पदम चरित्र' की रचना की।

आ० इन्द्रदिन्न—आप आर्य सुहस्ति और सुप्रतिबद्ध के पट्टधर थ। आर्य दिन्न आपके पट्टधर हुए।

महा प्रभाविक जैनाचार्य

आर्य खपटाचार्य

आप कालिका लिकाचार्य के भाणेज बलमित्र भानुमित्र के समय भरूच में हुए थे। शास्त्रार्थ में बौद्धों को पराजित कर अश्वाबोध तीर्थ जैनियों के अधिकार में दिलाया। गुडशारखपुर में यक्ष का उपद्रव शान्त किया। और बौद्धमति राजा वृद्ध कर को जैन बनाया।

इन्हीं दिनों पाटली पुत्र के शुंग वंशी राजा दाहड़-देव भूति ने हुक्म निकाला था कि जो भी जैन साधुओं को मानेगा और उन्हें नमस्कार करेगा उसे प्राण दंड दिया जायगा। जैन संघ भयभीत हो उठा। ऐसे संकट काल के समय खपटाचार्य पाटली पुत्र पधारे और राजा को सदबोध प्रदान कर जैनधर्मानुयायी बनाया।

आपके 'उपाध्याय महेन्द्रसूरि, नामक शिष्य भी बड़े प्रतापी हुए। परमप्रभाविक आचार्य पाद लिप्तसूरि ने आपके पास विद्याध्ययन किया था। आर्य खपटाचार्य वीर नि० सं० ४८० में स्वर्ग सिधारे।

आचार्य आर्यदिन्न के पट्टधर आर्य सिंहगिरी तथा आर्य सिंहगिरी के पट्टधर आर्य वज्रसेन हुए। भिन्न २ पट्टावलियों में आपका स्थान भिन्न २ संख्यक पट्टधर के रूप में है।

आचार्य पादलिप्त सूरि

कालकाचार्य की शिष्य परम्परा में आप आर्य नागहस्ति के शिष्य थे। आप महान विद्यासिद्ध और प्रतापी आचार्य हुए हैं। आपके द्वारा पाटली पुत्र के राजा मुरुंड, मानखेट के राजा कृष्णराज प्रतिबोधित हुए। कृष्णराज की राज सभा में आचार्य श्री का बड़ा सन्मान था। भरुच में ब्राह्मणों द्वारा जैनियों के विरुद्ध उठाये गये षड़यंत्र को आपने दबाया। प्रतिष्ठान पुर का राजा सातवाहन भी आपका परम भक्त शिष्य था। आपके गृहस्थ शिष्य महायोगी नागार्जुन ने आचार्य श्री के नाम से शत्रुंजय की तलेटी में पादलिप्तपुर बसाया जो वर्तमान में पालीताणा कहा जाता है। आचार्य श्री ने तरंगलोला, निर्वाण कलिका, प्रश्न प्रकाश आदि ग्रन्थ लिखे। शत्रुंजय पर अनशन कर स्वर्ग सिधारे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आधुनिक विद्वान पादलिप्तसूरी का समय विक्रम की दूसरी सदी होने का अनुमान करते हैं। इसी दूसरी तीसरी सदी में दिगम्बर आचार्य गुणधर, पुष्पदंत भूतबलि ने कषाय पाहुड़वर खण्डागम की रचना की।

शिवशर्म सूरि—आप कर्मविषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कम्मपयडी' के कर्त्ता है। आपने प्राचीन पंचम कर्म ग्रन्थ की भी रचना की है।

श्री सिध्दसेन दिवाकर

श्री सिद्धसेन दिवाकर सचमुच जैनसाहित्याकाश के दिवाकर हैं। ये महान् तार्किक और गम्भीर स्वतंत्र विचारक आचार्य जैनसाहित्य में एक नवीनयुग के प्रवर्त्तक हैं। जैन साहित्य में इनका वही स्थान है जो वैदिक साहित्य में न्यायसूत्र के प्रणेता महर्षि गौतम का और बौद्ध-साहित्य में प्रखर तार्किक नागार्जुन का है।

सिद्धसेन दिवाकर के पहले जैन वाङ्मय में तर्क शास्त्रसम्बन्धी कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं था। आगमों में ही प्रमाणशास्त्र सम्बन्धी प्रकीर्ण-प्रकीर्ण बीजरूप तत्व संकलित थे। उस समय का युग तर्क प्रधान न होकर आगम प्रधान था। ब्राह्मण और बौद्ध-धर्म की भी यही परिस्थित थी परन्तु जब से महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र की रचना की तब से तर्क को जोर बढने लगा। सब धर्माचार्यों ने अपने २ सिद्धांतों के तर्क के बल पर संगठित करने का प्रयत्न किया। उस युग में ऐसा करने से ही सिद्धान्तों की रक्षा हो सकती थी। युगधर्म को पहचान कर आचार्य सिद्ध-सेन ने आगमों में बीज रूप से रहे हुए प्रमाणनय के आधार पर 'न्यायावतार' ग्रन्थ की संस्कृत भाषा में रचना कर तर्कशास्त्र का प्रणयन किया! न्यायावतार में केवल ३२ अनुष्टुप श्लोकों में सम्पूर्ण न्यायशास्त्र के विषय को भर कर गागर में सागर भर दिया है।

न्यायावतार के अतिरिक्त आपकी दूसरी रचना 'सन्मतितर्क' है। इसमें तीन काण्ड हैं। पहले काण्ड में नय सम्बन्धी विषद विवेचन किया गया है। सन्मति तर्क में नयवाद के निरूपण के द्वारा आचार्य ने सब दर्शनों और वादियों के मन्तव्य को सापेक्ष सत्य कह कर अनेकान्त को सांकल में कड़ियों की तरह जोड़ दिया है। इन्होंने सब दर्शनों को अने-कान्त का आश्रय लेने का सचोट उपदेश दिया है।

सिद्धसेन जैसे प्रसिद्ध तार्किक और न्यायशास्त्र प्रतिष्ठापक थे जैसे एक स्तुतिकार भी थे। इन्होंने बत्तीस द्वात्रिंशिकाओं की रचना की, ऐसा कहा जाता है किन्तु वर्त्तमान में १२ बत्तीसियाँ ही उपलब्ध हैं इनकी उपलब्ध द्वात्रिंशिकाओं में से ७ द्वात्रिंशिकाए स्तुतिमय हैं। इन स्तुतियों से यह झलकता है कि भगवान् महावीर के तत्वज्ञान के प्रति इनकी अपार श्रद्धा थी।

सिद्धसेन के जीवन के सम्बन्ध में जानने के लिए प्रभावक चरित्र का ही अवलम्बन लेना होता है। इसके अनुसार ये विक्रमराजा के ब्राह्मण पुरोहित देवर्षि के पुत्र थे। माता का नाम देवश्री था। जन्मस्थान विशाला (अवन्ती) है। सिद्धसेन बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि थे अतः उन्होंने सर्व-शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की। वादविवाद करने में अद्वितीय होने से तत्कालीन समर्थवादियों में इनका ऊँचा स्थान था। इन्हें अपने पाण्डित्य का बड़ा अभिमान था।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे वाद में पराजित करेगा उसका मैं शिष्य बन जाऊँगा। बाद में वादियों को पराजित करते २ ये वृद्धवादि नामक जैनाचार्य से मार्ग में ही मिले और उन्हें वाद करने की चुनौती दी। आचार्य ने कहा-सभ्य के बिना हार-जीत का निर्णय कौन करेगा? अपनी अहंकारमय वाग्मिता के कारण उन्होंने वहाँ जो ग्वाले थे उन्हें सभ्य मान लिया। वृद्धवादी ने कहा-अच्छा बोलो। तब सिद्धसेन ने संस्कृत में बोलना शुरू किया। ग्वाले कुछ न समझे। इसके बाद वृद्धवादी ने अपभ्रंश भाषा में देशीभाषा में सभ्यों के अनुकूल उपदेश दिया। ग्वालों ने वृद्धवादी की विजय घोषित कर दी। इसके बाद राजा की सभा में भी वाद हुआ उसमें भी सिद्धसेन पराजित हो गये। फलतः वे वृद्धवादी के शिष्य बन गये। दीक्षा के बाद उनका नाम कुमुदचन्द रक्खा किन्तु वे सिद्धसेन दिवाकर के नाम से ही प्रसिद्ध हुए।

आर्य शाकटायनाचार्य

शाकटायन एक जैन वैयाकरण थे। ये आचार्य किस काल में हुए इसका प्रमाणिक कोइ उल्लेख नहीं नहीं मिलता, तदपि यह निर्विवाद है कि ये आचार्य प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि से बहुत प्राचीन है। इसका कारण यह है कि पाणिनि रचित अष्टाध्यायी में "व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य" इत्यादि सूत्रों में शाकटायन का नामोल्लेख किया है जो शाकटायन को पाणिनि से प्राचीनता को प्रमाणित करता है। अब विचारना है कि पाणिनि का समय कौनसा है? इतिहासकारों और पुरातत्वविदों ने महर्षि पाणिनि का समय ईस्वी सन पूर्व २४०० वर्ष बतलाया है। इससे सिद्ध होता है कि पाणिनि ऋषि आज से चार हजार तीन सौ पचास वर्ष पूर्व हुए हैं।

शाकटायन इससे भी प्राचीन है। इसका नाम यास्क के निरुक्त में भी आता है। ये यास्क पाणिनि से कई शताब्दियों पहले हुए हैं। रामचन्द्र घोष ने अपने 'पीप इन्टु दी वैदिक एज' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'यास्क कृति निरुक्त को हम बहुत प्राचीन समझते हैं। यह ग्रन्थ वेदों को छोड़कर संस्कृत के सबसे प्राचीन साहित्य से सबन्ध रखता है। इस बात से यही सिद्ध होता है कि जैनधर्म का अस्तित्व यास्क के समय से भी बहुत पहले था। शाकटायन का नाम रिग्वेद की प्रति शाखाओं में और यजुर्वेद में भी आता है।

शाकटायन जैन थे, इस बात का प्रमाण ढूंढने के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। उनका रचित व्याकरण ही इस बात को सिद्ध करता है। वे अपने व्याकरण के पाद के अन्त में लिखते हैं:— "महा श्रमण संघाधि पतेः श्रुत केवलि देशीयाचार्यस्य शाकाटायस्य कृतौ"। उक्त लेख में आये हुए 'महा श्रमणसंघ' और श्रुतकेवलि शब्द जैनों के पारिभाषिक घरेलू शब्द हैं। इनसे निर्विवाद सिद्ध होता है कि शाकटायन जैन थे। इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि पाणिनि और यास्क के पहले भी जैन धर्म विद्यमान था। इस प्रकार शाकटानाचार्य का समय ई० सन् चार हजार तीन सौ ठहरता है।

भद्रबाहु द्वितीय

इनका समय विक्रम की पांचवीं या छठी शताब्दी है। इन्होंने आगमों पर नियुक्तियों की रचना की है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आर्य रक्षित—आगमों की प्रथम वाचना के समय चार पूर्वन्यून पर १२ अंग व्यवस्थित किये जाकर श्रमणसंघ में प्रचारित किये गये। इस समय से अब संघ में दशपूर्वधर ही रह गये। इस दशपूर्वी-परम्परा का अन्त आचार्य वज्र के साथ हुआ आचार्य वज्र का स्वर्गारोहण विक्रम सं० ११४ (वीरात् ५८४) में हुआ। दिगम्बर परम्परा के अनुसार दशपूर्वी का विच्छेद आचार्य धर्मसेन के साथ वीरात् ३४५ में हुआ आचार्य वज्र के बाद आर्यरक्षित हुए। इन्होंने अनुयोगों का विभाग कर दिया। कालक्रम से श्रुतज्ञान का ह्रास होता गया। आर्यरक्षित भी सम्पूर्ण नौ पूर्व और दशम पूर्व के २४ यविक मात्र के अभ्यासी थे। आर्यरक्षित भी अपना ज्ञान दूसरे को न दे सके। उनके शिष्यसमुदाय में से केवल दुर्बलिका पुष्पमित्र ही सम्पूर्ण नौ पूर्व पढ़ने में समर्थ हुआ किन्तु अभ्यास न करने कारण नवमपूर्व को वह भूल गया। इस प्रकार उत्तरोत्तर पूर्वगत ज्ञान का ह्रास होता गया और वीर निर्वाण के एक हजार वर्ष बाद ऐसी स्थिति हो गई कि एक पूर्व का ज्ञाता भी कोई न रहा। दिगम्बरों की मान्यतानुसार वीर निर्वाण सं० ६८३ में ही पूर्व ज्ञान का विच्छेद हो गया।

आर्य स्कन्दिलाचार्य—वीरात् २६१ में सम्प्रति राजा के समय भी दुष्काल हुआ। वीरात् नौवीं शताब्दी में स्कन्दिलाचार्य के समय में पुनः बारह वर्ष का अति भयंकर दुर्भिक्ष हुआ। इससे अपूर्ण सूत्रार्थ का ग्रहण और पठित का पुनरावर्तन प्रायः अत्यन्त दुष्कर हो गया। बहुत सा अतिशययुक्त श्रुत भी विनष्ट हो गया। तथा अंग उपाङ्ग आदि का भी परावर्तन न होने से भावतः दुर्भिक्ष के बाद मथुरा में स्कन्दिलाचार्य के सभापतित्व में वीर निर्वाण सं० ८२८ से ८४० के बीच श्रमणसंघ एकत्रित हुआ और जिसे जो याद था वह कहा। इस प्रकार कालिक श्रुत और पूर्वगत श्रुत को अनुसन्धान द्वारा व्यवस्थित करलिया गया। मथुरा में यह संघटना हुई अतः यह माथुरी वाचना कही जाती है। स्कान्दिलाचार्य के युगप्रधानत्व में होने से यह स्कन्दिलाचार्य का अनुयोग कहा जाता है।

आर्य नागार्जुन सूरि—जिस समय मथुरा में आचार्य स्कन्दिल ने आगमों को व्यवस्थित करने का कार्य किया उसी समय वल्लभी में नागार्जुनसूरि ने भी श्रमणसघ को एकत्रित करके आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। वाचक नागार्जुन और एकत्रित संघ को जो-जो आगम और उनके अनुयोगों के उपरान्त प्रकरण ग्रन्थ याद थे वे लिख लिये गये और विस्तृत स्थलों को पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना दी गई।"

इससे नागार्जुन ही वल्लभी वाचना के प्रवर्त्तक विशेषतया सम्भवित हैं।

आर्य देवर्द्धि क्षमा श्रमण

वीरनिर्वाण संवत् ९८० (वि० सं० ५१०) में वल्लभीपुर में भगवान् महावीर के २७ वें पट्टधर श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में पुनः श्रमण संघ एकत्रित हुआ। उस समय आचार्य स्कन्दिल और आचार्य नागार्जुन की वाचनाओं का समन्वय किया गया और उन्हें लिखकर पुस्तकारूढ कियागया। उक्त वाचनाओं में रहे हुए भेद को मिटा कर यथाशक्य एकरूप दिया गया और महत्वपूर्ण भेदों को पाठान्तर के रूप में संकलित कर लिया गया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी समय में देवर्द्धिगणि ने नन्दीसूत्र की संकलना की। इसमें सब आगमों की सूची दी है।

वल्लभी वाचना के बाद यह अंग कब नष्ट हो गया और कब नवीन जोड़ा गया यह कुछ नहीं कहा जासकता। यह कहा सकता है कि अभयदेव की टीका, जो कि बारहवीं शताब्दी के आरम्भ की है—उसके पहले सकी रचना हुई है। इसू तरह नन्दी की सूची में दिये गये कई आगम भी नष्ट हुए हैं।

जिनदास महत्तर—चूर्णिकारों में जिनदास महत्तर प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नन्दीसूत्र की तथा अन्य सूत्रों पर चूर्णियां लिखी हैं।

आगम-टीकाकार-आचार्य

आगमों पर की गई संस्कृत टीकाओं में सबसे प्राचीन आचार्य हरिभद्र की टीका है। उनका समय वि० ७५७ से ८२७ के बीच का है।

आचार्य हरिभद्र के बाद दशवीं शताब्दी में शीलांक सूरि ने आचारांग और सूत्रकृताङ्ग पर संस्कृत टीकाएँ लिखी। इनके बाद प्रसिद्ध टीकाकार शान्त्याचार्य हुए जिन्होंने उत्तराध्ययन पर विस्तृत टीका लिखी है। इसके बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध टीकाकार अभयदेव सूरि हुए जिन्होंने नौ अंगों पर टीकाएँ लिखीं। अभयदेव का समय वि० सं० १७२ से ११३५ है। आगमों पर टीका करने वालों में सर्वश्रेष्ठ स्थान आचार्य मलयगिरि का है। इनका समय बारहवीं शताब्दी है। ये आचार्य हेमचन्द्र के समकालीन थे। मलयगिरि की टीकाओं में प्राञ्जल भाषा में दार्शनिक विवेचन मिलता है। कर्म, आचार, भूगोल, खगोल आदि सब विषयों पर इतना सुन्दर विवेचन अन्य टीकाओं में नहीं है। अतः मलगिरि की टीकाओं का विशेष महत्व है। मलधारी हेमचन्द्र ने भी आगमों पर टीका लिखी है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के आगम

अब तक जिन आगमों का वर्णन किया गया है। वे श्वेताम्बर परम्परा को ही मान्य हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय के मन्तव्य के अनुसार अंगादि आगम विच्छिन्न हो गये हैं। अतः यह परम्परा अंगों-विशेषकर दृष्टिवाद के आधार बनाये ग्रन्थों को आगम रूप से स्वीकार करती है। आगममें षट्खण्डागम, कषायपाहुड, और महाबन्ध हैं। षट्खण्डागम की रचना पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों द्वारा की गई है। कषायपाहुड की रचना आचार्य गुणधर द्वारा हुई है। महाबन्ध के रचयिता आचार्य भूतबलि हैं। इसके अतिरिक्त यह सम्प्रदाय कुन्दकुन्द नाम के महाप्रभावक आचार्य के द्वारा बनाये गये समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय अष्टपाहुड, नियमसार आदि ग्रन्थों का आगम रूप में स्वीकार करती है। आचार्य कुन्द कुन्द का समय अभी निश्चत नहीं हो पाया है। विद्वानों में इनके समय के विषय में मतैक्य नहीं है। डा० ए० एन० उपाध्ये इनको ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए मानते हैं जब कि मुनि कल्याणविजयजी उन्हें पाँचवी-छठी शताब्दी से पूर्व नहीं मानते। गुणधर, पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य का समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी है।

मल्लवादी—ये आचार्य सिद्धसेन के समकालीन थे। वादप्रवीण होने से इन का नाम मल्लवादी था। इन्होंने नयचक्र (द्वादशार) नामक अद्भुत दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। इनके इस ग्रन्थ का श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में समान रूप से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सन्मान है।

इस नयचक्र पर सिंहक्षमाश्रमण ने १८००० श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका लिखी है। ये सिंहक्षमाश्रमण सातवींसदी के विद्वान् माने जाते हैं। मल्लवादी ने सिद्धसेन दिवाकर के सन्मति तर्क की वृत्ति भी लिखी है। श्री हेमचन्द्राचार्य ने सिद्धहेम शब्दानुशासन में 'तार्किक शिरोमणी' के रूप में इनका उल्लेख किया है। प्रभावक चरित्र में उल्लेख किया गया है कि इन्होंने शीलादित्य राजा की सभा में बौद्धों को वाद में पराजित किया था। इस ग्रन्थ में इनका समय वीर निर्वाण सं० ८८४ (वि० सं० ४१४) दिया गया है।

चन्द्रर्षि महतरः—इन आचार्य ने पंचसंग्रह नामक प्रसिद्ध कर्म विषयक ग्रन्थ की रचना की। तथा इसी ग्रन्थ पर ६००० श्लोक प्रमाण टीका रची है। इनका समय वि० छठी शताब्दी है।

संघदास क्षमाश्रमणः—इन आचार्य ने वसुदेव-हिण्डी नामक चरितग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचा। श्री संघदास क्षमाश्रमण ने 'पंचकल्प महाभाष्य' नामक आगमिक ग्रन्थ लिखा है। ये प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं। श्री धर्मसेन गणी इन ग्रन्थों के निर्माण में इनके सहयोगी रहे हैं।

जिनभद्र क्षमाश्रमणः—ये आचार्य 'भाष्यकार' के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन्होंने विशेषावश्यक भाष्य की रचना की और उसकी टीका भी लिखी है। इन्होंने आगमिक परम्परा पर दृढ़ रहकर भाष्य की रचना की है। आगम परम्परा के महान् संरक्षक होने से ये जैनवाङ्मय में आगमवादी या सिद्धांतवादी की पदवी से विभूषित और विख्यात हैं। ये आचार्य जैनागमों के रहस्य के अद्वितीय ज्ञाता माता माने जाते थे। इनको "युगप्रधान" का सन्माननीय पद प्राप्त था।

जीतकल्पसूत्र, वृहत्संग्रहणी, बृहत्क्षेत्रसमास और विशेषणवती नामक ग्रन्थ भी इन्हीं आचार्य के द्वारा रचे गये हैं। जैन पट्टावली के आधार पर इनका समय वीर नि० सं० ११४५ (विक्रम सं० ६७५) माना जाता है।

मानतुंगाचार्यः—ये आचार्य बाणेश्वर के राजा हर्ष के समकालीन हैं। इतिहासवेत्ता गौ० ही० ओझाने राजपूताने का इतिहास नामक ग्रन्थ के प्रथमभाग पृष्ठ १४२ पर लिखा है कि—"हर्ष का राज्याभिषेक वि० सं० ६६४ में हुआ। वह महाप्रतापी और विद्वत्प्रेमी था। जैन विद्वान् मानतुंगाचार्य (भक्तामरस्तोत्र के कर्त्ता) भी उस राजा के समय में हुए ऐसा कथन मिलता है" इन आचार्य ने जैनियों के प्रिय ग्रन्थ "भक्तामरस्तोत्र" की रचना की। कोट्याचार्य इन्होंने विशेषावश्यक भाष्य पर टीका की रचना की है।

सिद्धसेनगणीः—ये आचार्यसिंहगणी (सिंहसूर) के प्रशिष्य और भास्वामि के शिष्य थे। इन्होंने तत्वार्थ सूत्र पर टीका रची। ये आगम प्रधान विद्वान् थे। कोई २ इन्हें देवर्धिगणि के समकालीन मानते हैं। पं० सुखलालजी ने इन्हीं सिद्धसेन को 'गन्धहस्ति' पद विभूषित सिद्ध किया है।

जिनदास महतरः—ये आचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय में अत्यन्त प्रभावशाली हुए हैं। ये सिद्धसेन दिवाकर की तुलना के आचार्य हैं। सिद्धसेन के सम्बन्ध में लिखते हुए इनके विषय में पहले लिखा जा चुका है। इन्होंने आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, रत्नकरंडश्राव-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

काचार और स्वयंभू स्तोत्र की रचना की है। इन ग्रन्थ रत्नों को देखने से इनकी अनुपम प्रतिभा का परिचय मिलता है। ये स्याद्वाद के प्रतिष्ठायक आचार्य हैं। अनेक युक्तियों के द्वारा इन्होंने अन्यवादियों के सिद्धांतों का खण्डन कर अनेकान्त का युक्तिपूर्वक मंडन किया है। इनकी सर्व श्रेष्ठ कृति आप्तमीमांसा है।

ये जैनधर्म और जैनसाहित्य के उज्जवल रत्न है।

आचार्य हरिभद्र सूरि—आचार्य हरिभद्रसूरि जैन धर्म के इतिहास और साहित्य में एक नवीन युग के पुरस्कर्त्ता हैं। ये एक प्रबल धर्मोद्धारक भी थे। इनके समय में चैत्यवास की जड़ खूब गहरी जम चुकी थी। जनमुनियों का शुद्ध आचार शिथिल हो गया था उस स्थिति में सुधार करने के लिये ही हरिभद्रसूरि जैसे महाप्रभावशाली आचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। शिथिलाचार के विरुद्ध इन आचार्य ने तीव्र आन्दोलन किया जैनसाहित्य को समृद्ध बनाने में इनका उल्लेखनीय योग रहा है। संस्कृत और प्राकृत भाषा में तत्वज्ञान, दर्शनशास्त्र कथासाहित्य, और विविध विषयक तलस्पर्शी विवेचन करने वाले न केवल दो चार ग्रन्थ ही लिखे किन्तु १४४४ प्रकरणों के कर्त्ता के रूप में आपकी सर्वविश्रुत प्रसिद्ध है। इन आचार्य की अनेक साहित्यिक कृतियाँ हैं।

इस विपुल ग्रंथराशि पर से इसके निर्माता की बहुश्रुतता, सागर वर गम्भीर विद्वत्ता और सर्वतोमुखी प्रतिभा का सरल परिचय मिलता है। आगमों के गूढ़ से गूढ़ विषयों का भावोद्घाटन करने वाली टीकाएँ आध्यात्मिक विवेचन करने वाले प्रकरण, योग सबधी नवीन प्ररूपण और विस्तृत दार्शनिक चर्चाओं के साथ अनेकान्त का विवेचन, इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय कराने के लिए पर्याप्त हैं।

हरिभद्र सूरि महान् सिद्धान्तकार और दार्शनिक विचारक तो थे ही परन्तु श्रेष्ठ कथाकार और कवि भी थे। 'समराइच्च कहा' से इनकी कथाशैली और काव्य कल्पना का सुन्दर परिचय मिलता है।

आचार्य हरिभद्र जैनयोगसाहित्य के युग-प्रवर्त्तक हैं। इनके पहले जैनशास्त्र में योग सम्बन्धी वर्णन चवदह गुणस्थान, ध्यान, दृष्टि आदि के रूप में था परन्तु आचार्य हरिभद्र ने इसे नवीन और लाक्षणिक-शैली से दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया। इनके बनाये हुए योगबिन्दु, योगदृष्टि समुच्चय, योगशतक और षोडशक ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं। पातंजल योग सूत्र में वर्णित प्रक्रिया के साथ इन्होंने जैनयोग की तुलना भी की है। 'योग दृष्टि समुच्चय' में आठ दृष्टियों का किया गया वर्णन समस्त योग साहित्य में एक नवीन दिशा है। आचार्यश्री के योग विषयक ग्रन्थ उनकी योगाभिरूचि और योग विषयक व्यापक बुद्धि के उत्कृष्ट नमूने हैं! पं० सुखलालजी ने योग दर्शन पर निबंध लिखते हुए उक्त प्रकार से भाव प्रकट किये हैं।

अकलंक—हरिभद्र के समकालीन दिगम्बर परम्परा में अकलंक नामक महा विद्वान् नैयायिक हुए। इन्होंने इस शताब्दी में मुख्यतया जैनप्रमाण शास्त्र को पल्लवित किया। "दिग्नाग के समय से बौद्ध और बौद्धेतर प्रमाण शास्त्र में जो संघर्ष चला उसके फलस्वरूप अकलंक ने स्वतंत्र जैनदृष्टि से अपने पूर्वाचार्यों को परम्परा का ध्यान रखते हुए जैनप्रमाण-शास्त्र का व्यवस्थित निर्माण और 'स्थापन किया"। इनके बनाये हुए ग्रन्थ इस प्रकार है--अष्टशती,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लघीयस्त्रय, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय, सिद्धिनिश्चय और तत्वार्थ की राजवर्तिक टीका।

विद्यानन्दः—विक्रम की नौवीं शताब्दी में दिगम्बराचार्य विद्यानन्द हुए। इन्होंने 'अष्टसहस्त्री' नामक प्रौढ़ ग्रन्थ लिखकर अनेकान्तवाद पर होने वाले आक्षेपों का तर्कसंगत उत्तर दिया है। तत्वार्थसूत्र पर श्लोकवार्तिक नाम से टीका लिखी है। आप्तपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, सत्यशासन परीक्षा, युक्त्यनुशासनटीका, श्रीपुरपार्श्वनाथ स्तोत्र, विद्यानन्द महोदय (अनुपलब्ध) ग्रंथ भी आपके हैं।

उद्योतनसूरी (दाक्षिण्यांक सूरी) इन आचार्य ने वि० सं० ८३४ में "कुवलयमाला" नामक प्रसिद्ध कथा प्राकृतभाषा में बनाई। चम्पू ढंग की यह कथा प्राकृतसाहित्य की अमूल्य निधि है।

आचार्य जिनसेनः—इन्होंने हरिवंश पुराण की रचना की।

वीरसेन-जिनसेनः—इन दिगम्बर आचार्यों ने धवला और जयधवला नामक विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। दिगम्बर परम्परा में इनका बड़ा महत्व है। धवला और जयधवला के बीस हजार श्लोकों का निर्माण वीरसेन ने किया।

धनंजय—इन्होंने धनजय नाम माला नामक कोश ग्रन्थ लिखा है। द्विसंधान काव्य (राघवपाण्डवीय) तथा विषापहार स्तोत्र इनकी रचनाएँ हैं।

शीलांकाचार्य—सवत् ९३३ में इन आचार्य ने आचारांग सूत्र पर तथा वाहरीगण की सहायता से सूत्रकृताङ्ग पर संस्कृत में टीकाएँ रचीं। जीवसमास पर वृत्ति भी लिखी। शीलाचार्य ने दस हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत गद्य में ५४ महापुरुषों के चरित्र लिखे हैं (चउपन्नमहापुरिस चरियं)। ये शीलाचार्य और शीलाङ्काचार्य एक ही हैं या अन्य हैं यह अनिश्चित है। इसी नामके कई आचार्य हुए हैं।

सिद्धर्षिसूरि—ये महान् जैनाचार्य हुए हैं। इन्होंने 'उपमितिभव प्रपञ्च कथा नामक' विशाल रूपक ग्रन्थ की रचना की है।

इन सिद्धर्षि ने चन्द्रकेवलि चरित्र को प्राकृत से संस्कृत में परिवर्त्तित किया। न्यायावतार पर संस्कृत टीका लिखी। वि० सं० ९७४ में इन्होंने धर्मदास गणिकृति प्राकृत उपदेशमाला पर संस्कृत विवरण लिखा है।

अनन्त वीर्य—इन्होंने अकलंक के सिद्धिविनिश्चय ग्रन्थ की टीका लिख कर अनेक विद्वानों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

माणिक नंदीः—अकलंक के ग्रन्थों के अधार पर इन्होंने 'परीक्षामुख' नामक न्याय ग्रन्थ की रचना की है। इस पर प्रभाचंद्राचार्य ने 'प्रमेयकमलमार्त्तंड' नामक प्रौढ़ और विशाल टीका लिखी है।

देवसेन—इन्होंने दर्शनसार, आराधनासार, लघुनयचक्र, वहन्नयचक्र, आलाप पद्धति और भावसंग्रह ग्रन्थ लिखे हैं। कवि पम्प ने आदिपुराण चम्पू, विक्रमार्जुन विजय तथा कवि पान्न ने शान्ति पुराण ग्रन्थ लिखा है।

तर्कपञ्चानन अभयदेव सूरिः—ये पद्युम्नसूरि के जो वैदिक शास्त्रों के पारगामी और वाद-कुशल थे। शिष्य थे। अभयदेव सूरि को न्यायवनसिंह और तर्कपञ्चानन की उपाधि प्राप्त थी। इन्होंने सिद्धसेन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दिवाकर के सन्मति तर्क पर पचवास हजार श्लोक प्रमाण बादमहार्णव नाम से विस्तृत टीका लिखी है। इसे इससे पूर्ववर्ती सकल दार्शनिक ग्रन्थों का संदोहन कह सकते हैं। इन आचार्य का समय १०५४ से पूर्व ही सिद्ध होता है।

प्रभाचन्द्रः—आपने प्रमाण शास्त्र पर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' लिखा। ये दिगंबर परम्परा के आचार्य हुए हैं। आपने आचार्य अकलंक की कृतियों का दोहन करके व्यवस्थित पद्धति से इस प्रौढ दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने न्यायकुमुदचन्द्र नामक टीका लघीयस्त्रय ग्रन्थ पर लिखी है।

शान्ति सूरिः—ये पाटन धनपाल की प्रेरणा से धारा नगरी में आये थे। राजा भोज ने इनका सत्कार किया था। उसकी सभा के पण्डितों को जीतने से भोज ने इन्हे 'वादिवेताल' का उपाधि दी थी। इन्होने उत्तराध्ययन सूत्र पर सुन्दर टीका लिखी जो 'पाइअटीका' के नाम से प्रसिद्ध है।

जिनेश्वर—ये वर्धमानसूरि के शिष्य थे। पाटन में दुर्लभ राजा के समय में चैत्यवासियों का जोर था। जिनेश्वरसूरि ने राजा के सरस्वती भण्डार से दशवैकालिकसूत्र निकाल कर उसे बताया कि साधु का सच्चा आचार यह है; चैत्यवासियों का आचार शास्त्रानुकूल नहीं है। राजा ने 'खरतर' (कठोर आचार पालन वाले) की उपाधि उन्हें प्रदान की। तब से खरतरगच्छ की स्थापना हुई।

नवांगी वृत्तिकार अभयदेव—उक्त जिनेश्वरसूरी के शिष्य अभयदेवसूरी और जिनचन्द्रसूरी हुए। इन अभयदेव सूरी ने आचारांग और सूत्रकृतांग को छोड़कर शेष नौअंग सूत्रों पर संस्कृतभाषा में टीका लिखी।

चन्द्रप्रभसूरीः—इन्होंने पौर्णमिक गच्छ की सं० ११४६ में स्थापना की। दर्शनशुद्धि और प्रमेय रत्नकोश नामक ग्रन्थ रचे।

जिनदत्तसूरी—ये जिनवल्लभ सूरी के शिष्य और पट्टधर थे। इन्होंने अनेक क्षत्रियों को प्रतिबोध देकर जैनधर्मानुयायी बनाये। ये खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य हुए। ये "दादा गुरु" के नाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। अजमेर में इनका स्वर्गवास हुआ। स्थानीय दादावाड़ी इन्हीं का स्मारक है। इनके बनाये हुए ग्रन्थ इस प्रकार हैं—गणधरसार्धशतक, गणधर सप्तति, कालस्वरूप कुलक, विशिका, चर्चरी, सन्देहदोलावलि, सुगुरुपारतन्त्र्य, स्वार्थाधिष्ठायिस्तोत्र, विघ्नविनाशिस्तोत्र, अवस्थाकुलक, चैत्यवन्दनकुलक, और उपदेशरसायन।

बृहदगच्छीय हेमचन्द्रः—इन आचार्य ने नाभेयनेमि द्विसंधान काव्य की रचना की। यह ऋषभदेव और नेमिनाथ दोनों को समानरूप से लागू होता है अतः द्विसंधान काव्य कहा जाता है।

मलधारी हेमचन्द्रः—ये मलधारी अभयदेव के शिष्य थे। ये अत्यन्त प्रभावक व्याख्याता थे। सिद्धराज जयसिंह इनके व्याख्यानों को बड़े ध्यान से सुनता था। और इनकी प्रेरणा से जैनधर्म के लिए उसने कई हितकारी कार्य किये थे। इनकी परम्परा में हुए राजशेखर ने प्राकृत द्वयाश्रयवृत्ति (सं० १३८१) में लिखा है कि ये प्रद्युम्न नामक राजसचिव थे और अपनी चार स्त्रियों को छोड़ कर अभयदेव के शिष्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बने थे। ये आचार्य हेमचन्द्र बड़े विद्वान् और साहित्य निर्माता थे। इनके ग्रन्थों का प्रमाण लगभग एक लाख श्लोक का है

इन आचार्य ने माभिनेमि द्विसधान काव्य की रचना की। यह ऋषभदेव और नेमिनाथ दोनों को समानरूप से लाग् होता है अतः द्विसंधान काव्य कहा जाता है। देवभद्रसूरि—ये नवाँगी टीकाकार अभयदेव के सुशिष्य थे। इन्होंने आराहणासत्य, वीरचरियं, कहारयण कोस, पार्श्वनाथ चरित्र की रचना की।

मुनि चन्द्रसूरिः—ये वृहद्गच्छ के यशोभद्र और नेमिचन्द्र के शिष्य थे। ये बड़े तपस्वी थे और सोवीर (कांजी) पीकर रहे जाते इसलिए 'सौवीर-पायी' भी कहे जाते हैं। इनकी आज्ञा में पांच सौ श्रमण थे। इन्होंने कई ग्रन्थों पर टीकयें लिखी हैं।

कई छोटे २ प्रकरण ग्रन्थ लिखे हैं। ये प्रसिद्ध वादिदेवसूरि के गुरु थे।

वादी देवसूरि—इनाका जन्म गुर्जरदेश के महाह्रत ग्राम में प्राग्वाट (पोरवाड़) वणिक कुल में सं० ११४३ में हुआ था। सं० ११५२ में नौ वर्षकी अवस्था में इन्होंने दीक्षा धारण की और ११७४ में आचार्य पद परआरूढ़ हुए। ये आचार्य वादकुशल होने से वादी की उपाधि से सम्मानित हैं सिद्धराज की सभा में इन्होंने दिगम्बराचार्य श्री कुमुदचन्द्र से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी सिद्धराज ने इन्हें जयपत्र और लक्ष स्वर्णमुद्रा तुष्टिदान देना चाहा परन्तु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। महामन्त्री आशुक की सम्मति से सिद्धराज ने इस द्रव्य से जिनप्रसाद करवाया। ये आचार्य बड़े नैयायीक थे। इन्होंने न्यायशास्त्र का 'प्रमाणनयतत्वालोक' नामका सूत्रग्रन्थ लिखा और उस पर स्याद्वादरत्नाकर नामक वृहत्काय टीका लिखी। इनमें इन्होंने अपने समय तक की समस्त दार्शनिक चर्चाओं का संग्रह कर दिया है तथा अन्य वादियों की युक्तियों का सचोट उत्तर दिया है। इसकी भाषा काव्यमय और आह्लादक है। न्यायग्रन्थों में इसका उच्चस्थान है। इनका स्वर्गवास सं० १२२६ में (कुमारपाल के समय में) हुआ।

सिंह व्याघ्रशिशुः—वादीदेव के समकालीन आनन्दसूरि और अमरचन्द सूरी हुए। ये नागेन्द्र-गच्छ के महेन्द्रसूरी-शान्तिसूरी के शिष्य थे। बाल्यावस्था से ही वाद प्रवीण होने से तथा कई वादियों को वाद में पराजित करने से सिद्धराज ने इन्हें क्रमशः 'व्याघ्राशिशुक' और 'सिंह शिशुक' की उपाधि दी थी। अमरचन्द सूरी का सिद्धान्तार्णव ग्रन्थ था लेकिन वह उपलब्ध नहीं है।

श्री चन्द्रसूरिः—ये मलधारी हेमचन्द के शिष्य थे। इन्होंने संग्रहणी रत्न और मुनिसुव्रत चरित्र (१०६६४ गाथा) की रचना की। हेमचन्द के दूसरे शिष्य विजयसिंह सूरि ने धर्मोपदेशमाला विवरण (१४४७१६ श्लोक प्रमाण) लिखा। हेमचन्द के तीसरे शिष्य विबुधचन्द ने 'क्षेत्रसमास' तथा चतुर्थ शिष्य लक्ष्मण गणी ने 'सुपासनाह चरिय' लिखा।

कवि श्रीपालः—सिद्धराज जयसिंह का विद्वत्सभा के सभापति कविराज श्रीपाल थे। ये पोरवाड़ वैश्य जन थे। इन्होंने एक दिन में 'वैरोचन पराजय' नामक महाप्रबन्ध बनाया जिससे सिद्धराज ने इन्हें 'कवि-चक्रवर्ती की उपाधि दी थी। इनके ग्रंथ सहस्त्रलिंग सरोवर प्रशस्ति, दुर्लभ सरोवर प्रशस्ति, रूद्रमाल प्रशस्ति, और और आनंदपुर प्रशस्ति है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र

कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र, न केवल जैन-धर्म की अपितु अतीत भारत की भव्य विभूति हैं। ये संस्कृत प्राकृत साहित्य संसार के सार्वभौम चक्रवर्ती कहे जा सकते हैं। कलिकालसर्वज्ञ की उपाधि इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देने के लिए पर्याप्त है। पिटर्सन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें ज्ञान के महासागर' की उपाधि से अलंकृत किया है। साहित्य का कोई भी अंग अछूता नहीं है जिस पर इन महाप्रतिभा सम्पन्न आचार्य ने अपनी चमत्कृति-पूर्ण लेखनी न चलाई हो। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, वैद्यक, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र राजनीति योगविद्या, ज्योतिष, मंत्रतन्त्र, रसायन विद्या आदि पर आपने विपुल साहित्य का निर्माण किया। कहा जाता है कि इन्होंने साढ़े तीन क्रोड़ श्लोक प्रमाण ग्रन्थों की रचना की थी। वर्त्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों का प्रमाण इतना नहीं है इससे प्रकट होता है कि दूसरे ग्रन्थ विलुप्त हुए होंगे। तदपि उपलब्ध ग्रन्थों का प्रमाण भी विस्मय पैदा करने वाला है। इन आचार्य को आज के युग के अनुरूप भाषा में 'जीवित-विश्वकोष' की उपाधि दी जा सकती है।

जीवन परिचयः—गुर्जर प्रान्त के धन्धुकाग्राम में एक मोढ वणिक् दम्पति के यहाँ सं. ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को इनका जन्म हुआ। पिता का नाम चाचदेव और माता का नाम चाहिनीदेवी था इनका बाल्य नाम चगदेव था। एक दिन आचार्य देवचन्द्रसूरि धंधुका में आये। उनके उपदेश श्रवण हेतु चंगदेव भी अपनी माता के साथ उपाश्रय में गया। बालक के शुभलक्षणों से आचार्य ने जान लिया कि यह बालक आगे चलकर महा प्रभावक होगा अतः उन्होंने उसके माता-पिता को शासन की प्रभावना के लिए बालक को उन्हें सौंप देने के लिए समझाया। हर्षातिरेक और पुत्रप्रेम से गद्गद् होकर माता ने उस बालक को आचार्य श्री को सौंप दिया। आचार्य उसे लेकर खम्भात पधारे। यहाँ जैनकुल भूषण मंत्री उदयन शासन के रूप में नियुक्त थे। थोड़े समय तक वहाँ रखने के बाद सं० ११५४ में इन्हें दीक्षा दी गई और सोमचन्द्र नाम रक्खा गया। सं० ११६६ में आचार्य पद प्रदान किया और 'हेमचन्द्र सूरि' नाम रक्खा। इस समय इनकी अवस्था केवल २१ वर्ष की थी।

हेमचन्द्राचार्य विचरते २ गुजरात की राजधानी पाटन में आये। पाटन नरेश सिद्धराज जयसिंह इनकी विद्वत्ता से मुग्ध हो गया। अपनी विद्वत्सभा में इन्हें उच्च स्थान प्रदान किया और इन पर असाधारण श्रद्धा रखने लगा। धीरे २ सिद्धराज की सभा में इनका वही स्थान हो गया जो विक्रमादित्य की सभा में कालिदास का और हर्ष की सभा में बाणभट्ट का था। नरेश सिद्धराज जयसिंह की विशेष विनंति पर आचार्य श्री ने एक सर्वांग सम्पन्न बृहत्-व्याकरण की रचना की और इस व्याकरण का नाम "सिद्धहैम" रखा। जो सिद्धराज और आचार्य श्री के पुण्य संस्मरणों का सूचक है।

आचार्य श्री का सिद्धराज पर बड़ा प्रभाव था। यद्यपि सिद्धराज शैव था तदपि इन आचार्य श्री के प्रभाव से उसने जैनधर्म के लिए कई उपयोगी कार्य किये।

सिद्धराज के बाद पाटन की राजगद्दी पर कुमारपाल आया। कुमारपाल के संकट दिनों में आचार्य श्री ने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ही उसे संरक्षण और आश्रय दिया था। राज्यारूढ होने पर कुमारपाल ने आचार्य श्री से जैनधर्म अंगीकार कर लिया और अपने सारे राज्य में अमारि-घोषणा करवादी। कुमारपाल आचार्य हेमचन्द्र को अपना गुरु मान कर सदा उनका कृतज्ञ और भक्त बना रहा। आचार्य श्री ने भी उसे 'परमार्हत' के पद से सम्बोधित किया। कुमारपाल का राज्य आदर्श जैनराज्य था।

आचार्य श्री की मुख्य २ साहित्यक रचनाएँ इन प्रकार हैं:-सिद्ध हैम व्याकरण:—

"सिद्ध हैम व्याकरण" के ८ अध्याय हैं। प्रथम सात में संस्कृत भाषा का सम्पूर्ण व्याकरण आगया है और आठवें अध्याय में प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची और अपभ्रंश-इस षड्भाषाओं का व्याकरण है।

सम्पूर्ण कृति १ लाख २५ हजार श्लोक प्रमाण है। इस व्याकरण की रचना में आचार्य श्री की प्रकर्षप्रतिभा का पद-पद पर परिचय मिलता है।

काव्य कृतियाँ—आपने व्याकरण में आई हुई संस्कृत शब्दसिद्धि और प्राकृत रूपों का प्रयोगात्मक ज्ञान कराने के लिए संस्कृत द्वयाश्रय और प्राकृत द्वयाश्रय नामक दो उत्कृष्ट महाकाव्यों की आचार्य श्री ने रचना की है। काव्य कला की दृष्टि से दोनों श्रेष्ठ कोटि के महाकाव्य हैं। संस्कृत काव्य पर अभयतिलक गणि ने सत्तर हजार पांचसौ चहोत्तर श्लोक प्रमाण टीका लिखी है और प्राकृत काव्य पर पूर्णक श गणि ने चार हजार दो सौ तीस श्लोक प्रमाण टीका लिखी है। गुजरात के इतिहास की दृष्टि से भी इन काव्यों का पर्याप्त महत्त्व है।

कोष ग्रन्थ: व्याकरण और काव्य रूप ज्ञानमन्दिर के स्वर्णकलश के समान चार कोष ग्रन्थों की आचार्य हेमचन्द्र ने रचना की है। अभिधान चिन्तामणि में ६ काण्ड हैं। अमर कोष की शैली का होने पर भी उसकी अपेक्षा इसमें ज्यादे शब्द दिये गये हैं। इस पर दस हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है। दूसरा कोष 'अनेकार्थ संग्रह' है। इसमें एक ही शब्द के अधिक से अधिक अर्थ दिये हैं। इस पर भी स्वोपज्ञ वृत्ति है। तीसरा कोष "देशी नाम माला" है। इसमें प्राचीन भाषा के ज्ञान हेतु देशी शब्द हैं। चौथा कोष निघण्टु है जिसमें वनस्पतियों के नाम और भेदादि बताये गये हैं। यह कोष यह बताता है कि आयुर्वेद में भी आचार्य श्री की अव्याहतगति थी।

छन्दशास्त्र-पर 'छन्दोअनुशासनम्' अनुपम कृति है।

काव्यानुशासनम्:—इसमें साहित्य के अंग, रूप, रस, अलंकार, गुण, दोष, रीत्त आदि का मर्मस्पर्शी विवेचन किया गया है। इस पर 'अलंकार चूडामणि, नामक स्वोपज्ञ वृत्ति है तथा अलंकार वृत्तिविवेक नाम दूसरी स्वोपज्ञ टीका भी है।

योगशास्त्र:-इसका दूसरा नाम आध्यात्मोपनिषद् है। इस पर बारह हजार श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ टीका है। इसमें आध्यात्मिक योग निरुपण के साथ २ आसन, प्राणायाम, पिण्डस्थ, पदस्थ आदि ध्यानों का निरुपण भी किया गया है।

कथाग्रन्थ:—समुद्र के समान विस्तृत और गम्भीर 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' और 'परिशिष्टपर्व' आपकी महान् कथा कृति है। इसका परिमाण ३४ हजार श्लोक प्रमाण है। इसमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, और ९ प्रतिवासु-देवों के चरित्र वर्णित हैं। यह महाकाव्य कहा जा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकता है। परिशिष्ट पर्व में भगवान महावीर से लेकर युगप्रधान वज्रस्वामी तक का इतिहास उल्लिखित है। ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करने वाला यह मुख्य ग्रन्थ है।

न्यायग्रन्थ:—प्रमाणमीमांसा और दो 'अयोग व्यवच्छेदिका' तथा 'अन्ययोग व्यवच्छेदिका' रूप स्तुतियाँ आपकी दार्शनिक कृतियाँ हैं। आचार्य श्री ने अपने समय तक के विकसित प्रमाण शास्त्र की सारभूत बातें लेकर प्रमाणमीमांसा की सूत्रबद्ध रचना की है। न्याय-ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का बड़ा महत्व है। उदयनाचार्य ने कुसुमाञ्जलि में जिस प्रकार ईश्वर की स्तुति रूप में न्यायशास्त्र को गुम्फित किया है इसी तरह आचार्य हेमचन्द्र ने भी महावीर की स्तुति रूप में इनकी रचनाएँ की हैं श्लोकों की रचना महाकवि कालिदास की शैली का स्मरण कराती है। अन्ययोग व्यवच्छेदिका पर मल्लिषेण सूरी ने स्याद्वादमंजरी नामक प्राञ्जल टीका लिखी है।

नीतिग्रन्थ में अर्हन्नीति आपके द्वारा रचित कही जाती है परन्तु इसमें सन्देह है क्योंकि यह आपकी प्रतिभा के अनुरूप कृति नहीं है।

इस प्रकार व्याकरण, काव्य, कोष छन्द, धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, आयुर्वेद, नीति आदि विषयों पर आपका पूर्ण अधिकार होने से तथा सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी होने से आपका नाम 'कलिकालसर्वज्ञ' बिल्कुल यथार्थ सिद्ध होता है।

आचार्य श्री ने साहित्य सेवा के अतिरिक्त भी जैनधर्म की महती प्रभावना की है। कहा जाता है कि आपने डेढ लाख मनुष्यों को जैन धर्मानुयायी बनाया था। श्रीमद् राजचन्द्र ने लिखा है कि आचार्य श्री चाहते तो अपनी प्रतिभा के बल पर अलग सम्प्रदाय स्थापित कर सकते थे परन्तु यह उनकी उदारता और निस्पृहता थी कि उन्होंने जैनधर्म को ही दृढ़, स्थायी और प्रभावशाली बनाने में ही अपनी समस्त प्रतिभा का सदुपयोग किया। अन्त में ८४ वर्ष की आयु में सं० १२२९ में गुजरात की ही नहीं समस्त भारत की यह असाधारण विभूति अमर यश को छोड़कर दिवंगत हो गई।

जैन संसार और संस्कृत-प्राकृत संसार में आचार्य हेमचन्द्र का यावच्चन्द्र दिवाकरौ अमर रहेगा। आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ने कहा है:—"ई० सन् १०८९ तक के वर्ष कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र के तेज से देदीप्यमान है।" जनधर्म और भारतीयसाहित्य के इस महान् ज्योतिर्धर से भारतीय साहित्य का इतिहास सदा जगमगाता रहेगा।

रामचन्द्र सूरी:—श्री हेमचन्द्राचार्य काव्य, न्याय और व्याकरण के पारगामी विद्वान् होने से ये 'त्रैविद्यवेदी' के विशेषण से विभूषित थे। सिद्धराज जयसिंह ने इन्हें 'कवि कटारमल्ल' की उपाधि प्रदान की थी।

हेमचन्द्राचार्य के शिष्यमण्डल में रामचन्द्रसूरि के अतिरिक्त गुणचन्द्र गणी, महेन्द्रसूरि, वर्धमान गणी, देवचन्द्र मुनी, यशश्चन्द्र, उदयचन्द्र, बालचन्द्र आदि अनेक विद्वान् शिष्य थे। गुणचन्द्र गणी द्रव्यालंकार और नाट्यदर्पण की रचना में रामचन्द्रसूरि के सहयोगी रहे।

महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थ संग्रहकोश पर 'अनेकार्थ कैरवाकर कौमुदी' टीका लिखी। वर्धमान गणि ने कुमारविहार शतक पर व्याख्या और 'चन्द्रलेखा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विजय' नाटक लिखा। बालचन्द्रगणि ने मानमुद्रा भंजन नाटक और 'स्नातस्या' स्तुति लिखी। रामभद्र (देवसूरि संतानीय जयप्रभसूरि के शिष्य) ने इसी समय "प्रबुद्ध रौहिणेय" नाटक लिखा।

राजा अजयपाल के जैनमन्त्री यशःपाल ने 'मोह-पराजय' नाटक लिखा। आचार्य मल्लवादी ने 'धर्मोत्तर टिप्पनक' नामक दार्शनिक टीका ग्रन्थ लिखा।

रत्नप्रभसूरीः—ये प्रसिद्धवादी वादीदेवसूरि के शिष्य थे। इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'स्याद्वादरत्नाकरावतारिका' है जो स्याद्वाद रत्नाकर में प्रवेश करने के लिए सहायक रूप में लिखी। इसमें तर्की सुन्दर भाषा में न्याय का शुष्क विषय प्रतिपादित किया गया है कि पढ़ते २ काव्य का आनन्द आता है। स्याद्वाद रत्नाकर की अपेक्षा 'अवतारिका' का प्रचलन अधिक हुआ। इन्होंने प्राकृत भाषा में नेमिनाथ चरित्र सं० १२३३ में लिखा। १२३८ में धर्मदास कृत उपदेशमाला पर दोहरी वृत्ति लिखी।

महेश्वरसूरि (वादीदेवसूरि के शिष्य) ने पाक्षिक-सप्तति पर सुखप्रबोधिनी टीका लिखी। सोमप्रभसूरि ने 'कुमारपाल प्रतिबोध' नामक ग्रन्थ लिखा। हेमप्रभसूरि—ने 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' पर वृत्ति लिखी। परमानन्दसूरि (वादिदेवसूरि के प्रशिष्य) ने खंडन-मण्डन टिप्पन लिखा। देवभद्र ने प्रमाणप्रकाश और श्रेयांसचरित्र लिखा। सिद्धसेन (देवभद्र के शिष्य) ने प्रवचन सारोद्धार (नेमिचन्द्र कृत) पर तत्वज्ञान विकासिनी टीका, सामाचारी पद्मप्रभ चरित्र और स्तुतियाँ लिखी। महाकविआसड़—इस महाकवि को कविसभाशृंगार की उपाधि थी। इन्होंने कालिदास के मेघदूत पर टीका लिखी तथा उपदेश कंदली, विवेक मंजरी और कतिपय स्तोत्र लिखे।

नेमिचन्द्रश्रेष्ठी—इन्होंने 'सट्ठिसय' नामक ग्रन्थ प्राकृत में रचा। 'उपदेश रसायन' और 'द्वादशकुलक पर विवरण लिखे, नेमिचन्द्र इन्होंने प्रवचन सारोद्धार की विषमपद व्याख्या टीका, 'शतक कर्मग्रंथ' पर टिप्पनक और कर्मस्तव पर भी टिप्पनक लिखे।

तिलकाचार्य—इन्होंने जीतकल्प वृत्ति, सम्यक्त्व प्रकरण की टीका (पूर्ण की), आवश्यकनियुक्ति, लघुवृत्ति, दशवैकालिक टीका, श्रावक प्रायश्चित्त-समाचारी, पोषध प्राश्रितसमाचारी, वंदनकप्रत्याख्यान लघुवृत्ति, श्रावकप्रतिकमणसत्र लघुवृत्ति, और पाक्षिक सूत्रावचूरि ग्रंथ लिखे हैं।

संस्कृत साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इनके ग्रंथों की कीर्ति जनसमाज में ही अपितु ब्राह्मण समाज में भी प्रख्यात है। 'इनके बाल भारत' और कवि कल्पलता नामक ग्रंथ ब्राह्मण समाज में विशेष प्रख्यात थे।

बालचन्द्रसूरिः—इन्होंने वस्तुपाल की प्रशसा में वसन्तविलास नामक महाकाव्य की रचना की। करुणात्रजायुध नाटक-उपदेश कंदली पर टीका तथा विवेकमंजरी पर टीका भी इनकी रचनाएँ है। जयसिंह सूरि ने वस्तुपाल तेजपाल प्रशस्तिकाव्य, और हम्मीर-मदमर्दननाटक लिखा। उदयप्रभसूरि ने सुकृतकल्लोलिनी, धर्माभ्युदय महाकाव्य, नेमिनाथ चरित्र, आरंभसिद्धी ज्योतिषग्रन्थ, षडशीति और कर्मस्तव पर टिप्पन, उपदेशमाला कर्णिका टीका आदि ग्रन्थ लिखे।

नरचन्द्रसूरि—इन्होंने वस्तुपाल के आग्रह से 'कथारत्न सागर' ग्रन्थ की रचना की। इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—प्राकृतदीपका प्रबोध, कथा रत्नसागर,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अनघराघव टिप्पन, न्यायकंदली (श्रीधर) टीका, ज्योतिः सार और चतुर्विंशति जिन स्तुति। इनके शिष्य नरेन्द्रप्रभ ने अलंकार महोदधि की रचना की। इनके गुरू श्री देवप्रभसूरि ने पाण्डव चरित्र, मृगावती चरित्र और काकुत्स्थकेलि ग्रन्थों की रचना की। माणक्यचंद्रसूरि ने 'पार्श्वनाथ चरित्र', शांतिनाथ चरित्र और 'काव्य प्रकाश संकेत' लिखे।

देवेन्द्रसूरिः—

तपागच्छ के स्थापक जगच्चंद्रसूरि के पट्टधर देवेन्द्रसूरि हुए। इन्होंने पांच कर्म ग्रंथों को नवीन रूप दिया। इन पर स्वोपज्ञ टीकाएँ भी लिखीं। इसके अतिरिक्त देवनंदन, गुरूवंदन और प्रत्याख्यान नामक तीन भाष्य भी लिखे। सिद्ध पंचाशिका (?) धर्मरत्न टीका और श्राद्धदिनकृत्यसवृत्ति ग्रंथ भी इन्होंने रचे हैं। दानादि कुलक, सुदर्शना चरित्र तथा अनेक स्तवनों तथा प्रकरणों की आपने रचना की है। इन आचार्य की व्याख्यानशैली बड़ी प्रभाविक थी इनके व्याख्यान में (खम्भात के कुमार प्रासाद में) १८०० मनुष्य तो सामायिक करने बैठते थे। वस्तुपाल मंत्री भी इनके श्रोताओं में से एक थे। इनका स्वर्गवास १३२७ में हुआ।

धर्मघोषसूरिः—

ये देवेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने संघाचार-भाष्य चैत्यवंदन भाष्य-विवरण लिखा। कालसप्तती सावचूरि-कालस्वरूप विचार, श्राद्धजीतकल्प दुषमकाल संस्तोत्र और चातुर्वशक्ति जिनस्तुति की भी रचना की। इनके शिष्य सोमप्रभ ने यति जीतकल्प और २८ यमकस्तुतियाँ लिखी।

ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे इन्होंने संस्कृत में 'प्रत्येक बुद्ध चरित्र' नामक १७ सर्ग का महाकाव्य रचा। पूर्णकलश ने द्वयाश्रय पर वृत्ति रची। अभयतिलक—सं० १३१२ में हेमचंद्राचार्य के द्वयाश्रय काव्य पर वृत्ति पूर्ण की।

ये भी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। मुनिदेवसूरिः—ये वादिदेवसूरि वंश में मदनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत में शांतिनाथ चरित्र और धर्मोपदेश-माला पर वृत्ति रची। सिंहतिलक सूरि से १३२२ से २६ तक यशोदेवसूरि के शिष्य विबुधचंदसूरि तच्छिष्य सिंहतिलक सूरि ने वर्धमान विद्याकल्प, लीलावती वृत्तियुक्त, गणिततिलकवृत्ति, मंत्रराज रहस्य, और भुवनदीपक वृत्ति ग्रंथ लिखा। प्रभाचंद्र सूरि ने संवत् १३३८ में प्रभावक चरित्र लिखा। उदयप्रभसूरि विजयसेन के शिष्य उदयप्रभसूरि ने धर्माभ्युदय काव्य लिखा। मल्लिषेण—इन्होंने आचार्य हेमचंद्र जी अन्ययोगव्यवच्छेदिका द्वात्रिंशिका पर स्याद्वाद-मंजरी नामक सुन्दर दार्शनिक टीका (सं० १३४६ में) लिखी।

जिनप्रभसूरि लघु खरतरगच्छ प्रवर्तक जिनसिंह सूरि के शिष्य जिनप्रभसूरि एक असाधारण प्रतिभावान ग्रंथ निर्माता हुए हैं। इन्होंने विविध तीर्थ-कल्प-कल्पप्रदीप लिखे। इन सूरि के प्रतिदिन नया स्तवन बनाने की प्रतिज्ञा थी। इन्होंने विविध छन्दों में नई २ तरह के सात सौ स्तवन बनाये ऐसा कहा जाता है।

मेरुतुंगः—

नागेन्द्रगच्छ के चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य मेरुतुंग सूरि, ने सं० १३६१ में वर्धमानपुर में प्रबन्धचिंतामणि तथा विचारश्रेणी स्थविरावली लिखे। इसमें

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इतिहास की सामग्री भरी पड़ी है। पाश्चात्य विद्वानों ने इन ग्रंथों को विश्वसनीय माना है। गुजरात के इतिहास के लिए तो यह एक आधार भूत ग्रंथ गिना जा सकता है।

इसी प्रकार सुधाकलश, सोमतिलक, राजशेखर-सूरि, रत्नशेखर, जयशेखर सूरि, मेरूतुंग आदि बड़े विद्वान् साहित्यकार हुए हैं जिनकी कृतियाँ क्रमशः संगीत, दर्शन, प्रबन्ध, कोष, चरित्र विषयक कई ग्रंथ रचे हैं। स्थानाभाव से विशेष परिचय नहीं दे पा रहे हैं।

इस शताब्दी में देवसुन्दरसूरि महाप्रभाविक आचार्य हुए इन्होंने अनेक ताडपत्रीय प्रतियों को कागज पर लिखवाया। इनके अनेक विद्वान् शिष्य हुए।

हीर विजय सूरिः—सतरहवीं शताब्दी के मुख्य प्रभावकपुरुष जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरि हुए जिन्होंने अकबर बादशाह पर गहरी छाप डाली। इनके विद्वान् शिष्य भानुचन्द्र उपाध्याय तत् शिष्य सिद्धिचन्द्र उपाध्याय, आदि ने साहित्यरचना के द्वारा संस्कृत-साहित्य की समृद्धि की।

श्री धर्मसागर उपाध्याय, विजयदेवसूरि, ब्रह्ममुनि, चन्द्रकीर्ति, हेमविजय, पद्मसागर, समयसुन्द, गुण-विनय, शांतिचन्द्र गणि, भानुचन्द उपाध्याय, सिद्धिचंद्र उपाध्याय रत्नचंद्र, साधुसुंदर, सहजकीर्ति गणि, विनयविजय उपाध्याय, वादिचंद्र सूरि, भट्टारक शुभचंद्र, हर्षकीर्ति आदि अनेक ग्रंथकर्त्ताओं ने इस शताब्दी के साहित्य श्री को समृद्ध बनाया।

मुसलमान शासकों के समय में भी जैनविद्वानों की सरस्वती आराधना का क्रम यथावत् चलता रहा। इस सतरहवीं शताब्दी में और इसकी पूर्ववर्त्ती शताब्दियों में भी जैनमुनियों ने अपनी प्रतिभा से मुसलिम शासकों पर भी अपना अमिट प्रभाव डाला। अतः इस काल में भी उनकी साहित्याराधना का प्रवाह अमोघ रूप से प्रवाहित होता रहा। गुजराती साहित्य के विकास में जैनमुनियों का असाधारण योग रहा है यह सब गुजराती साहित्यवेत्ता स्वीकारते करते हैं।

विजयसूरिजी—आप जगद् गुरु हीर विजयसूरि के पट्टधर हैं। आपने योगशास्त्र के प्रथम श्लोक के ५०० अर्थ किये हैं। आपके पट्टधर विजयदेव सूरि हुए।

विजयदेवसूरि—आप प्रखर शास्त्रार्थ कर्त्ता एवं मंत्र शास्त्र ज्ञाता हुए हैं।

❀ आनन्दघनजी ❀

अध्यात्मयोगी श्री दधनजी इनकी मुख्य प्रवृत्ति अध्यात्म की ओर थी पहले ये लाभानन्द नाम के श्वेताबर मुनि के रूप में थे बाद में अध्यात्मयोगी पुरुष आनन्दघन के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अपनी आध्यात्मिता की झाँकी स्वनिर्मित चौबीसियों में प्रतिबिम्बित की है। इनकी चौबीसियों में जो आध्यात्मिक भाव हैं वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इनके अनेक पद 'आनन्दघन बहोत्तरी' में दिये गये हैं उनमें आध्यात्मिक रुपक, अन्तर्ज्योति का आविर्भाव, प्रेरणामय भावना और भक्तिका उल्लास व्याप्त होता हुआ दिखाई देता है। आनन्दघन जी जैनधर्म की भव्य विभूति हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जगद्गुरु श्री हीरविजय सूरि

मध्य युगीय जैनाचार्यों में जगद्गुरु श्रीहीरविजय सूरि एक अत्यन्त प्रभावशाली एवं धर्म प्रभावक जैनाचार्य हुए हैं। आपकी कीर्ति भारत में सर्वत्र फैल रही थी। आपके अगाध पांडित्य और चामत्कारित तेजस्विता से मुगल सम्राट महान् अकबर बड़ा प्रभावित हुआ था।

आपका जन्म पालनपुर कुंरा नामक ओसवाल जातीय सज्जन के घर सवत् १५८३ में हुआ था। माता का नाम नाथी बाई था। तेरह वर्ष की अवस्था में ही माता पिता स्वर्गवासी हो गये थे। एक समय आप अपनी बहन के यहां पाटण गये हुए थे वहां तपा गच्छीय आचार्य श्री विजयदान सूरि के उपदेश श्रवण का आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ और आपने सं० १५९६ में उक्त सूरिजी के पास दीक्षा ली। प्रारंभिक शिक्षा के बाद आप गुरु आज्ञा ले धर्मसागर मुनि के साथ दक्षिण भारत के देवगिरी स्थान पर एक नैयायिक ब्राह्मण विद्वान के पास न्याय शास्त्र का अध्ययन करने पधारे। इन्हीं दिनों आपने न्यायशास्त्र के गहन अध्ययन के साथ साथ जैन तत्व ज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण सामुद्रिक शास्त्र तथा अन्य दर्शनों का भी अध्ययन किया।

इस प्रकार आपने गहन अध्ययन एवं स्वाध्याय से महान् पांडित्यता प्राप्त की। विद्याध्ययन कर वि० सं० १६०७ में जब वापस गुरुजी के पास लौटे तो आपको 'पण्डित' की पदवी प्रदान की गई। एक वर्ष बाद उपाध्याय पद से विभूषित किया गया। तथा संवत् १६१० में आचार्य की उच्च उपाधि प्रदान की गई। इस समय गुजरात के दूधाराज के जैन मंत्री चांगा सिंघी ने बड़ा उत्सव किया। इसके बाद आचार्य देव पाटण गये जहां वहां के सूबेदार शेरखां के मन्त्री समर्थ भनसाली ने आपके सन्मान में गच्छानुज्ञा उत्सव किया।

संवत् १६२१ में आपके गुरु श्री विजयदान सूरि जी का वरड़ी ग्राम में स्वर्गवास हो गया—तब आप तपागच्छ नायक बनाये गये।

गच्छ नायक बनने के पश्चात् तो आचार्य श्री की कीर्तिध्वजा उन्नत आकाश में फहराने लगी तत्कालीन मुगल सम्राट अकबर महान् ने भी आपकी यश गाथा सुनी आचार्य श्री से भेंट करने की प्रबल इच्छा प्रकट की। सम्राट ने अपने गुजरात के सूबेदार खान को फरमान भेजा कि वे बड़ी नम्रता और अदब के साथ जैनाचार्य श्री हीरविजय सूरिजी से प्रार्थना करें कि "आप दिल्ली पधाकर सम्राट अकबर को दर्शन प्रदान करने की कृपा करें।

सूबेदार साहिब ने अहमदाबाद के मुख्य २ जैन आगेवानों को साथ ले आचार्य श्री से उक्त प्रार्थना की। आचार्य श्री ने भी इसे धर्म प्रभावना का सुअवसर समझ कर विनंति स्वीकार करते हुए फतहपुर सीकरी, जहां अकबर बादशाह का मुकाम था, की ओर विहार किया। इस विहारकाल में बादशाह के कुछ विशेष दूत भी आपके साथ साथ रहे।

विहारकाल में जब आप सिद्धपुर (गुजरात) के पास सरोतरा गाँव में पधारे तो वहाँ भीलों के मुखिया सरदार अर्जुन आपके उपदेशों से बड़ा प्रभावित हुआ और अपने समस्त भील जाति के साथ अहिंसामय जैनधर्म पालक बना। पर्यूषण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी ग्राम में व्यतीत कर आबू तीर्थ करते हुए आप शिवपुरी (सिरोही) पधारे। यहाँ के राजा ने बड़े धामधूम से अगवानी की। सिरोही से सादड़ी, राणकपुरजी होते हुए मेड़ता पधारे। मेड़ता उस समय मुसलमानों के अधिकार में था। वहां शासक सादिल मुलतान ने बड़ा भारी स्वागत किया। मेड़ता से फलौदी पधारने पर सम्राट अकबर के भेजे हुए श्री विमलहर्ष उपाध्याय ने आचार्य देव का सम्राट की तरफ से स्वागत किया। आचार्य श्री सं० १३६६ जेठ वदी १३ को फतहपुर सिकरी पधारे और जगनमल कछुआ के महल में ठहराये गये। जगनमल तत्कालीन जयपुर नरेश भारमल के छोटे भाई थे।

फतहपुर सिकरी में सम्राट अकबर ने आचार्य देव के दर्शन किये और कुछ दिनों तक आचार्य श्री की सेवामें प्रतिदिन व्याख्यान श्रवण का लाभ लिया। सम्राट आचार्य श्री के सम्पर्क से बड़ा प्रभावित हुआ। उसका हृदय धर्म प्रवृति की ओर बढ़ा, उसने प्रजाप्रिय बनने के लिये कई कर हटा लिये, और काफी दान पुण्य किया।

उसने आचार्य श्री को शाही महलों में दिल्ली पधारने की विनति की। अकबर के दरबार में बड़े २ विद्वान रहते थे—सभी विद्वान आचार्य श्री के उपदेशों से प्रभावित हुए। सम्राट की विद्वत् सभा के प्रमुख अबुलफजल ने आचार्य श्री की बड़ी प्रशंसा लिखी है।

वहां से बिहार का आचार्य श्री आगरा के पास शौरीपुरजी तीर्थ में दो जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कर आगरे में श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर की प्रतिष्ठा की। तदन्तर आबुलफजल के विशेष निमंत्रण पर आप फतहपुर सिकरी पधारे।

फतहपुर सिकरी पधारने पर सम्राट अकबर ने अपूर्व स्वागत किया और आचार्य श्री को कई जागीरें, हाथी घोड़े आदि भेंट करना चाहा पर आचार्य श्री ने सम्राट को बताया कि जैन साधु कंचन कमिनी के सर्वथा त्यागी होते हैं। उनके लिये संसार के ये सारे वैभव तुच्छ हैं।

तब सम्राट ने कुछ न कुछ भेंट तो अवश्य स्वीकार करने की प्रबल आग्रह किया। इस पर सूरिजी ने कहा—आप समस्त कैदियों को बन्धन मुक्त कर दीजिये और पीजरें में बन्द पक्षियों को छुड़वा दीजिये। इसके अतिरिक्त पर्यूषणों में आठों दिन अपने साम्राज्य में कतई जीव हिंसा न हो—ऐसे आदेश निकालने एवं तालाबों व सरोवरों में मच्छी न पकड़ने के आदेश भेंट रूप में मांगे। आचार्य श्री की इस मांग से सम्राट अत्यधिक आकर्षित हुआ और उसने आचार्य श्री के परामर्षानुसार सभी फरमान तत्काल जारी करवा दिये। गुजरात के जैनियों पर लगने वाला जजिया कर भी माफ कर दिया।

सम्राट अकबर-आचार्य श्री से इतना प्रभावित हुआ कि उसने संवत् १६४० में आचार्य श्री को "जगद गुरु" की उपाधि से विभूषित किया। आचार्य श्री की जीवनी के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु सुप्रसिद्ध विद्वान मुनि श्री विद्या विजयजी कृत "सूरीश्वर" नामक ग्रन्थ पढ़ना चाहिये।

जैन इतिहास में जगद गुरु आचार्य हीर विजय सूरिजी का नाम सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

❀ यशोविजय जी ❀

अठारहवीं शताब्दी में हरिभद्र और हेमचन्द्र की कोटि में गिने जा सकने वाले महा प्रतिभासम्पन्न विद्वान् श्री यशोविजयजी हुए। ये प्रखर नैयायिक, तार्किक शिरोमणी, महान् शास्त्रज्ञ, प्रतिभाशाली समन्वयकार, उच्च कोटि के साहित्यकार, आचार, सम्पन्न प्रभावक मुनि और महान् सुधारक थे। ये हेमचन्द्र द्वितीय कहे जा सकते हैं।

इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। पं० सुखलालजी ने लिखा है कि-"इन के (यशोविजयजी के) समान समन्वयशक्ति रखनेवाला, जैन-जैनेतर ग्रन्थों का गम्भीर दोहन करने वाला, प्रत्येक विषय के तल तक पहुँच कर समभाव पूर्वक अपना स्पष्ट मन्तव्य प्रकट करने वाला, शास्त्रीय और लौकिक भाषा में विविध साहित्य की रचना कर अपने सरल और कठिन विचारों को सब जिज्ञासुओं तक पहुँचाने की चेष्टा करने वाला और सम्प्रदाय में रह कर भी सम्प्रदाय के बंधनों की परवाह न कर जो उचित मालूम हो उसपर निर्भयता पूर्वक लिखने वाला, केवल श्वेताम्बर-दिगम्बर समाज में ही नहीं बल्कि जैनेतर समाज में भी उनके जैसा कोई विशिष्ट विद्वान हमारे देखने में अबतक नहीं आया।...केवल हमारी दृष्टि से ही नहीं परन्तु प्रत्येक तटस्थ विद्वान् की दृष्टि में भी जैनसम्प्रदाय में उपाध्यायजी का स्थान, वैदिक सम्प्रदाय में शंकराचार्य के समान है।"

इनका जन्म सं० १६८० में हुआ। गुरु का नाम नयविजय था। ८ वर्ष की अवस्था में काशी व आगरा में रहकर उच्चकोटि का ज्ञान उपार्जन किया। इसके बाद की अपनी सारी अवस्था तक साहित्यसृजन में लगे रहे। इन्होंने प्राकृत, संस्कृत और गुजराती भाषा में विपुल ग्रन्थ राशि की रचना की। न्याय, योग, अध्यात्म, दर्शन, धर्म, नीति, खण्डन मण्डन, कथा-चरित्र, मूल और टीका-प्रत्येक विषय पर अपनी प्रौढ लेखनी चलाई। काशी में रहते हुए इन्हें 'न्यायविशारद' की उपाधि दी गई थी। इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं।

अध्यात्मः—अध्यात्ममत परीक्षा, अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद्, आध्यात्मिकमतदलन स्वोपज्ञ टीका उपदेश रहस्य, ज्ञानसार, परमात्म पञ्चविंशतिका, परमज्योति पञ्चविंशतिका, वैराग्य कल्पलता, अध्यात्मोपदेश ज्ञानसार व चूर्णि। दार्शनिकः-अष्टसहस्री विवरण, अनेकान्त व्यवस्था ज्ञानबिन्दु जैनतर्कभाषा देवधर्म परीक्षा, द्वात्रिंशत द्वात्रिंशिका, धर्मपरीक्षा, नयप्रदीप, नयोपदेश, नयरहस्य, न्यायखण्ड खाद्य, न्यायालोक, भाषा रहस्य वीरस्तव, शास्त्रवार्त्ता समुच्चय टीका, स्याद्वाद कल्पलता, उत्पादव्ययध्रौव्यसिद्धि टीका, ज्ञानार्णव, अनेकान्तप्रवेश, आत्मख्याति, तत्वालोक विवरण, त्रिसूत्र्यालोक, द्रव्यालोकविवरण, न्यायबिन्दु, प्रमाणरहस्य, मंगलवाद वादमाला, वादमहार्णव, विधिवाद, वेदान्तनिर्णय, सिद्धान्त तर्क परिष्कार, सिद्धान्तमंजरी टीका, स्याद्वाद मंजूषा, द्रव्यपर्याय युक्ति। आगमिकः—आराधक विराधक चतुर्भङ्गी, गुरुतत्व विनिश्चय, धर्मसंग्रह टिप्पन, निशाभक्त प्रकरण, प्रतिमाशतक, मार्गपरिशुद्धि, यतिलक्षणसमुच्चय, सामाचारी प्रकरण कूपदृष्टान्त विशदीकरण, तत्वार्थ टीका और अस्पृशद् गतिवाद।

योग—योगविंशिका टीका, योगदीपिका, योगदर्शन विवरण।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अन्यग्रन्थ—कर्म प्रकृति टीका, कर्मप्रकृति लघु-वृत्ति, तिङन्तान्वयोक्ति, अलंकार चूडामणि टीका, काव्यप्रकाश टीका छन्दश्चूडामणि शठप्रकरण ऐन्द-स्तुति चतुर्विंशतिका, स्तोत्रावलि, शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तोत्र, समीका पार्श्वनाथ स्तोत्र, आदि जिनस्तवन, विजयप्रभसूरि स्वाध्याय और गोडी, पार्श्वनाथ स्तोत्रादि।

उपर्युक्त विशाल ग्रंथराशि को देखने से ही प्रतीत हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी कितने प्रौढ़ विद्वान् थे। ये अनुपम विद्वान, प्रखर न्यायवेत्ता, योगवेत्ता; अध्यात्मयोगी, और महासुधारक थे। इनका स्वर्गवास १७४३ में हुआ। ये जैनसाहित्य के इतिहास में प्रथमकोटि के साहित्यकारों में रखे जाने योग्य साहित्यसेवी हुए हैं।

विनयविजय उपाध्याय तथा मेघविजय उपाध्याय

ये यशोविजयजी के समकालीन हुए हैं। इन्होंने आगमिक, दार्शनिक व्याकरण, काव्य और स्तुति सम्बंधी अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। श्री मेघवि-जय उपाध्याय व्याकरण, न्याय साहित्य के अतिरिक्त आध्यात्मिक और ज्योतिर्विद्या में भी प्रवीण थे इन्होंने महाकवि माघ के माघकाव्य के प्रत्येक श्लोक का अंतिम पद लेकर शेष तीन पदों की विषयवद्ध रचना करके देवानंदाभ्युदय महाकाव्य की रचना की। इसी तरह नैषध के प्रतिश्लोक का एक चरण लेकर शांति-नाथ चरित्र काव्य की रचना की। सबसे अधिक चमत्कृति पूर्ण इनका सप्तसंधान महाकाव्य है। इसका प्रत्येक श्लोक ऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, रामचंद्र और कृष्ण इन सात महापुरुषों को समान रूप से लागू होता है। कितनी चमत्कार पूर्ण काव्य कृति है। काव्य के अतिरिक्त चंद्र-प्रभा व्याकरण, कथा चरित्र ज्योतिष के मेघमहोदय, रमल शास्त्र, हस्तसंजीवन टीका सहित, मंत्रतंत्र, अध्यात्म और स्तोत्र आदि अनेक ग्रंथों का निर्माण किया।

इनके बाद यशस्वत् सागर लक्ष्मीवल्लभ, आदि अनेक साहित्य लेखक हुए। उन्नीसवी शताब्दी में मयाचन्द, पद्ममविजयगणि, क्षमाकल्याण-उपाध्याय, बीसवीं शताब्दी में विजयराजेन्द्रसूरि और न्याय-यिजय जी जैसे महा विद्वान् साहित्यिक हुए। उन्नीसवीं, बीसवीं शताब्दी में संस्कृत-प्राकृत साहित्य सृजन की गति मंद हो गई और हिंदी, गुजराती आदि भाषाओं में विशेष रूप से साहित्य-सृष्टि हुई। गुजराती और हिंदी भाषा के साहित्य विकास में उन्नीसवी बीसवी सदी के जैनमुनियों का मुख्य रूप से योग रहा है।

चिदानंद जी कवि रायचन्द, विजयानदसूरि, वीरचन्द गांधी, आत्माराम जी म०, शतावधानी रत्नचंद जी म० आदि २ प्रसिद्ध विद्वान और लेखक हुए हैं।

जैनाचार्य श्री विजयानन्दसूरि जी

(प्रसिद्ध नाम—आत्मारामजी महाराज)

भारत के प्रायः सभी नागरिक गुरूदेव श्री० मद्विजयानन्दसूरि जी के नाम से परिचित हैं, उनकी गणना १९ वीं शताब्दी के 'भारतीय सुधार' के प्रणेता गुरुओं एवं नेताओं में होती है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को सब से पहले अपनाने वाले यही महातुरुष थे। अपनी अल्प आयु में ही उन्होंने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सारे संसार के बड़े २ विद्वानों से भूरी २ प्रशंसा प्राप्त की। उस युग पुरुष के द्वारा किये गये महान कार्यों की सूचि बनाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसाई पादरियों एवं मिशनरीज का भारत में सर्व प्रथम विरोध करने वाले वेही थे। साहित्यकार, कवि, दार्शनिक, आध्यात्मिक, ब्रह्मचारी तथा संगीतज्ञ होने के साथ २ वे भारतीय धर्मों एवं दर्शनों के प्रकाँड विद्वान भी थे। श्री विजय हीर सूरि जी तथा विजयसिंहसूरीजी के पश्चात् श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी ही संघ द्वारा आचार्य पदवी से विभूषित किये गये।

संक्षेप में उनका जीवन परिचय इस प्रकार है।

नामः—श्री विजयानन्द सूरि

गृहस्थ नामः—श्री आत्मारामजी

माता का नाम—रूपादेवी

पिता का नामः—गणेशदास

जन्मभूमिः—लहरा (जीरा) पंजाब

जन्मतिथिः—चैत्र शुदि १, १८९३

स्थानकवासी दीक्षा—मलेरकोटला-वि०सं० १९१०

संवेगी दीक्षाः—अहमदाबाद १९३२

गुरु का नामः—गणि श्री बुद्धिविजयजी (श्री बूटेरायजी) महाराज

आचार्य पदवीः—पालीताणा—वि० सं० १९४३

स्वर्गवासः—गुजरान वाला—वि० सं० १९५३

अंजनशलाका और प्रतिष्ठा

विशेष कार्यः—हाशियार पुर, अमृतसर, पट्टी, जीरा, सनखतरा, अम्बाला शहर पंजाब में नये सिरे से शुद्ध सनातन जैन धर्म का प्रचार और स्थापना की। प्रोफेसर हार्नले साहिब से पत्र व्यवहार द्वारा उनके शंकासमाधान तथा उन्हें धर्म बोध दिया, रायल ऐशियाटक सोसायटी से पत्र व्यवहार तथा हार्नले साहिब के द्वारा ऋगवेद भेंट में मिला।

संवत् १९४६ में जोधपुर के पण्डितों ने आपका न्याय प्रिय वार्तालाप सुन कर आपको न्यायांभोनिधि (न्याय के समुद्र) की पदवी दी।

रचित ग्रन्थः—जैनतत्वादर्शन, तत्वनिर्णयप्रासाद, अज्ञान तिमिर भास्कर, सम्यक्तवशल्योद्धार, चिकागो प्रश्नोत्तर, जैन मर्म विषियक प्रश्नोत्तर, इसाई मत समीक्षा, नवतत्व (यंत्र सहित), जैन मत वृक्ष चतुर्थ स्तुति निर्णय, जैन धर्म का स्वरूप।

पूजायें व भजनः—स्नात्र पूजा, अष्टप्रकारी पूजा, सत्रह भेदी पूजा, नवपद पूजा, वीसस्थानक पूजा, श्री स्तवनावलि, आरम भावनी।

विदेशों में प्रचारः—श्री विजयानन्द सूरिजी को ईस्वी १८९३ में चिकागो (अमरीका) में होने वाली विश्व धर्म परिषद में भाग लेने के लिये आमंत्रण मिला, उन्होंने श्री वीरचन्द राघवजी गांधी बैरिस्टर को वहां भेजा जिन्होंने योरोप और अमेरिका में जैन धर्म और भारतीयता पर सैंकड़ों भाषण दिये। गुरूदेव के विषय में समस्त विश्व के उच्च कोटि के सुप्रसिद्ध एकत्रित विद्वानों की चिकागो की विश्वधर्म परिषद ने निम्न उद्गार प्रकट किये—:

No man has so peculiarly identified himself with the intirests of the Jain Community as

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Muni Atmaramji. He is one of the Noble band sworn From the day of initation for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain Community and is recognised as the highest living outhority on Jain religion and literature by oriental scholars.

(The world parliament of religions chikago in Amerika-page 21)

आत्म स्मारकः---गुरूदेव के स्वर्गवास स्थान गुजरांवाला (पाकिस्तान) में भव्य समाधि मन्दिर बना हुआ है। जिस की यात्रार्थ प्रतिवर्ष भारत से जैन लोग जाते हैं। उनके जन्म स्थान लहरा (जीरा) पंजाब में ४३ फीट ऊँचा भव्य कीर्ति स्तम्भ 'आत्म-धाम' के नाम से सं० २०१४ में साध्वी मृगावती श्री के उपदेश एवं प्रयत्नों से बनाया गया है। जहां प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला १ को भारी मेला लगता है।

इनके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर आप श्री जी की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

पंजाब में शायद ही ऐसा कोई स्थान होगा जहां आचार्य देव के नाम से एक न एक संस्था न हो। कई स्थानों पर आत्मानन्द जैन कॉलेज हाई स्कूल एवं पाठशालाएं तथा पुस्तकालय हैं।

यदि यह भी कह दिया जाय तो अनुपयुक्त न होगा कि प्रायः सम्पूर्ण पंजाब का श्वेताम्बर जैन समाज आपका ही भक्त है और प्रायः सर्वत्र जैन समाज के संगठनों का नाम 'श्री आत्मानन्द जैन सभा' के नाम से है। इससे स्पष्ट समझा जा सकता है-पंजाब आपका कितना श्रद्धालु भक्त है। केवल पंजाब की ही ऐसी अवस्था हो ऐसी बात नहीं है। समस्त भारत की न केवल श्वेताम्बर जैन समाज बल्कि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आदि समस्त जैन समाज आपके प्रति अद्यावधि अपार श्रद्धा रखता है। इस श्रद्धा का मुख्य कारण एक यह भी है कि आपने जीवन पर्यन्त अपना लक्ष्य निःसम्प्रदाय भाव से, जैन धर्म का प्रचार, जैन साहित्य के प्रकाशन तथा स्थान २ पर शिक्षण शालाएं खोलने की ओर ही विशेष ध्यान रक्खा। राजस्थान मारवाड़ में भी कई शिक्षण संस्थाएं आप श्री के उपदेशों का शुभ फल है।

आचार्य विजय नेमि सूरीश्वरजी

आपका जन्म माहुआ (मधुमती नगरी) में सं० १९२९ की कार्तिक सुदी १ को सेठ लक्ष्मीचन्द भाई के गृह में हुआ। संवत् १९४५ की जेठ सुदी ७ को आपने गुरु वृद्धिचन्दजी महाराज से दीक्षा गृहण की। संवत् १९६० की कार्तिक वदी ७ को आपको "गणी-पद" एवं मगसर सुदि ३ को आपको "पन्यास पद" प्राप्त हुआ। इसी प्रकार संवत् १९६४ की जेठ सुदी ५ के दिन भावनगर में आप "आचार्य" पद से विभूषित किये गये। आपने जैसलमेर, गिरनार, आबू सिद्धक्षेत्र आदि के संघ निकलवाये, कापरडा आदि कई जैन तीर्थों के जीर्णोद्धार में आपका बहुत भाग रहा है। आपने कई तीर्थों एवं मन्दिरों की प्रतिष्ठाएं करवाई। आप न्याय, व्याकरण एवं धर्मशास्त्र के प्रखर ज्ञाता थे। आपने अहमदाबाद में 'जैन सहायक फंड' की स्थापना करवाई। आप ही के पुनीत प्रयास से अ० भा० श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधु सम्मेलन का अधिवेशन अहमदाबाद में सफल हुआ। आप धर्मशास्त्र, न्याय व व्याकरण के उच्च-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कोटि के विद्वान् तथा तेजस्वी और प्रभावशाली साधु थे। आपने अनेकों ग्रन्थ की रचनाएं की। आप उच्च वक्ता थे। आपकी युक्तियाँ अकाट्य रहती थीं। ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों के भी आप ज्ञाता थे। आपके पाटवी शिष्य आचार्य उदयसूरिजी एवं आचार्य विजयदर्शनसूरिजी धर्मशास्त्र, व्याकरण, दर्शन न्याय के प्रखर विद्वान हैं। आप महानुभावों ने भी अनेकों ग्रन्थों की रचनाएं की हैं। आचार्य उदयसूरिजी के शिष्य आचार्य विजयनन्दन सूरिजी भी प्रखर विद्वान् हैं। आपने भी अनेकों ग्रन्थों की रचनाएं की हैं।

श्री विजय कमल सूरीश्वरजी

आप अपने समय के एक सुप्रख्यात जैन समाज के विशेष श्रद्धा भाजन आचार्य हुए हैं। श्वेताम्बर श्रमण संघ के संगठन हेतु आप श्री के ही प्रयत्न से बड़ौदा में मुनि सम्मेलन हुआ। आपका जन्म राधन पुर निवासी राजमान्य एवं श्रीमन्त कोरडिया कुटुम्ब के श्री देलचन्द नेमचन्द भाई के पुत्र रूप में माता मेघबाई की कोख से वि० सं० १९१३ चैत्र शुक्ला २ के दिन पालीताणा में हुआ। जन्म नाम कल्याणचन्द रक्खा गया। वि० सं० १९३६ वैशाख कृष्ण ८ को अहदाबाद के पास एक ग्राम में शांतमूर्ति मुनिराज श्री वृद्धिचन्दजी म० के पास आपकी दीक्षा हुई और कमल विजय नाम रक्खा गया और तपा गच्छाधिपति मूलचन्दजी म० के शिष्य घोषित किये गये।

अल्प समय में ही आपने जैनागमों का गहन अध्ययन कर लिया। वि.सं० १९४५ में श्री मूलचन्दजी म० के अवसान पर संघ संचालन का भार वहन किया। स० १९४७ में पन्यास पद प्राप्त किया। आपकी प्रखर प्रतिभा से मुग्ध हो जैन संघ ने अहमदाबाद में सं० १९७३ महा सुद ६ के दिन आचार्य पद प्रदान किया।

आप कठोर क्रिया पालक एवं स्वाध्याय प्रेमी थे। अतः शिष्य समुदाय का प्रत्येक मुनि विद्या व्यसनी बना। जैन समाज की उन्नति की ओर भी आपने विशेष लक्ष्य दिया। कई स्थानों पर कुसम्प मिटा कर सम्प कराया।

बड़ौदा के मुनि सम्मेलन में आप प्रमुख थे।

सं० १९७४ वैशाख शुक्ला १० को सूरत में पं० आनन्द सागरजी को आचार्य पद प्रदान किया जो आगमोद्धारक श्री सागरानन्दसूरि के नाम से प्रख्यात हुए। ऐसे महान् आत्मा आचार्य वर का आसोज सुदी १० के दिन बारडोली में स्वर्गवास हुआ।

श्री विजय केसर सूरीश्वरजी

परम योगीराज श्री विजय केशरसूरीश्वरजी म० का जन्म स० १९३३ पौष सुदी १५ को अपने ननिहाल पालीताणा में हुआ। आपका वतन बोटाद के पास पालीयाद ग्राम था। आपके पिता का नाम माधवजी नागजी भाई तथा माता का नाम पान था। जन्म नाम केशवजी रक्खा गया। सं० १९४० में आपका कुटुम्ब वढ़वाण रहने लगा। यहीं केशवजी की शिक्षा हुई। आपकी अल्पायु में माता पिता का देहावसान हो गया। इससे आपके हृदय में वैराग्य भावना प्रबल हुई संयोग से आचार्य श्री विजयकमलसूरी श्वरजी का वढ़वाण पदार्पण हुआ और यहीं स० १९५० में आचार्य श्री के पास आपकी दीक्षा हुई। नाम केशर-विजय रक्खा गया। सं० १९६३ में सूरत में गणीपद तथा १९७४ में बम्बई में पन्यास पद प्रदान किया गया। सं० १९८३ कार्तिक कृष्णा ६ को आचार्य पद व प्रदान की गई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आप बड़े विद्वान लेखक थे। आपके नीति धर्म, कथानक तथा योग आदि विषयों पर करीब २० ग्रन्थों की रचना की है।

वि० सं० १९८५ में वडाली में चातुर्मास पूर्ण कर आप तारंगाजी पधारे। यहाँ गुफा में ध्यानावस्था में रहते समय सर्दी के तेज प्रकोप से आप व्याधिग्रस्त बने। अहमदाबाद में अनेका उपाचार कराये गये पर सब असफल रहे। श्रावण वदी ५ को आप स्वर्गवासी हुए।

श्री विजय शान्ति सूरीश्वरजी

श्री आचार्य विजयशान्ति सूरिश्वरजी—अपने प्रखर तेज, योगाभ्यास एवं अपूर्व शांति के कारण आप वर्तमान समय में न केवल भारत के जैन समाज में प्रत्युत ईसाई, वैष्णव आदि अन्य धर्मावलम्बियों में परम पूजनीय आचार्य माने जाते थे। आपका जन्म मणादर गांव में संवत् १९४५ को माघ सुदी ५ को हुआ। आपने मुनि धर्मविजयजी तथा तीर्थविजयजी से शिक्षा गृहण कर संवत् १९६१ की माघ सुदी २ को मुनि तीर्थविजयजी से दीक्षा ग्रहण की। सोलह वर्षों तक मालवा आदि प्रान्तों में भ्रमण कर संवत् १९७७ में आप आबू पधारे। सं० १९९० की वैशाख वदी ११ पर बामनवाड़जी में पोरवाल सम्मेलन के समय १५ हजार जैन जनता ने आपको 'जीवदया प्रतिपालक योग लब्धि सम्पन्न राजराजेश्वर" पदवी अर्पण कर अपनी भक्ति प्रकट की। यह पद अत्यंत कठिनता पूर्वक जनता के सत्याग्रह करने पर आपने स्वीकार किया। इसके कुछ ही समय बाद "वीर-वाटिका" में आपको जैन जनता ने "जगत-गुरु" पद से अलंकृत किया। इसी साल मगसर महीने में आप "आचार्यसूरि सम्राट" बनाये गये। "शान्ति पशु औषधालय" लींबड़ी नरेश तथा मिसेज ओगिल्वी की संरक्षता में चलता रहा था आपको उदयपुर तथा नेपाल राजवंशीय डेपुटेशन ने अपनी गवर्नमेंट की ओर से "नेपाल राज गुरु" की पदवी से अलंकृत किया। कई उच्च अंग्रेज व भारत के अनेकों राजा महाराजा आपके अनन्य भक्त थे। आपके प्रभाव से लगभग सौ राजाओं और जागीरदारों ने अपने राज्य में पशु बलिदान की क्रूर प्रथा बन्द की थी।

श्री विजयदान सूरीश्वरजी

श्री आचर्य विजयदान सूरिश्वरजी—आपका जन्म विक्रमी सं० १९१४ की कार्तिक सुदी १४ के दिन झींजुवाड़ा नामक स्थान में दस्सा श्रीमाली जातीय जुठाभाई नामक गृहस्थ के गृह में हुआ, और आपका नाम दीपचन्द भाई रक्खा गया। सं० १९४६ की मगसर सुदी ५ के दिन गोधा मुकाम पर आत्मारामजी महाराज के शिष्य वीरविजयजी महाराज से आपने दीक्षा गृहण की, एवं आपका नाम दानविजयजी रक्खा गया। आपके जैनागम तथा जैन सिद्धान्त की अपूर्व जानकारी की महिमा सुनकर बड़ौदा नरेश ने सम्मान पूर्वक आपको अपने नगर में आमंत्रित किया। संवत् १९६२ की मगसर सुदी ११ तथा पूर्णिमा के दिन आपको क्रमशः गणीपद तथा पन्यास पद प्राप्त हुआ और सं० १९८१ की मगसर सुदी ५ के दिन श्रीमान् विजय कमलसूरिजी ने आपको छाणी गांव में आचार्य पद प्रदान किया, और तब से आप "विजयदान सूरिश्वरजी महाराज" के नाम से विख्यात् हैं। नेत्रों के तेज की न्यूनता होने पर भी आप अनेकों ग्रन्थों के पठन पठनादि कार्यों में हमेशा संलग्न रहते थे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आपका अत्यधिक श्रम के कारण वि० सं० १९९२ पोष मास में स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्य सिद्धांत महोदधि महा महोपाध्याय प्रेम सूरीश्वरजी पट्टधर हैं।

श्री विजयधर्म सूरीश्वरजी

श्री आचार्य विजयधर्मसूरिजी-आप अन्तराष्ट्रीय कीर्ति के आचार्य थे। आपका जन्म सं० १९२४ में बीसा श्रीमाली जाति के श्रीमंत सेठ रामचन्द भाई के यहाँ हुआ था। उस समय आपका नाम मूलचन्द भाई रक्खा गया था। बाल्यकाल में आप पढ़ने लिखने से बड़े घबराते थे। अतः आपके पिताजी ने आपको अपने साथ दुकान पर बैठाना शुरू किया यहाँ आप सट्टा और जुवे में लीन हो गये। जब इन विषयों से आपका मन फिरा तो आपने सं. १९४३ को वैशाख वदी ५ को मुनि वृद्धिचन्दजी महाराज से दीक्षा गृहण की, और आपका नाम धर्मविजयजी रक्खा गया। धीरे २ आपने गुरु से अनेकों शास्त्रों का अध्ययन किया। आपने संस्कृत का उच्च ज्ञान देने के हेतु बनारस में "यशो विजय जैन पाठशाला" और "हेमचन्द्राचार्य जैन पुस्तकालय" की स्थापना की। आपने बिहार, बनारस, इलाहाबाद, कलकत्ता, तथा बंगाल, गुजरात, गोडवाड़ आदि अनेकों प्रान्तों में चातुर्मास कर अपने निष्पक्षपात तथा प्रखर व्याख्यानों द्वारा जैनधर्म की बड़ी प्रभावना की। आपके कलकत्ता के चातुर्मास में जैन व अजैन श्रीमंत, अनेकों रईस एवं विद्वानों ने आपके उपदेशों से जैन धर्म अंगीकार किया था। इलाहाबाद के कुंभोत्सव के समय जगन्नाथपुरी के श्रीमत् शंकराचार्य के सभापतित्व में आपके उदार भावों से परिपूरित प्रखर भाषण ने जनता में एक अपूर्व हलचल पैदा की थी। सं० १९६३ में आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। सं० १९६४ की सावण वदी १४ के दिन बनारस में काशी नरेश के सभापतित्व में अनेकों बंगाली तथा गुजराती एवं स्थानीय विद्वान तथा श्रीमंतों की उपस्थिति में आप "शास्त्र विशारद" तथा 'जैनाचार्य' की पदवी से विभूषित किये गये। इस पदवी का समर्थन भारत के अतिरिक्त विदेशी विद्वान डाक्टर हरमन जेकोबी, प्रोफेसर जहनस हर्टल डॉबलेन ने मुक्त कंठ से किया था। आपका कई विदेशी विद्वानों से स्नेह था। आपके शिष्य आचार्य श्री इन्द्रविजयजी, न्यायतीर्थ मंगल विजयजी, मुनि विद्याविजयजी न्यायतीर्थ, न्यायविजयजी न्यायतीर्थ, हेमांशुविजयजी आदि हैं। आप सब प्रखर विद्वान एवं अनेकों ग्रन्थों के रचयिता हैं।

पूज्य श्री मोहनलालजी महाराज

खरतर गच्छ विभूषण जैन शासन प्रभावक बम्बई क्षेत्र के महा मान्य धर्म गुरु जगत्पूज्य क्रियोद्धारक श्री मोहनलालजी महाराज का जन्म मथुरा से २० मील दूर चाँदपुर नामक ग्राम में उच्च ब्राह्मण कुल में वि० सं० १८८७ वैशाख कृष्णा ६ के दिन हुआ था। पिता का नाम बादरमलजी तथा माता का नाम सुन्दरदेवी था।

एक बार बादरमलजी ने स्वप्न देखा कि वे सोने की थाल में भरा हुआ दूधपाक किसी जैनयतिजी को देरहे हैं। वे स्वप्न शास्त्र के ज्ञाता थे अतः शीघ्र समझ गये कि यह पुत्र किसी जैनयति के पास दीक्षित होगा। उनके परिवार का नागौर के यति श्री रूपचन्द जी से पुराना गहरा सम्पर्क था। एक बार कार्य वशात् इनका नागौर जाना हुआ। साथ में बालक मोहन का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी लेते गये। वहां यतिजो से भेंट हुई। सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता यतिजी ने बालक के भविष्य में यशस्वी बनने की बात बताई। इस पर बादरमलजी ने बालक मोहन को इन यतिजी के पास शिक्षार्थ रख दिया। यतिजी भगवान महावीर के ७० वें पट्टधर आचार्य श्रीहर्ष सूरिजी द्वारा दीक्षित शिष्य थे। यतिजी के पास रह प्रखर बुद्धि के धनि श्री मोहनलालजी ने अल्प समय में ही जीवविचार नव तत्व, पंच प्रतिक्रमण आदि का अध्ययन कर लिया और यति दीक्षा लेने का आग्रह करने लगे। परम्परा के अनुसार यतिदीक्षा श्री पूज्यजी ही दे सकते हैं इसलिये इन्हें तत्कालीन श्री पूज्य श्री जिन महेन्द्र सूरिजी के पास इन्दौर भेजा। श्री पूज्यजी मोहनलालजी को साथ ले यक्षीजी तीर्थ पधारे और वहीं वि० सं० १९०२ में इन्हें यतिदीक्षा दी और भोपाल होते हुए इन्हें वापस नागौर भेज दिया।

वि० सं० १९१० चैत्र शुक्ला ११ को यति श्री रूपचन्दजी का बनारस में स्वर्गवास होगया। शोकाकुल यति मोहनलालजी को श्री पूज्य जी जिन महेन्द्र सूरिजी ने अपने पास लखनऊ रक्खा। सं० १९१४ में श्रीपूज्यजी का भी स्वर्गवास होगया। इससे आपको गहरी वेदना हुई। शोक निवारार्थ आप श्री छुट्टनलाल जी जौहरी के संघ के साथ पालीताणा पधारे। वहाँ से कलकत्ता पधारे। कलकत्ते के एक जैन मन्दिर में प्रभु समक्ष ध्यानावस्था में आपको आत्म जागृति हुई कि अब मुझे यति अवस्था को त्याग कर संवेगी साधु अवस्था ग्रहण करलेना चाहिये। आपने तब से ही अधिक परिग्रह बढ़ाने के त्याग कर लिये।

सं. १९३० में आपका चातुर्मास जयपुर में हुआ। चातुर्मास पूर्ण कर आप दादा श्री जिनदत्त सूरिजी के समाधिस्थल अजमेर नगर पधारे।

यहाँ चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आपने सम्पूर्ण परिग्रह को त्याग लाखन कोठड़ी स्थित भगवान संभव नाथजी के मन्दिर में जा भगवान के सम्मुख ४३ वर्ष की आयु में स्वतः ही क्रियोद्धार कर संवेग भाव धारण कर मुनि बन गये। आपके मुनि वेष धारण करने से जैन संघों में सर्वत्र हर्ष छागया।

मुनि अवस्था में आपका प्रथम चातुर्मास संवत् १९३१ में पाली हुआ। आपकी प्रखर ज्ञान परिपूरित व्याख्यान शैली तथा उच्च क्रिया पालन से आपकी कीर्ति कौमुदी चमक उठी। सिरोही नरेश श्री केशरसिंहजी ने स्वयं दर्शनार्थ आकर सिरोही चातुर्मास की विनंति की। सं० १९३२ का चातुर्मास सिरोही हुआ। सातवाँ चातुर्मास जोधपुर हुआ जहाँ आलमचन्दजी, जसमुनि, कांति मुनि, हर्ष मुनि आदि शिष्य बने। सं० १९४४ का चातुर्मास अहमदाबाद किया और तबसे आपका विहार क्षेत्र गुजरात बन गया।

आप सम्प्रदाय वाद से सदा दूर रहते थे और जैन संघ में सम्प बढ़ाने को प्रयत्नशील रहते थे। यही कारण है कि सभी गच्छों और समुदाय के साधु व श्रावक वर्ग में आपका अच्छा सन्माननीय स्थान था। आपके शिष्य वर्ग की संख्या भी काफी बढ़ने लगी। हर्ष मुनि उद्योतन मुनि राज मुनि, देव मुनि आदि शिष्य हुए। वि० सं० १९४७ में आप बम्बई के भायखला से लालबाग पधारे। यहां मुनिराजों के उतरने का कोई स्थान न था अतः आप श्री के उपदेश से मुर्शिदाबाद निवासी सेठ बुधसिंहजी दुधेडिया ने लालबाग में नवीन धर्मशाला बनाने हेतु १६ हजार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रुपये दिये तथा अन्य सज्जनों की द्रव्य हायता से भव्य धर्मशाला बनी। एकसौमनुष्यों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और करीब चार हजार मनुष्यों ने पर स्त्री का त्याग किया।

सं० १९४९ में अजीमगंज निवासी रायबहादुर धनपतसिंहजी दूगड़ द्वारा निर्मापित शत्रुंजय तलेटी के मन्दिर की अंजनशलाका आपने की। १९५२ में गुलालवाड़ी में ऋषभदेवजी व वासुपूज्यजी की मूर्तियां प्रतिष्ठापित कराई। लालबाग में एक भव्य उपाश्रय भी तभी बना।

जैनधर्म की प्रभावना हेतु आप श्री द्वारा अनेकों कार्य हुए हैं जो एक अन्य पुस्तक रूप में ही प्रकट करना संभव है। संक्षेप में यही कह कर देना पर्याप्त होगा कि अहमदाबाद से बम्बई तक का क्षेत्र आपके उपकारों से सदा उपकृत रहेगा।

गुजरात के विहार काल में आप श्री का सम्पर्क विशेष रूप से तपागच्छीय समुदाय से ही रहा अतःआप श्री यही क्रिया पालने लगे थे। किन्तु आपने अपने शिष्य समुदाय को स्वतंत्रता दी कि वे जो भी मान्यता मानना चाहें खुशी से मानें। खरतर गच्छ के एक शिष्ट मंडल के आग्रह एक आपने अपने प्रमुख शिष्य पन्यासजी श्री जस मुनिजी को जो उस समय जोधपुर में थे, आज्ञापत्र लिखा कि आज से तुम अपने शिष्य समुदाय सहित अपने मूल खरतर गच्छ की क्रियाएं ही पालन करो। इस आज्ञा को उन्होंने शिरोधार्य किया और आपका शिष्य समुदाय आजतक खरतर गच्छ की क्रिया करता है। इस प्रकार पूज्य श्री मोहनलालजी की शिष्य परम्परा में तपा और खरतर दोनों ही क्रियाओं के पालन कर्त्ता मुनिवर वर्तमान तक चले आरहे हैं पर हर्ष है कि दोनों ही ओर के मुनिवरों में पूज्य श्री मोहनलालजी म० सा० के प्रति अद्यावधि अत्यधिक श्रद्धा पूर्ण पूज्य भाव हैं।

आप श्री के उपदेश व प्रयत्न से हुए मुख्य २ कार्य—१ बाबू पन्नालालजी पूरनचन्दजी द्वारा बम्बई तथा अन्यत्र स्थापित बम्बई जैन हॉईस्कूल, जैन डिस्पेन्सरी, जैन मन्दिर और पालीताना की जैन धर्मशाला आपही के उपदेशों का फल है।

२ बम्बई में सूरत निवासी जौहरी भाईचन्द तलकचन्द ने ७५ हजार से एक विशाल धर्मशाला बनवाई।

३ बाबू अमीचन्द पन्नालालजी की ओर से बालकेश्वर जैन मन्दिर और उपाश्रय बना।

४ एलफिन्स्टन रोड स्टेशन के पास गोकुलभाई मूलचन्द जैन होस्टल की स्थापना।

५ सूरत में नमुभाई की बाड़ी में जैन उपाश्रय।

६ सूरत जैन संघ द्वारा श्री हर्षमुनिजी को गणी पद प्रदान के अवसर पर १ लाख रुपया का जिर्णोद्धार फंड हुआ।

७ सूरत में जैन भोजनशाला जो आजतक चालू है।

८ सूरत का श्री मोहनलालजी जैन ज्ञान भंडार, हीराचन्द मोतीचन्द जैन कन्या पाठशाला, मोहनलाल जी जैन उपाश्रय।

९ वापी, बगवाड़ा, पारडी, वलसाड दहाणु धोलवड़ बोरडी, फणसा, नवसारी, बिलीमोरा, कतार गांव आदि में जैन मन्दिर व उपाश्रय तथा धर्मशालाएं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१० वामनवाड़ जी गांव जहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर है वह सिरोही नरेश को उपदेश देकर वह जैनियों को दिलवाया।

११ रोहीड़ा (मारवाड़) में ब्राह्मण लोग जैन मन्दिर नहीं बनने देते थे सो आपने सिरोही नरेश को कहकर मन्दिर बनवाया।

ऐसे अनेकों कार्य हैं जो पूज्य श्री मोहनलालजी म० की कीर्ति सदा अमर रक्खेंगे।

ऐसे महापुरुष संवत् १९६३ वैशाख वदी १२ (गुज० चैत्र व० १२) को सूरत में स्वर्गवास पधारे।

श्री आचार्य जिन कृपाचन्द्र सूरीश्वरजी

आपका जन्म चांमू (जोधपुर) निवासी मेघराजजी बापना के गृह में संवत् १९१३ में हुआ। संवत् १९३६ में अमृतमुनिजी ने आपको यति सम्प्रदाय में दीक्षा दी। आपने खेरवाड़े के जिन मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। आपने मालवा, मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़, बम्बई में कई चातुर्मास कर जनता को सदुपदेश दिया। आप सम्वत् १९७२ में, बम्बई में "आचार्य्य" पद से विभूषित किये गये। आपने कई पाठशालाएं, कन्याशालाएं एवं लायब्रेरियाँ खुलवाईं। आप न्याय, धर्मशास्त्र एवं व्याकरण के अच्छे ज्ञाता थे। खरतर गच्छ के आचार्य्य थे।

श्री आचार्य्य सागरानन्द सूरिजी

आपका जन्म कपड़वन्ज निवासी प्रसिद्ध धार्मिक श्रीमंत सेठ मगनलाल गाँधी के गृह में सम्वत् १९३१ में हुआ। आपके बड़े भ्राता मणिलाल गाँधी के साथ आपने धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। पथम आप के भ्राता ने दीक्षा ग्रहण की एवं उनका मणिविनय नाम रखा गया। सं. १९४७ में आपने भी जवेर सागर जी से दीक्षा गृहण की, और आपका नाम आनन्दसागरजी रक्खा गया। सं० १९६० में आपको "पन्यास" एवं "गणीपद" प्राप्त हुआ। आपके विद्वत्ता पूर्ण एवं सारगर्भित भाषणों ने जैन जनता को प्रभावित किया। आपने एक लाख रुपयों की लागत से सूरत में सेठ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फन्ड कायम कराया। बम्बई में जैन जनता को संगठित करने के समय आप "सागरानन्द" के नाम से मशहूर हुए। सं० १९७४ में आपको आचार्य विजयकमलसूरिजी ने आचार्य पद प्रदान किया। आपका स्थापित किया हुआ सूरत का 'श्री जैन आनन्द पुस्तकालय' बम्बई प्रान्त में प्रथम नम्बर का पुस्तकालय है। इसी तरह आगम ग्रन्थों के उद्धार के लिए आपने सूरत, रतलाम, कलकत्ता, अजीमगंज, उदयपुर आदि स्थानों में लगभग १५ संस्थाएं स्थापित की। इन्हीं गुणों के कारण आप "आगमोद्धारक" के पद से विभूषित किये गये। पालीताणा में बना हुआ आगम मांन्दर आपही की दीर्घदर्शी विचारों का शुभ फल है।

आचार्य श्री देवगुप्त सूरीश्वरजी

आपका प्रसिद्ध नाम मुनि ज्ञानसुन्दरजी था। जीवन का एक एक क्षण जिन्होंने इतिहास संबन्धी शोध खोज हेतु पठन पाठन और लेखन ही में हो व्यतीत किया था। जब भी जाइये उन्हें कुछ न कुछ पढ़ते या लिखते ही पाइयेगा। कभी व्यर्थ के गप्पों में वे नहीं बैठे, न किसी सांप्रदायिक प्रपंचों में पड़े। महान् ज्ञानवान एवं प्रतिभावान गुणज्ञ साधु होते हुए भी स्वप्रतिष्ठा से सदा दूर रहकर मात्र जैन साहित्य सर्जन और प्राचीन शोध खोज में ही आप लीन रहे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनाचार्य श्री मद्विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज

"आधुनिक समय के सब से महान् जैन गुरु स्वर्गीय श्री मद्विजयवल्लभ सूरि, जिन का कुछ समय पूर्व बम्बई में स्वर्गवास हुआ, मेरी जानकारी में एक ही ऐसे जैन साधु थे जिन्होंने साँप्रदायिकता का अन्त करने का प्रयास किया। उन्होंने सभी जैनों से प्रेरणा की कि वे 'दिगम्बर' और 'श्वेताम्बर' विशेषणों को छोड़ कर 'जैन' का सरल नाम ग्रहण करें ताकि गृहस्थों में नई जागृति का श्री गणेश हो सके।"

ये शब्द एक प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर ने २२ जून १६५५ को "टाईम्स ऑव इण्डिया" में प्रकाशित अपने लेख में आचार्य श्री जी के लिए प्रयोग किये हैं। २१ सितम्बर १६५८ के 'हिन्दुस्तान' में आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरिजी के बारे में ठीक ही लिखा है कि "आचार्य श्री, जिन्होंने अपनी सारी आयु देश सेवा, अहिंसा सत्य व शान्ति के प्रचार, ज्ञान तथा विद्या के प्रसार, मानवता की निःस्वार्थ सेवा, साम्प्रदायिकता के विरोध, निर्धन तथा मध्यम वर्ग की सहायता तथा विश्व शान्ति के सन्देश को संसार भर में फैलाने के पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए लगा दी-जैन धर्म के सब से बड़े आध्यात्मिक गुरु थे।"

श्री विजय वल्लभ सूरि के आज्ञानुवर्ती साधुओं एवं मुनिराजों में विशेष प्रसिद्ध हैं—पू० मुनिराज आगम प्रभाकर श्री पुण्य विजयजी महाराज। संसार भर में उनके कार्यों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की जा रही है। पन्यास श्री विकास विजय जी का 'महेन्द्र पचाँग' सारे जैन जगत में प्रसिद्ध हैं। आचार्य श्री विजय समुद्र सूरिजी तथा गणि श्री जनक विजयजी की समाज सेवाएं, गुरु भक्ति व निर्धन एवं पतितों को गले लगाने के उच्च कार्यों से प्रत्येक जैन परिचित है। आचार्य श्री विजय ललितसूरि जी के मरुधर भूमि पर उपकार सर्व विदित हैं।

श्री विजयानन्द सूरिजी अन्तिम समय में पंजाब की रक्षा का भार श्री विजय वल्लभ सूरिजी को ही संभला कर गए थे। इस 'जगत वल्लभ, की यह संक्षिप्त जीवनी हैं:—

नामः—श्री विजय वल्लभ सूरि

जन्म स्थान—बड़ौदा वि० १६२७ (भाई दूज)

माताः—इच्छा देवी

पिताः—श्री दीपचन्दजी

दीक्षाः—राधनपुर वि० १६४४

गुरुः—श्री हर्ष विजयजी

पदवी—आचार्य पद—लाहौर (१६८१)

स्वर्गवासः—बम्बई (आसौज वदि ११ सं. २०११)

मन्दिर प्रतिष्ठा व अंजनशलाकाः—सामाना, बड़ौत, बिनौली, अलवर, करचलिया, नाडोल, बम्बई उम्मेदपुर, स्यालकोट, रायकोट, बीजापुर कसूर, सूरत सादड़ी, साढ़ौरा।

उनके द्वारा स्थापित सभाएं— श्री आत्मानन्द जैन सभा (बम्बई, बीकानेर, भावनगर, पूना, देहली, बड़ौत, बिनौली, आगरा, शिवपुरी, जम्मु, पंजाब के प्रत्येक नगर में तथा मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रान्तों में)

समाज सुधारः—श्री आत्मानन्द जैन महा सभा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पंजाब की स्थापना तथा श्री जैन श्वेताम्बर कानफ्रेंस (बम्बई) का पथ प्रदर्शन।

उनके द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाएं

श्री महावीर जैन विद्यालय (बम्बई) श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल (गुजराँवाला और झगड़िया) श्री आत्मानन्द जैन हाई स्कूल (अम्बाला शहर, लुधियाना होशियारपुर, जण्डियाला गुरु, मालेर कोटला सादड़ी और वरकाणा) जैन बोर्डिङ्ग (पाटण) जैन डिग्री कालेज (अम्बाला शहर, मालेर कोटला, फालना) जैन कन्या पाठशालाएं (अम्बाला शहर, होशियारपुर वेरावल, बीजापुर, खुड़ाला, नकोदर, बड़ौदा) श्री आत्मानन्द जैन लायब्रेरी (अम्बाला शहर, अमृतसर स्यालकोट, वेरावल, सादड़ी लुणावा, आसपुर, जूनागढ़, पूनासिटी, बेड़ा, बिजोवा, बीजापुर) श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रकाशन संस्थाएं (भावनगर बम्बई, आगरा, अम्बालाशहर) आ० हेमचन्द्र सूरि ज्ञान मन्दिर (पाटण)

अन्य पदवियाँ:—सं० १९९० में वामणवाड़ा तीर्थ पर अखिल भारतीय पोरवाल जैन सम्मेलन ने "अज्ञान तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु" पदवी प्रदान की तथा सं० २०१० में आपके दीक्षा हीरक जयन्ती महोत्सव के अवसर पर आप श्री जी को "भारत दिवाकर चारित्र चूड़ामणि" की पदवी प्रदान की गई।

विदेश में प्रचार:—श्री फतेचन्दजी लालन को सर्व धर्म सम्मेलन में भेजा।

सम्मेलन:—बड़ौदा में मुनि सम्मेलन बुलाया, तत्पश्चात् अहमदाबाद में श्री तप गच्छ मुनि सम्मेलन में महत्वपूर्ण भाग लिया। बड़ौदा में १९९३ में श्री विजयानन्द सूरिजी की जन्म शताब्दी मनाई।

शिक्षा प्रेम:—जैन जैनेतर छात्रों को छात्र वृतियाँ दिला कर उच्च शिक्षा दिलाई। बनारस हिन्दु विश्व विद्यालय के लिए धन एकत्र कराया।

मध्यम वर्ग सहायता:—इस वर्ग की सहायता के लिए पांच लाख रुपये का फण्ड चालू कराया।

विशेष कार्य:—आयु पर्यन्त बाल ब्रह्मचारी रहे, गांधीजी को उनके आन्दोलनों में सहायता, खिलाफत आन्दोलन की आर्थिक सहायता, पं० मदन मोहन मालविय को उनकी उद्देश्य पूर्ति में विशेष सहायता की, बम्बई में विश्व शान्ति के अथक प्रयास किये, पं० मोतीलालजी नेहरू का सिगरेट प्रयोग छुड़ाया, हजारों का माँसाहार और नशा प्रयोग छुड़ाया, महाराज गायकवाड़ (बड़ौदा) नवाब (पालनपुर) नवाब (सचीन) नवाब (मांगरोल) महाराजा (जेसलमेर) महाराजा (लींबडी) महाराजा (नाभा) श्री हीरा सिंहजी इत्यादि को उपदेश दिया, बीसियों नगर पालिकाओं तथा अजैन संस्थाओं से लग भग १०० मान पत्र मिले। कई स्थानों पर वाद विवादों में विजय प्राप्त की।

रचित ग्रन्थ.—नवयुग निर्माता, पंजाब देश तीर्थ स्तवनावलि, स्तवन संग्रह तथा अनेक पूजाएँ इत्यादि की रचना की।

उपसंहार:—आप श्री जी की अन्तिम शव यात्रा बम्बई में बड़े ही समारोह के साथ निकाली गई। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरहपन्थी आदि सभी जैन तथा हिन्दु, मुसलमान, ईसाई पारसी, यहूदी इत्यादि, लाखों नरनारी सम्मिलित हुए थे। स्थान २ पर पुष्प वर्षा के साथ श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गई।

आप श्री जी का अग्नि संस्कार भायखला में जैन मन्दिर के पास दानवीर मोतीलाल मूलजी के सुपुत्र सेठ शांकरचन्द भाई ने इक्किस हजार की बोली से किया। बंबई में उपयुक्त स्थान पर एक लाख रुपये की लागत से आप श्री जी का भव्य समाधि मन्दिर बनाया गया है जो कि बड़ा ही सुन्दर एवं दर्शनीय है।

बड़ौदा, पाटन, बड़ौत, बिजोवा, नाडौल वरकाणा लुधियाना समाना, हरजी तथा आना आदि स्थानों पर आप श्री जी प्रतिमाएं विराजमान की जा रही हैं।

लेखक:—महेन्द्र कुमार 'मस्त'—सामाना (पंजाब)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजय ललित सूरीश्वरजी

प्रखर शिक्षा प्रचारक, मरुधर देशोद्धारक श्री विजय ललितसूरिजी की गणना पंजाब केसरी युगवीर आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरीश्वर के शिष्य रत्नों में की जाती है। उनका नाम जिव्हा पर आते ही मारवाड़ एवं गोडवाड़ का वह चित्र आखों के सामने आजाता है जहाँ अगणित परिषह,दुःख तथा संकटों को सहन करके आचार्य श्री विजय ललित सूरीश्वरजी ने स्वयं अपने हाथों से जिन शासनोद्यान में कुछ पेड़ों का बीजारोपण किया। धीरे २ इन सुन्दर पौधों पर नन्हीं २ कलियों ने मस्ती भरी अंगड़ाई ली तथा आज वही कलियाँ मनोहर मुस्काते फूलों का रूप धारण करके शोभायमान हो रही हैं।

आचार्य श्री विजय ललित सूरिजी का जन्म वि० १६३८ में पंजाब गुजराँवाला जिले में भाखरीयारी गांव में हुआ। आपका गृहस्थनाम लक्ष्मणसिंह तथा पिता का नाम दौलत राम था। दौलतरामजी अपने अन्त समय बालक का भार बाल ब्रह्मचारी ला० थुड़ामल को सभला गए तथा उक्त लालाजी से ही बालक लक्ष्मण ने आज्ञा पालन, विनयशीलता, वाणी माधुर्य तथा सेवा आदि सद्गुण सीखे। वैसाख सुदी अष्टमी संवत् १६५४ में नारोवाल (पंजाब) में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा गुरु देव श्री विजय वल्लभ सूरि जी के शब्दों में आप "अद्वितीय गुरु भक्त शिष्यरत्न" कहलाए।

सं० १६७६ में बाली (मारवाड़) में पन्यास पद, माघ सुदी ५, १६६२ में बीसलपुर (राजस्थान) में उपाध्याय पदवी तथा वैसाख सुदी ५, १६६२ में मियां गांव में आपको आचार्य पद से विभूषित किया गया।

उच्च कोटि के विद्वान होने के साथ २ आप कुशल व्याख्याता, संगीतकार तथा सुन्दर गायक भी थे। श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजराँवाला की स्थापना के लिए आप ही ने बंबई के एक अजैन भाई श्री विट्ठलदास ठाकोरदास से बतीस हजार रुपये की राशी भिजवाई। बंबई श्री संघ की विनती पर पूज्य गुरु देव ने होशियारपुर से आप श्री जी को मुनिराज श्री प्रभा विजयजी (वर्तमान विजय पूर्णानन्द सूरि के साथ बंबई भेजा। अहमदाबाद से पन्यास उमंग विजयजी (वर्तमान में आचार्य श्री विजय उमंगसूरि) आदि को आप श्री ने साथ ले लिया। बंबई में आप ने श्री महावीर विद्यालय के विकास कार्यों में पूरा योग दिया। यातनाओं तथा तकलीफों से आपको साहस मिलता था। काम को हाथ में लेकर आप पूरी तरह उसमें जुट जाते थे। आपके सतत् प्रयत्नों, प्रेरणाओं तथा गुरुदेव के आशीर्वाद व आज्ञा से श्री पार्श्वनाथ जैन विद्यालय-वरकाना की नींव पड़ी। यह सुन्दर विद्यालय वर्तमान में हाई स्कूल तक पहुँच चुका है। फालना का जैन डिग्री कालेज आपकी ही अमर देन है। ये दोनों संस्थाए युगों तक आपकी याद दिलाती रहेंगी।

माघ सुदी १, २००५ को खुडाला (मारवाड़) में में आप इस भौतिक शरीर को त्याग कर स्वर्ग सिधार गए।

—ले० महेन्द्र कुमार मस्त-समाना-(पंजाब)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज

पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज ने वि० संवत् १९३३ में पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज सा० से दीक्षा ग्रहण की। शास्त्रों का गहरा अध्ययन कर अत्यन्त कुशलतापूर्वक आपने आचार्यपद पाया। आप जैन आगमों के विशेषज्ञ थे, ज्योतिष शास्त्रों के विद्वान् थे और बड़े क्रियापात्र आचार्य हुए। आपकी संगठन-शक्ति असाधारण थी। हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी में आपके नाम से श्री पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना की गई है, जिसमें जैन धर्म के उच्च स्तर का शिक्षण दिया जाता है।

पूज्य श्री काशीरामजी महाराज

पूज्य श्री काशीरामजी म० सा० का जन्म पसरूर (स्यालकोट) में सं० १९६० में हुआ था। अठारह वर्ष की अवस्था में पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के चरणों में आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के केवल नौ वर्ष पश्चात् ही आपके लिए भावी आचार्य होने की घोषणा करदी गई थी। इस पर से यह जाना जा सकता है कि आपकी आचारशीलता तथा स्वाध्याय-परायणता कितनी तीव्र थी। आप अनेक गुणसम्पन्न होते हुए भी आप अत्यन्त विनम्र थे। आपने पंजाब, वीर-संघ की योजना में शतावधानी पं० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज सा० को खूब सहयोग प्रदान किया।

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

आप मेड़ता मारवाड़ के निवासी श्री केवलचन्द्र जी कांसटिया के सुपुत्र थे। सं० १९३४ में आपका जन्म हुआ। सं० १९८९ में इन्दौर में ऋषि सम्प्रदाय के चतुर्विध श्रीसंघ की तरफ से आपको पूज्य पदवी प्रदान की गई।

हैदराबाद और कर्णाटक प्रान्त में विचरण करते हुए आगमोद्धार का महान् कार्य आपने लगातार तीन वर्ष के अत्यन्त कठोर परिश्रम से किया। इस कार्य में एकासन करते हुए दिन में ७-७ घण्टों तक आपको लिखने का कार्य करना पड़ा था। श्रुतसेवा की यह महान् आराधना कर समाज पर आपने महान् उपकार किया है। स्व. दानवीर सेठ श्रीसुखदेवसहाय ज्वालाप्रसाद जी द्वारा आगम-प्रचार के हेतु पूज्य श्री द्वारा हिन्दी अनुवादित ३२ आगमों की पेटियाँ अमूल्य भेंट दी गईं। इस महानतम कार्य के अतिरिक्त 'जैन तत्व प्रकाश' 'परमार्थ मार्ग दर्शक' 'मुक्ति सोपान' आदि महान् ग्रन्थों की रचना कर जैन एवं धार्मिक साहित्य की अभिवृद्धि की थी। कुल १०१ पुस्तकों का आपने सम्पादन किया है। स्था० जैन समाज में अपने ही साहित्य प्रकाशन का प्रारम्भ करवाया।

शिक्षा-प्रचार की तरफ आपका पूरा ध्यान था और यही कारण है आपके सदुपदेश से बम्बई में श्रीरत्न चिन्तामणी आठशाला और अमोलक जैन पाठशाला, कड़ा आदि की स्थापना हुई।

संघ और समाज-संगठन के आप अनन्य प्रेमी थे और यही कारण है कि अजमेर के साधु सम्मेलन में आपने महत्वपूर्ण योग देकर सम्मेलन की कार्यवाही को सफल बनाने के लिए अग्रिम भाग लिया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज

पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज का जन्म थांदला शहर में हुआ था। अल्पावस्था में ही माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के कारण मामा के यहाँ आपका पालन-पोषण हुआ। सोलह वर्ष की कुमार अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की। आप बाल ब्रह्मचारी थे। थोड़े ही समय में शास्त्रों का अध्ययन करके जैन शास्त्रों के हार्द को आपने समझ लिया। परमत का पर्याप्त ज्ञान भी आपने किया था। तुलनात्मक दृष्टि से समभावपूर्वक शास्त्रों की इस प्रकार तर्कपूर्ण व्याख्या करते थे कि अध्यात्मतत्व का सहज ही साक्षात्कार हो जाता था। आपकी साहित्य सेवा अनुपम है। पूज्य श्रीलालजी के बाद आप इस सम्प्रदाय के आचार्य हुए। सूत्रकृतांग की हिन्दी टीका लिखकर आपने अन्य मतों की आलोचना की है। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाई पटेल, पंडित मदनमोहन मालवीय और कवि श्री नानालाल जी जैसे राष्ट्र के सम्माननीय व्यक्तियों ने आपके प्रवचनों का लाभ उठाया था। जिस प्रकार राजकीय क्षेत्र में पंडित जवाहरलाल नेहरु लोकप्रिय हैं उसी प्रकार पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज भी धार्मिक क्षेत्र में लोकप्रिय थे। वे राजनीतिक जगत् के जवाहर हैं तो ये धार्मिक जगत् के जवाहर थे। आपके प्रवचनों से केवल नेता और विद्वान् ही आकर्षित न होते थे वरन् सामान्य और ग्राम्य जनता भी आपके प्रवचनों की ओर खूब आकर्षित होती थी।

आपने सद्धर्म मंडनम् तथा अनुकंपा विचार द्वारा भगवान् महावीर के दयादान विषयक यथार्थ सिद्धांतों का दिग्दर्शन कराया। आप ही के अनुशासन और शिक्षण का प्रभाव है कि सादड़ी संमेलन में पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज को उपाचार्य का पद प्रदान किया गया। आपके शिष्यों में मुनि श्री घासीलालजी तथा सिरेमलजी महाराज आदि विद्वान् साधु विराजमान हैं। लगभग २३ वर्ष तक आचार्य पद को वहन कर सं० २००० में आप स्वर्ग सिधारे। आपके सारगर्भित व्याख्यानों का "जवाहर किरणावली" के नामसे सुन्दर संग्रह प्रकाशितहु आ है जो स्वर्गस्थ आचार्य श्री की प्रखर प्रतिभा का अमर परिचायक रहेगा।

जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज

अपने आपने जीवन-काल में संघ और धर्म की सेवा एवं प्रभावना के लिए जो महान् स्तुत्य कार्य किये, वे जैन इतिहास में स्वर्ण वर्णों में लिखने योग्य हैं। जैन दिवाकरजी महाराज ने जो प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की, वह असाधारण है। राजा-महाराजा अमीर-गरीब, जैन-जैनेतर सभी वर्ग आपके भक्त थे। उत्तर भारत और विशेषतः मेवाड़, मालवा तथा मारवाड़ के प्रायः सभी राजा-रईस आपके प्रभावशाली उपदेशों से प्रभावित थे। मेवाड़ के महाराणा आपके परम भक्त रहे। पालनपुर के नवाब, देवास नरेश आदि पर आपकी गहरी छाप पड़ी। अपने इस प्रभाव से जैनदिवाकर जी महाराज ने इन रईसों से अनेक धार्मिक कार्य करवाये।

जैनदिवाकरजी महाराज अपने समय के महान् विशिष्ट वक्ता थे। राज महलों से लेकर झोंपड़ियों तक आपकी जादूभरी वाणी गूँजी। वक्ता होने के साथ उच्चकोटि के साहित्य निर्माता भी थे। गद्य-पद्य में आपने अनेक ग्रंथों का निर्माण किया, जिसमें

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

निर्ग्रन्थप्रवचन, भगवान् महावीर की जीवनी, 'पद्य-मय जैन रामायण', मुक्तिपथ, आदि प्रसिद्ध हैं। आप द्वारा निर्मित पदों का 'जैनसुबोध' गुटका' नाम से एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

संयोग की बात देखिए कि रविवार (कार्तिक शु० १३, सं० १६३४) को नीमच में आपका जन्म हुआ, रविवार (फाल्गुन शु० ५ सं० १६५२) को आपने दीक्षा अंगीकार की और रविवार (मार्गशीर्ष शु० ६ सं० २००७) को ही कोटा में आपका स्वर्गवास हुआ। सचमुच रवि के समान तेजस्वी जीवन आपको मिला।

आपके पिता श्री गंगारामजी तथा माता श्री केसर बाई ऐसे सपूत को जन्म देकर धन्य हो गए। नीमच (मालवा) पावन हो गया।

चित्तौड़ में आपके नाम से श्री चतुर्थ जैन वृद्धाश्रम नामक एक संस्था चल रही है। कोटा में आपकी स्मृति में अनेक सार्वजनिक संस्थाओं का सूत्रपात हो रहा है।

मरुधर आचार्य श्रीअमरसिंहजी महाराज

श्रद्धेय पूज्य श्री अमरसिंहजी म० एक महान् आचार्य थे, जिन्होंने भारत की राजधानी दिल्ली में जन्म लिया और वहीं शिक्षा-दीक्षा पाई।

पूज्य श्री लालचन्द्रजी म० की वाग्धारा को श्रवण कर सं० १७४१ में, भरी जवानी में स्त्री का परित्याग कर, दीक्षा अंगीकार की। सं० १७६१ में आप आचार्य बने, संवत् १७५७ में दिल्ली में वर्षावास व्यतीत किया, बहादुर शाह बादशाह उपदेश से प्रभावित हुआ।

जोधपुर के दीवान खिवसिंहजी भण्डारी के प्रेम भरे आग्रह को टाल न सके तथा अलवर, जयपुर, अजमेर होते हुए मरुधर के प्रांगण में प्रवेश किया।

सोजत में जिन्द को प्रतिबोध देकर मस्जिद का जैनस्थानक बनाया, जो कि आज भी कायाकल्प कर उस अतीत का स्मरण करा रहा है।

श्री जीतमलजी महाराज

भारतीय संस्कृति के मननशील मनीषी आचार्य श्री जीतमलजी म० जिनका जन्म सं० १८२६ में रामपुरा में हुआ, पिता देवसेनजी और माता का नाम सुभद्रा था। अध्यात्मवाद के उत्प्रेरक आचार्य श्री सुजानमल जी के उपदेश से प्रभावित होकर सं० १८३४ में माता के साथ संयम के कठिन मार्ग पर अपने मुस्तैदी से कदम बढ़ाये।

आप दोनों हाथों और दोनों पैरों से एक साथ लिखते थे, चारों कलमें एक साथ एक दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करती थीं। १३ लाख श्लोकों की प्रतिलिपियाँ करना इसका ज्वलंत उदाहरण है। जैन-जैनेतर के भेद-भाव के बिना, किसी भी उपयोगी ग्रंथ को देखते तो उसकी प्रतिलिपि कर देते थे, यही कारण है कि आपने ३२ बक्त,-बत्तीस आगमों की ज्योतिष, वैद्यक, सामुद्रिक-गणित, नीति, ऐतिहासिक, सुभाषित, शिक्षाप्रद औपदेशिक आदि विषयों के ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ की।

चित्रकला के प्रति आपका स्वाभाविक आकर्षण था। जैन श्रमण होने के नाते धार्मिक, औपदेशिक, कथा-प्रसंगों को लेकर तथा जैन भौगोलिक नक्शे और कल्पना के आधार पर ऐसे चित्र चित्रित किये हैं जिन्हें देख मन-मयूर नाच उठता है। उनके जीवन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का एक प्रसंग है कि सं० १८७१ में जोधपुर के परम मेधावी सम्राट् मानसिंहजी के यह प्रश्न पूछने पर कि "जल की बूँद में असंख्य जीव किस प्रकार रह सकते हैं ?" उत्तर में आचार्य श्री ने एक चने की दाल जितने स्वल्प स्थान में एक सौ आठ हस्ति अङ्कित किये जिन्हें सम्राट् ने सूक्ष्मदर्शक शीशा की सहायता से देखा और प्रसन्नता प्रकट करते हुए जैन-मुनियों के प्रशंसा रूप निम्न कवित्त रचा—

काहू की न आश राखे, काहू से न दीन भाखे,
करत प्रणाम ताको, राजा राण जेवड़ा।
सीधी सी आरोगे रोटी, बैठा बात करें मोटी,
ओढ़ने को देखो जांके,धोला सा पछेवड़ा॥
खमा खमा करे लोक, कदियन राखे शोक,
बाजे न मृदंग चंग, जन माहिं जे बड़ा।
कहे राजा मानसिंह, दिल में विचार देखो,
दुःखी तो सकल जन, सुखी जैन सेवड़ा॥

आप उस समय के प्रसिद्ध कवि थे, आपने राजस्थानी भाषा में सर्वजनोपयोगी अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। 'चन्द्रकला' नामक ग्रन्थ जो चार खण्डों में विभक्त है, एक सौ ग्यारह ढ़ाल में हैं। और सूरप्रिय सप्त ढ़ाल में है। आपका स्वर्गवास सं० १८६२ में हुआ।

पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के ग्यारहवें पाट पर पूज्य श्री एकलिंगदासजी महाराज आचार्यपद पर विराजमान हुए। आप मेवाड़ में परम त्यागी और तपस्वी मुनिराज थे। आपके पिता का नाम शिवलाल जी था जो संगेसरा के निवासी थे। संवत् १६१७ में आपका जन्म हुआ। तीस वर्ष की युवावस्था में पूज्य श्रीनरसीदासजी महाराज से आकोला में आपने दीक्षा ग्रहण की और संवत् १६६७ में उंटाला ग्राम में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके ६ अग्रगण्य विद्वान् शिष्य थे जिनमें पूज्य श्री मोतीलालजी महाराज अग्रगण्य थे। गुरुभाई श्रीमांगीलालजी महाराज का जन्म 'राजाजी का करेड़ा में हुआ था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आप परम निष्ठाशाली चारित्रवान् मुनिराज हैं।

आचार्य श्री भग्गुमलजी महाराज

आचार्य श्री भग्गुमलजी महाराज का जन्म चन्द्र जी का गुड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आप पल्ली-वाल थे। छोटी-सी वय में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी माता और बहन ने भी दीक्षा ग्रहण की थी। आचार्य महाराज अंग्रेजी, फारसी और अरबी भाषा के भी विद्वान् थे। गणित, ज्योतिष और योगशास्त्र आदि अनेक विषयों के बहुश्रुत विद्वान् होने के कारण अलवर-नरेश महाराजा मंगलसिंह जी ने आपको 'राज्य पंडित' की उपाधि से विभूषित किया था।

आपकी काव्य-शैली प्रासाद गुण संयुक्त थी। 'शान्तिप्रकाश' जैसे गूढ़ ग्रन्थों का निर्माण आपकी उत्कृष्ट विद्वता का ज्वलन्त उदाहरण है।

कवि श्री नन्दलालजी महाराज

पूज्य श्री रतिरामजी महाराज के शिष्य कविराज श्री नन्दलालजी महाराज साधुमार्गी समाज में एक बहुश्रुत विद्वान् थे। आपका जन्म काश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। दीक्षा लेने के थोड़े समय के बाद आप शास्त्रों के पारगामी विद्वान् हो गये। आपने 'लब्धिप्रकाश,' गौतम पृच्छा' रामायण' 'अगड़दत्त'

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इसके सिवाय 'ज्ञनप्रकाश', 'रुक्मिणी रास', आदि अनेक ग्रन्थों का भी आपके द्वारा निर्माण हुआ। आपकी कविताएँ संगीतमय, भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी होती थीं। संवत् १६०७ में होशियारपुर में आपका स्वर्गवास हुआ। पूज्य श्रीनन्दलालजी महाराज वचनसिद्ध शिष्य हुए। मुनि श्री किशनचन्द्रजी महाराज ज्योतिष-शास्त्र के पण्डित थे, रूपचन्दजी महाराज वचनसिद्ध तपस्वी मुनिराज थे और मुनि श्री किशनचन्दजी महाराज की परम्परा में अनुक्रम से मुनि श्री बिहारीलालजी, महेशचन्द्रजी, वृषभानजी तथा मुनि श्री सादीरामजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

पूज्य श्री लाधाजी स्वामी

पूज्य श्री लाधाजी स्वामी कच्छ-गुंदाला ग्राम के निवासी श्री मालसीभाई के सुपुत्र थे। आपने संवत् १६०३ में बांकानेर में दीक्षा ग्रहण की और संवत् १६६३ में आपको आचार्य-पद प्रदान किया गया। तत्कालीन विद्वान् संतों में आप प्रख्यात विद्वान् संत थे। जैन-शास्त्रों का अध्ययन करके "प्रकरण संग्रह" नामक ग्रन्थ को आपने रचना की। यह ग्रन्थ सर्वत्र उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रवेत्ता श्रीसदानन्दी छोटेलालजी महाराज आप ही के शिष्य हैं। श्रीलाधाजी स्वामी के पश्चात् मेघराजजी स्वामी और इनके बाद पूज्य देवचन्द जी स्वामी हुए।

शतावधानी पं० रत्नचंदजी महाराज

शतावधानी पं० रत्नचन्द्रजी महाराज ने अपनी पत्नी के अवसान के बाद दूसरी कन्या के साथ किये गए सम्बन्ध को छोड़कर दीक्षा ग्रहण की। सं० १६३६ में भोरारा (कच्छ) में आपका जन्म हुआ था। अपने गुरुदेव श्री गुलाबचन्दजी महाराज की नेश्राय में रहकर गहन अध्ययन किया। संस्कृत भाषा में अस्खलित रूप से धाराप्रवाही प्रवचन करते थे। अनेक गद्य-पद्यात्मक काव्य आपके द्वारा रचे गये हैं। अर्धमागधी कोष तैयार कर आपने आगमों के अध्ययन का मार्ग सरल और सुगम बना दिया है। साहित्य-संशोधन करने वाले विद्वानों के लिए आप द्वारा निर्मित यह कार्य अत्यधिक सहायकरूप है।

'जैन सिद्धान्त कौमुदी' नाम का सुबोध प्राकृत व्याकरण भी आपने तैयार किया है। 'कर्त्तव्यकौमुदी' और 'भावना शतक' सृष्टिवाद और ईश्वर' जैन ग्रन्थों की भी आपने रचना की है। न्यायशास्त्र के भी आप प्रखर पंडित थे। अवधान-शक्ति के प्रयोग के कारण आप शतावधानी कहलाये। समाज सुधार और संगठन के कार्य में आपको खूब रस था। अजमेर के साधु-संमेलन में शान्ति-स्थापकों में आपका अग्र-गण्य स्थान था। जयपुर में आपको 'भारत रत्न' की उपाधि प्रदान की गई थी। साधु-मुनिराजों के संगठन के लिए आप सदा प्रयत्नशील रहते थे। घाटकोपर में आपने "वीर संघ" की योजना का निर्माण किया था।

वि० सं० १६४० में आपको शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई। उसकी शल्य-चिकित्सा की गई किन्तु आयुष्य पूर्ण हो जाने के कारण आपका घाटकोपर में स्वर्गवास हो गया।

पूज्य श्री मणिलालजी महाराज

पूज्य श्री मणिलालजी महाराज ने वि० संवत् १६४८ में घोलेरा में दीक्षा ग्रहण की थी। आप शास्त्रों के गहन अभ्यासी थे। ज्योतिष विद्या में भी आप निष्णात थे। "प्रभु महावीर पट्टावली" नामका ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखकर आपने समाज की उल्लेख-नीय सेवा की है। "मेरी विशुद्ध भावना" और शास्त्रीय विषयों पर प्रश्नोत्तर के रूप में भी आपने पुस्तकें लिखी हैं। अजमेर के साधु-संमेलन में आप एक अग्रगण्य शान्तिरक्षक थे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूज्य खोड़ाजी स्वामी

'श्री खोड़ाजी काव्यमाला' के नाम से आपके स्तवन और स्वाध्याय गीतों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। गुजराती साहित्य में भक्त कवि अखा का जैसा स्थान है वैसा ही गुजराती जैन साहित्य में पूज्य खोड़ा जी का स्थान है।

पूज्य श्री देवचन्दजी महाराज

पूज्य श्री देवचन्दजी महाराज इस संप्रदाय में उपाध्याय थे। वि० सं० १९४० में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ साकरचन्द भाई था। वि० सं० १९५७ में आपने दीक्षा ग्रहण की। न्याय, व्याकरण और साहित्य के आप प्रखर विद्वान थे। 'ठाणांग-सूत्र' पर भाषान्तर भी आपने लिखा है। न्याय के पारिभाषिक शब्दों को सरल रीति से समझाने वाला आपने एक ग्रन्थ लिखा है। संवत् २००० में पोरबन्दर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री जीतमलजी स्वामी

तेरहपंथी संप्रदाय के चतुर्थ पट्टधर आचार्य श्री जीतमलजी स्वामी का जन्म सं० १८६० में आसोज सुदी १४ को मारवाड़ के रोहित ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम आइदानजी गोलेछा और माता का नाम कलुजी था। इनकी दीक्षा नव वर्ष की उम्र में जयपुर में हुई थी। भीखणजी को छोड़ कर अन्य सब आचार्यों की तरह ये भी बाल ब्रह्मचारी थे और बाल्यावस्था में ही तीव्र वैराग्य से अपनी माता तथा दो भाई के साथ दीक्षा ली थी। जीतमलजी महाराज असाधारण विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी कविताओं की संख्या बीस लाख गाथाओं के लगभग है। भगवती सूत्र जैसे विशाल तथा सूक्ष्म रहस्यपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद करना कम विद्वत्ता का काम नहीं हो सकता। इसी प्रकार उत्तराध्ययन, दशवैकालिक सूत्र आदि शास्त्रों का भी उत्तमता पूर्वक अनुवाद किया है। ये अनुवाद उनकी असाधारण विद्वत्ताकी चिरस्थायी कीर्तियाँ हैं। इन अनुवादों के अतिरिक्त उनकी मूल रचनाएँ भी कम नहीं हैं। 'भ्रम विध्वंसनम्', 'जिन आज्ञामुख मण्डनम्', 'प्रश्नोत्तर तत्वबोध', आदि ग्रन्थ स्व सम्प्रदायिक विषयों की पुस्तकें हैं।

महासती जी श्रीपार्वती जी महाराज

महासती श्रीपार्वतीजी (पंजाब) का नाम वर्तमान में सुप्रसिद्ध है। आपका जन्म आगरा जिले में संवत् १९१६ में हुआ था। सं० १९२४ में केवल आठ वर्ष की अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की थी। संवत् १९२८ में आप पंजाब के श्री अमरसिंह जी महाराज की संप्रदाय में सम्मिलित हुई आप बड़ी क्रिया पात्र थीं। पंजाब के साध्वी संघ पर तो आप का प्रभुत्व था ही; परन्तु श्रमण संघ भी आपकी आवाज का आदर करता था। आपने अनेक प्रान्तों में विचरण कर के धर्मध्वजा फहराई थी। आपने संस्कृतप्राकृत आदि भाषाओं का बड़ा ही सरस ज्ञान प्राप्त किया था। आपने 'ज्ञान दीपिका', 'सम्यक्त्व सूर्योदय,' सम्यक् चन्द्रोदय आदि महान् ग्रन्थों की रचना की है। आप के ग्रन्थों में अद्भुत तर्क और सचोट दलीलें भरी हुई हैं। आपके विरोधी आपकी दलीलों का बुद्धिपूर्वक उत्तर देने में असमर्थ होने के कारण क्षुद्रता पर उतर जाते थे। सं० १९९७ में जालंधर में आप का स्वर्ग ास हुआ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन श्रमण संघ-संगठन का

प्राचीन-इतिहास

जैन संघ के प्ररूपक वर्तमान चौवीसी के चरम तीर्थङ्कर भगवान महावीर स्वामी हैं। आपने विक्रम संवत् से ५०० वर्ष पूर्व वैशाख शुक्ला ११ को प्रातः-कालीन शुभ वेला में केवल ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अपने संघ की स्थापना की। इस संघ संगठन को जैन मान्यतानुसार 'तीर्थ प्ररुपणा' कहते हैं और इसके प्ररुपक को तीर्थङ्कर। तीर्थ के साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ऐसे चार भेद होते हैं।

भगवान् महावीरस्वामी अपनी महान् त्यागीप्रवृत्ति से 'निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र' के नाम से प्रसिद्ध थे; अतः उनके समय में साधु-साध्वी को 'निर्ग्रन्थ' नाम से संबोधित किया जाता था। इसके पश्चात् जैन मुनियों के लिये निर्ग्रन्थ, श्रमण, अचेलक अनगार, भिक्षु, त्यागी, ऋषि, महर्षि, माहण, मुनि, तपस्वी चातुर्यामिक, पंचयामिक तथा क्षपणक आदि नाम भी प्रयुक्त होने लगे।

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के मुनि चातुर्याम के पालक थे अतः उस नाम से भी जैन श्रमण पहिचाने जाते रहे। भगवान ने ब्रह्मचर्य का स्वतंत्र पंचम व्रत निरुपण किया जिसे इनके साधु पंचयामिक कहलाये। क्षपणक, क्षपण, क्षमण, खवण ये सब जैन श्रमणों के पर्यायवाची शब्द हैं। भगवान महावीर के समय में तीन मतों के साधु थेः-१ पार्श्वनाथ संतानीय २ उपकेश गच्छ और ३ कंवला गच्छ। भगवान के ११ गणधर थे जिनमें २ गणधरों की वाचना एक समान होने से ६ गण ही थे। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद सभी गण भगवान सुधर्मा स्वामी के गण में संमिलित होगये थे इसीलिये समस्त श्वेतांबर श्रमण संघ श्री सुधर्मा स्वामी की परंपरा में माना जाता है। केवल उपकेश गच्छ ही अपनी परम्परा भगवान पार्श्वनाथ से जोड़ता है।

आचार्य सुधर्मा स्वामी के पश्चात् अनेक गण एवं कुल हुए जिनका विस्तृत वर्णन कल्पसूत्र की स्थिवरावली में वर्णित है। दिगंबर संप्रदाय अपनी परंपरा पृथक रूप से मानता है जिसका वर्णन आगे दिया जारहा है।

श्वेतांबर संप्रदाय के भी वे सब प्राचीन गण व कुल नाम शेष हो चुके हैं। यही गण व कुल बाद में 'गच्छ' नाम से प्रसिद्ध हुए। ऐसे ८४ गच्छ हुए। श्वेतांबर संप्रदाय के वर्तमान सभी फिरके इन्हीं ८४ गच्छों के भेद प्रभेद हैं।

निन्हव भेद

गणधर वंश के समान वाचक वंश भी महावीर के श्रमण संघ का एक और प्रवाह रहा था जिसे युग प्रधान परंपरा भी कहते हैं। इस प्रवाह में वे गच्छ हैं जो क्रिया भेद के मत भेदों से मूल संघ में से अलग होते रहे। इन्होंने भगवान कथित सत्य का निन्हव क्रिया अर्थात् उसे छिपाकर अपने मत की प्ररूपणा की अतः उन्हें निन्हव कहते हैं। वीर निर्वाण से ६०६ वर्ष बाद तक ऐसे ८ निन्हव संप्रदायें हुई हैं।

(१) वी० नि० पूर्व १४ वर्ष जमाली ने 'बहुरत' मत चलाया। (२) वी० नि० १६ व० पू० तिष्यगुप्त ने 'जीव प्रदेश' मत चलाया। (३) वी० नि० २१४ में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आषाढा चार्य ने अव्यक्त मत। (४) वी० नि० २२० में महागिर के पाँचवें शिष्य कौडिन्य ने 'सामुच्छेदिक' मत चलाया। (५) वी० नि० २२८ में आर्य महागिरी के शिष्य धनगुप्त के शिष्य गंगादत्त ने द्विक्रिय 'मत चलाया। (६) वी० सं० ५४४ में रोहगुप्त ने "त्रिराशिक" मत चलाया (७) वी० सं० ५८४ में गोष्ठा माहिल ने 'अबद्धिक' मत तथा (८) वी० सं० ६०६ (वि० सं० १३६) में शिव भूति ने 'बटिक (दिगंबर) मत चलाया।

ऐसा आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७७८ से ७८८ भाष्य गाथा १२५ से १४८ में वर्णन है।

प्राचीनकाल के ये गच्छ भेद किसी क्रिया या सिद्धान्त भेद के द्वेष मूलक प्रवृत्ति पर आधारित न होकर गुरु परम्परा पर ही विशेष आधारित थे और सभी जैन शासन की गौरव वृद्धि के लिये ही सतत् प्रयत्न शील रहते थे। आज की तरह सम्प्रदाय वाद के प्रचारक नहीं। विक्रम की ११ वीं शताब्दी के पश्चात् जो गच्छ भेद हुए उन्होंने सांप्रदायिकता का रूप धारण किया और यहीं से द्वेष मूलक प्रवृत्तियों का प्रारंभ होकर जैन शासन का ह्रास काल प्रारंभ हुआ। अब हम प्राचीनकाल के मुख्य २ गच्छों के संबन्ध में संक्षिप्त वर्णन लिखते हैं।

निर्ग्रन्थ गच्छ

भगवान महावीर "निर्ग्रन्थ ज्ञात पुत्र" विशेषण से संबोधित होते थे अतः उनका साधु संघ भी निर्ग्रन्थ कहलाया। निर्ग्रन्थ शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

"न कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीणं। जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरन्ति" (स्थविरावली) निग्गन्थाण महेसिण (दशवैकालिक सूत्र)।

निर्ग्रन्थ का अर्थ है जो बाह्य एवं आभ्यन्तर ग्रन्थी से रहित हैं। बाह्य रूप में कोई वस्तु गांठ में छिपाकर नहीं रखते तथा आभ्यन्तर में पवित्र चित्त वाले। निर्ग्रन्थ रजो हरण, मुहपत्ति, वस्त्र, पात्र आदि उपकरण युक्त होते हैं पर उन पर ममत्व नहीं रखते।

कोटिक गच्छ

वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दी में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा। निर्ग्रन्थ साधुओं की संख्या कम होने लगी। इसके बाद सम्राट सम्प्रति के समय से पुनः जैनधर्म के प्रचार और संगठन ने जोर पकड़ा। जैन साधुओं की संख्या बढ़ने लगी। ये संगठन अपने सगठन कर्त्ता के नामों से प्रसिद्ध हुए जैसे–

भद्रबाहु स्वामी के शिष्य गोदास से गोदास गण, आर्य महागिरी के शिष्य उत्तर तथा बलिस्सह से बलिस्सह गण, आर्य सुहस्ति के शिष्यों से उद्देह, चारण, वेस वाडिय, मानव तथा कोटिक गच्छ की स्थापना हुई। इन सब के भिन्न २ कुल और शाखाएं भी व्यवस्थित हुई। ये सब निर्ग्रन्थ गच्छ के नामान्तर भेद हैं।

भगवान महावीर स्वामी के आठवें पट्टधर आचार्य सुहस्ति सूरि के पांचवें और छट्ठे शिष्य आर्य सुस्थित तथा आर्य सुप्रतिबद्ध ने उदय गिरी पहाडी पर कोड़वार सूरि मंत्र का जाप किया था उसीसे उनको 'कोटिक' नाम से सम्बोधित किया गया और वी० नि० सं० ३०० के करीब उनका साधु समुदाय "कोटिक गच्छ" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह निर्ग्रन्थ गच्छ की ही शाखा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चन्द्रगच्छ

निर्ग्रन्थ गच्छ के १३ वें पट्टधर आचार्य वज्र स्वामी हुए। ये अन्तिम दश पूर्वधर थे। दिगम्बर परम्परा में इन्हें द्वितीय भद्रबाहू के नाम से उल्लेख किया गया है। इन आचार्य के नाम से 'वज्रशाखा' बनी। आचार्य वज्र स्वामी के समय विक्रम की दूसरी शताब्दी में उत्तर भारत में फिर से १२ वर्ष का भीषण दुष्काल पड़ा। उस समय आचार्य श्री ५०० शिष्यों को साथ ले दक्षिण भारत की एक पहाडी पर जाकर अनशन लीन हुए। उनके एक क्षुल्लक शिष्य ने पास वाली दूसरी पहाडी पर अनशन किया। केवल आचार्य श्री के एक शिष्य श्री वज्रसेनसूरि ने आचार्य श्री की आज्ञानुसार अपनी श्रमण परम्परा चालू रखने की दृष्टि से बम्बई प्रान्त के सोपारा स्थान में जाकर सेठ जिनदत्त, सेठानी ईश्वरी के पुत्र नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति तथा विद्याधर चारों की दुष्काल से रक्षा कर उन्हें अपने शिष्य बनाये। ये चारों बाद में आचार्य बने। इन चारों आचार्यों ने वी० नि० सं० ६३० के आस पास नागेन्द्र गच्छ, चन्द्र गच्छ, निवृत्ति गच्छ तथा विद्याधर गच्छ की स्थापना की। समयान्तर से इन चारों गच्छों में से भिन्न २ नामों से ८४ गच्छ बने।

वनवासी गच्छ

आचार्य चन्द्रसूरि के पाट पर आचार्य समन्त भद्रसूरि हुए। आप बड़े ही विद्वान् तथा घोर तपस्वी थे। शास्त्रानुकूल क्रिया पालने में बड़े कठोर थे और अधिकतर देवकुल, शून्य स्थान तथा वनों में जाकर ध्यान मग्न रहते थे। इसी से उनकी शिष्य परम्परा "वन वासी गच्छ" के नाम से प्रसिद्ध हुई इसका समय वीर नि० सं० ७०० के आस पास का है। निर्ग्रन्थ गच्छ का यह चौथा भेद है।

बड़ गच्छ

भगवान् महावीर स्वामी के ३५ वें पट्टधर आचार्य उद्योतन सूरि एक बार श्री सम्मेतशिखर तीर्थ की यात्रा कर आबू तीर्थ की यात्रार्थ गये हुए थे वहाँ तलेटी के एक ग्राम में एक बड़वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे वहाँ आकाश में कोई अनोखा 'ग्रहयोग' होते देखा। इस अवसर को शुभ मुहूर्त जान कर वी० नि. सं० १४६४ वि० सं० ९९४ में आपने सर्वदेव सूरि आदि प्रमुख ८ शिष्यों को एक साथ आचार्य पदवी प्रदान की और आशीर्वाद दिया कि "तुम्हारी शिष्य संतति बड़के समान फलेगी फूलेगी"। बड़ नीचे आचार्य पद प्राप्त होने से श्री सर्वदेव सूरि आदि की शिष्य परम्परा का नाम "बड़ गच्छ" प्रसिद्ध हुआ।

सचमुच आचार्य सर्व देव सूरि की शिष्य सन्तति बड़ वृक्ष की ही तरह विस्तृत हुई।

इस समय तक नागेन्द्र आदि गच्छों के अन्तर्गत ८४ गच्छ बन चुके थे। कुछ स्थानों पर ऐसा भी उल्लेख है कि आचार्य उद्योतन सूरिजी ने बड़ वृक्ष के नीचे तप लीन अवस्था में एक आकाश वाणी सुन कर अपने ८४ विद्वान साधुओं को एक साथ आचार्य बनाया और इन्हीं ८४ आचार्यों से ८४ गच्छ बने। कुछ भी हो चन्द्र गच्छ और बड़ गच्छ एक ही पेड़ की दो शाखाएं हैं। इन ८४ गच्छों के नाम स्थानाभाव से यहाँ नहीं देकर आगे परिशिष्ट भाग में देंगे।

इस समय तक चन्द्रकुल गच्छ, पूर्णतल गच्छ नाणक पुराय गच्छ (शंखेश्वर गच्छ) 'कालिकाचार्य, भावड़ा, मलधारी, थिरापद्री, चैत्र बाल, ब्राह्मण उपकेश गच्छ आदि गच्छों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध था। बड़गच्छ के समय में ही समाचारी भेद के कारण पुनमिया वि० सं० ११५६ चामुंडिक, (१२०१) खरतर (१२०४) अंचल (१२१३) सार्ध पुनमिया (१२३६) आगमिक (१२५०) आदि गच्छों की भी उत्पत्ति हुई।

विक्रम की १३ वीं सदी में भ० महावीर के ४४ वें पट्टधर आ० श्री जगच्चन्द्रसूरि ने सं० १२७३ में चैत्रवाल गच्छीय आ० भुवनचन्द्र सूरि के साथ क्रियोद्धार किया। आपही तपा गच्छ के संस्थापक आचार्य हैं। अब आगे के अध्याय में जैन श्रमण संघ के वर्तमान विद्यमान भेद प्रभेदों का वर्णन देते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन श्रमण संघ-संगठन का वर्तमान स्वरूप

जैनधर्म के मुख्यतया दो सम्प्रदाय हैं:—(१) श्वेताम्बर और (२) दिगम्बर। यह भेद सचेल-अचेल के प्रश्न को लेकर हुआ है। भगवान् महावीर से पहले सचेल परम्परा भी थी यह बात उपलब्ध जैन आगम साहित्य और बौद्ध साहित्य से सिद्ध होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के केशि-गौतम अध्ययन से इस बात पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के प्रतिनिधि श्रीकेशी ने भगवान महावीर के प्रधान शिष्य गौतम से प्रश्न किया है कि भ० पार्श्वनाथ ने तो सचेल धर्म कथन किया है और भगवान महावीर ने अचेल धर्म कहा है। जब दोनों का उद्देश्य एक है तो इस भिन्नता का क्या प्रयोजन है? इस पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् महावीर से पहले सचेल परम्परा थी और भगवान् महावीर ने अपने जीवन में अचेल परम्परा को स्थान दिया।

भगवान् महावीर ने भी दीक्षा लेते समय एक वस्त्र धारण किया था और एक वर्ष से कुछ अधिक काल के बाद उन्होंने उस वस्त्र का त्याग कर दिया और सर्वथा अचेलक बन गये, यह वर्णन प्राचीनतम आगम ग्रन्थ श्री आचारांग सूत्र में स्पष्ट पाया जाता है।

बौद्ध पिटकों में "निग्गंठा एक साटका" जैसे शब्द आते हैं। यह स्पष्टतया जैन मुनियों के लिये कहा गया है। उस काल में जैन अनगार एक वस्त्र रखते थे अतः बौद्ध पिटकों में उन्हें 'एक शाटक' कहा गया है। आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में अचेलक, एक शाटक द्विशाटक और अधिक से अधिक त्रिशाटक के कल्प का वर्णन किया गया है। इससे यह मालूम होता है कि भगवान् महावीर के समय दोनों प्रकार की परम्पराएं थी। उनके संघ में सचेल परम्परा भी थी और अचेल परम्परा भी थी। भगवान महावीर स्वयं अचेलक रहते थे उनके आध्यात्मिक प्रभाव से आकृष्ट होकर अनेक अनगारों ने अचेल धर्म स्वीकार किया था। इतना होते हुए भी अचेलकता सर्व सामान्य रूप में स्वीकृत नहीं हुई थी। अनेक श्रमणनिर्ग्रन्थ सचेलक धर्म का पालन करते थे। निर्ग्रन्थियों (साध्वियों) के लिए तो अचेलकत्व की अनुज्ञा थी ही नहीं।

भगवान् महावीर के शासन में अचेल-सचेल का कोई आग्रह नहीं रखा गया। इसलिये पार्श्वनाथ की परम्परा के अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थ भगवान महावीर की परम्परा में सम्मिलित हुए। भगवान् महावीर के संघ में अचेल-सचेल धर्म का सामञ्जस्य था। दोनों परम्परायें ऐच्छिक रूप में विद्यमान थी। जो श्रमण निर्ग्रन्थ अचेलत्व को स्वीकार करते थे वे जिनकल्पी कहलाते थे और जो निर्ग्रन्थ सचेलक धर्म का अनुसरण करते थे वे स्थविरकल्पी कहलाते थे। भगवान् महावीर ने अचेलत्व का आदर्श रखते हुए भी सचेलत्व का मर्यादित विधान किया। उनके समय में निर्ग्रन्थ परम्परा के सचेल और अचेल दोनों रूप स्थिर हुए और सचेल में भी एक शाटक ही उत्कृष्ट आचार माना गया।

प्राचीनता की दृष्टि से सचेलता की मुख्यता और गुण दृष्टि से अचलता की मुख्यता स्वीकार कर भगवान महावीर ने दोनों अचेल सचेल परम्पराओं का सामजस्य स्थापित किया। भगवान महावीर के पश्चात् लगभग दो सौ ढाई सौ वर्षों तक यह सामञ्जस्य बराबर चलता रहा परन्तु बाद में दोनों पक्षों के अभिनिवेष (खिंचातानी) के कारण निर्ग्रन्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परम्परा में विकृतियां आने लगी। उसका परिणाम श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेदों के रूप में प्रकट हुआ। वे भेद अबतक चले आ रहे हैं।

भारत के विस्तृत प्रदेशों में जैनधर्म का प्रसार हुआ। दक्षिण और उत्तर पूर्व के प्रदेशों में दूरी का व्यवधान बहुत लंबा है। प्राचीन काल में यातायात के साधन और संदेश व्यवहार की सुविधा न थी अतः प्रत्येक प्रांत में अपने अपने ढंग से संघों की संघटना होती रही। दुष्काल और अन्य परिस्थिति के कारण पूर्व प्रदेश में रहे हुए अनगारों के आचार विचार और दक्षिण में रहे हुए श्रमणों के आचार विचार में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था। काल प्रवाह के साथ यह भेद तीक्ष्ण होता गया। मत भेद इस सीमा तक पहुँचा कि दोनों पक्षों के सामंजस्य की सद्भावना बिल्कुल न रही तब दोनों पक्ष स्पष्ट रूप से अलग २ हो गये वे दोनों किस समय और कैसे स्पष्ट रूप से अलग हो गये, यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता है। दोनों पक्ष इस संबन्ध में अलग अलग मन्तव्य उपस्थित करते हैं और हर एक अपने आपको महावीर का सच्चा अनुयायी होने का दावा करता है और दूसरे को पथभ्रान्त मानता है। श्वेतांबर मत के अनुसार दिगबंर संप्रदाय की उत्पत्ति वीर निर्वाण संवत् ६०६ (वि० सं० १३६, ईस्वी सन् ८३) में हुई और दिगंबरों के कथानानुसार श्वेतांबरों की उत्पत्ति बीर निर्वाण सं० ६०६ (वि० सं० १३६, ई० सन् ८०) में हुई। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि निर्ग्रन्थप रंपरा के ये दो भेद स्पष्ट रूप से ईसा की प्रथम शताब्दी के चतुर्थ चरण में हुए हैं।

स्याद्वाद के अमोघ सिद्धान्त के द्वारा जगत् के समस्त दार्शनिक वादों का समन्वय करने वाला जैनधर्म कालप्रभाव से स्वयं मताग्रह का शिकार हुआ। आपस में विवाद करने वाले दार्शनिकों और विचारकों का समाधान करने के लिये जिस न्यायाधीश तुल्य जैन धर्म ने अनेकान्त का सिद्धान्त पुरस्कृत किया था वही स्वयं आगे चलकर एकान्त वाद के चक्कर में फँस गया। सचेल और अचेल धर्म के एकान्त आग्रह में पड़कर निर्ग्रन्थ परंपरा का अखन्ड प्रवाह दो भागों में विभक्त हो गया। इतने ही से खैर नहीं हुई, दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रतिद्वन्दि बनकर अपनी शक्ति को क्षीण करने लगे। दोनों में परस्पर विवाद होता था और एक दसरे का बल क्षीण किया जाता था। दिगंबर संप्रदाय दक्षिण में फूला फला और श्वेतांबर संप्रदाय उत्तर और पश्चिम में। दक्षिण भारत दिगंबर परंपरा का केन्द्र बना रहा और पश्चिमी भारत श्वेतांबर परंपरा का केन्द्र रहा है। आज तक दोनों परंपराएँ अपने अपने ढंग पर चल रही हैं।

कालान्तर में चैत्यवासी अलग हुए। श्वेताम्बर संघ में अनेक गच्छ पैदा हुए। दिगम्बर परम्परा में भी नाना पंथ प्रकट हुए। इस तरह निर्ग्रंथ परम्परा अनेक भेद प्रभेदों में विभक्त हो गई।

यहां संक्षेप से जैन सम्प्रदाय के मुख्य २ भेद प्रभेदों का थोड़ा सा परिचय दिया जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय

इस परम्परा का मूल बीज अचेलकत्व है। सर्व परिग्रह रहितता की दृष्टि से वस्त्ररहिता (नग्नता) के आग्रह के कारण इस भेद का प्रादुर्भाव हुआ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। स्त्रियों की नग्नता अव्यवहारिक और अनिष्ट होने से स्त्रियों की प्रव्रज्या का निषेध है। इस परम्परा के अनुसार स्त्रियों को मोक्ष नहीं होता। नग्नता, स्त्रीमुक्ति निषेध केवलिकवलाहार निषेध आदि बातों में श्वेताम्बरों से इनका भेद है। दिगम्बर परम्परानुसार उनकी वंशपरम्परा इस प्रकार है। तुलना की दृष्टि से साथ २ श्वेताम्बर परम्परा का भी उल्लेख कर दिया जाता है:—

श्रुतकेवली

दिगम्बर	श्वेताम्बर
महावीर	महावीर
सुधर्म	सुधर्म
जम्बू	जम्बू
विष्णु	प्रभव
नंदी	शय्यंभव
अपराजित	यशोभद्र
गोवर्धन	संभूतिविजय
भद्रबाहु	भद्रबाहु

दशपूर्वधर

दिगम्बर	श्वेताम्बर
विशाख	स्थूलिभद्र
प्रौष्ठिल	महागिरि
क्षत्रिय	सुहस्ति
जयसेन	गुणसुन्दर
नागसेन	कालक
सिद्धार्थ	स्कन्दिल
धृतिसेन	देवतीमित्र
विजय	आर्य मंगू
बुद्धिल	आर्य धर्म
गंगदेव	भद्रगुप्त
धर्मसेन	श्रीगुप्त वज्र

दोनों परम्पराओं के अनुसार भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली हुए।

इसके बाद दिगम्बर परम्परानुसार पांच ग्यारह अंगधारी (नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस) हुए इसके सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य, एक अंगधारी हुए। यहां तक वीर निर्माण सं० ६८३ पूर्ण हुआ इसके बाद श्रुत का विच्छेद हो गया।

दिगम्बर सम्प्रदाय में कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, उमास्वाति, पूज्यपाद देवनन्दी, वज्रनन्दी, अकलंक, शुभचन्द्र, अनन्तकीर्ति, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र आदि बहुमान्य विद्वान् आचार्य हुए हैं। पं० आशाधरजी महान् विद्वान् श्रावक हुए हैं। इन आचार्यों के सम्बन्ध में विशेष "परिचय महाप्रभाविक जैनाचार्य" शीर्षक पिछले परिच्छेद में दिया जा चुका है।

संघ परिचय:—दिगंबर मान्यता के अनुसार संवत् २६ में मूलसंघ को प्राकृत आचार्य अर्हद्बलि (जिन्हें गुप्ति गुप्त अथवा विशाख भी कहते हैं) ने चार संघों के रूप में विभक्त कर दिया। उनके चार शिष्य उन संघों के नेता हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

१) नन्दी संघ—इसके नेता माघनन्दी थे। चातुर्मास में ये नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यान करते थे इस पर से यह नाम पड़ा।

(२) सेन संघ—इसके नेता जिनसेन थे।

(३) सिंह संघ—इसके नेता सिंह थे। ये सिंह की गुफा में चातुर्मास करते थे ऐसा कहा जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(४) देवसंघ—इसके नेता देव थे।

उक्त चार संघों में से अनेक संघ निकले जो उस संघ के नेता के नाम से विख्यात हुए। यह मूल संघ की शाखायें हैं। इसके अतिरिक्त अन्य नवीन संघ इस प्रकार हैं:--१ द्रविड संघ-पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दी ने विक्रम संवत ५२६ में मथुरा में इसकी स्थापना की थी। अमुक फल भक्ष्य है या नहीं इस विषय पर विवाद होने से यह भेद पड़ा। कहा जाता है कि यह संघ व्यापार करवाकर जीवन निर्वाह करने को वैध मानता था।

(२) यापनीय संघ (मोक्ष्य सघ):—यह संघ दिगंबर होते हुए भी स्त्रीमुक्ति और केवली कवलाहार को स्वीकार करता है।

(३) काष्ठासंघ-यह संघ श्वेताबंर दिगबंर का मध्यस्थ था। इस शाखा का राष्ट्रकूट आदि वंशों के राजाओं ने बहुत सन्मान किया था। विक्रम की आठवीं सदी में हरिभद्रसूरी ने ललित विस्तरा में इसका सन्मानपूर्वक उल्लेख किया है। काष्ठासंघी बाल पिच्छ रखते हैं। इसकी स्थापना वि० सं० ७५३ विनेयसेन के शिष्य कुमार सेन ने की थी।

(४) माथुरसंघ-संवत् ७४३ में रामसेन ने मथुरा में इसकी स्थापना की थी। इस संघ वाले पिच्छी नहीं रखते हैं। उक्त संघों में से आजकल कोई खास संघ नहीं रहे।

आजकल दिगंबर सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण दो पन्थ हैं। एक बीस पन्थ और दूसरा तेरह पन्थ। बीस पन्थी भट्टारकों (यति) को मानते हैं अपने देवालय में क्षेत्रपाल आदि की प्रतिमा रखते हैं, केशर का अर्चन करते हैं, नैवेद्य रखते हैं, रात्रि को भेंट चढ़ाते हैं तथा आरती करते हैं। तेरापन्थी भट्टारकों को नहींमानते हैं, क्षेत्रपालादि की मूर्ति नहीं रखते, केशर का अर्चन नहीं करते, फूल नहीं चढ़ाते, आरती नहीं उतारते। तेरहवीं शताब्दी में हुए वसन्त कीर्ति से बीसपन्थ की स्थापना हुई और तेरहपन्थ की स्थापना पं० बनारसीदासजी के द्वारा हुई है। तेरह पन्थ और बीस पन्थ में प्रतिमा पूजन की विधि में मुख्यतया भेद है। इसके अतिरिक्त ई० सन् १४४८-१५१५ में तारणस्वामी ने तारणपन्थ की स्थापना की। यह पन्थ मूर्ति पूजा का विरोधी है परन्तु अपने संस्थापक के ग्रन्थों को वेदी पर रखकर पूजा करता है। इसके बाद गुमानपन्थ और तोता पन्थ भी स्थापित हुए। ब्रह्मचारी क्षुल्लक (एक लंगोट और एक वस्त्र रखने वाले) और एलक (लंगोट मात्र रखने वाले) ये तीन दिगबंर मुनि होने के पहले की श्रेणियां हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय

भगवान महावीर की सचेलक (श्वेतवस्त्र धारण) व मूर्ति पूजा की परंपरा इसका मूलाधार है। इसके अन्तर्गत अनेक गण, गच्छ आदि अवान्तर भेद हैं। कल्पसूत्र में भी अनेक कुल, गण और शाखाओं का उल्लेख मिलता है। मथुरा से प्राप्त हुए लेखों में भी ऐसे गण कुल और शाखाओं के भेदों का उल्लेख है। कहा जाता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में अब तक कितने गण या गच्छ हुए यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

वीर निर्वाण संवत् ८८२ में जैन श्रमणों में शिथिलता आ जाने के कारण शिथिल आचार विचार के पोषक चैत्यवासी अलग हुए। वे चैत्यों और मठों में रहने लगे। जिनमन्दिर और पौषधशालाएँ बनवाने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लगे। देवद्रव्य का अपने लिए उपभोग करने लगे। निमित्त, मुहूर्त्त आदि बताने लगे यति और श्री पूज्य इसी परम्परा के हैं। हरिभद्रसूरि ने संबोध प्रमाण में इसका वर्णन करते हुए कड़ी खबर ली है। इसके बाद खरतरगच्छ के जिनेश्वरसूरि, जिनदत्तसूरि आदि ने इसका खूब विरोध किया। इसके बाद मुख्य २ गच्छ इस प्रकार हुए:—

१ खरतरगच्छ

(१) खरतरगच्छः—इस गच्छ की पट्टावली में कहा गया है कि चन्द्रकुल के वर्धमानसूरि के शिष्य श्री जिनेश्वरसूरि के द्वारा इस गच्छ की स्थापना हुई। पाटन की गादी पर जब दुर्लभराज आरूढ़ था तब ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ कि ये जिनेश्वरसूरि उक्त राजा की राजसभा में गये और उसके सरस्वती भण्डार से दशवैकालिक सूत्र मंगवाकर राजा को बता दिया कि चैत्यवासियों का आचार शुद्ध आचार नहीं है। उक्तसूरिजी के आचार विचार से राजा दुर्लभराज बहुत प्रभावित हुआ उसने उन्हें 'खरतर' (अधिक तेज उत्कृष्ठ आचार वाले) की उपाधि दी। तबसे चैत्यवासियों का जोर कम होगया। इससे पहले तक बनराज चावड़ा के समय से पाटण में चैत्यवासियों का ही जोर था। इन जिनेश्वरसूरि की खरतर उपाधि से खरतरगच्छ की स्थापना सं० १०८० में हुई। जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि (दादा) इस गच्छ के परम प्रभावक पुरुष हुए।

२ तपागच्छ

यह गच्छ श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सबसे अधिक महत्व वाला है। तपागच्छ की उत्पत्ति उद्योतनसूरि के बाद हुई है। उद्योतनसूरि ने अपने शिष्य सर्वदेव को वटवृक्ष के नीचे सूरि पद दिया इससे यह गच्छ बड़गच्छ कहलाया। इसके बाद इस गच्छ में भगवान् महावीर स्वामी के ४४ वें पट्टधर आचार्य श्रीजगच्चन्द्र सूरि हुए। इन्होंने १२८५ (वि० सं०) में उग्र तपश्चर्या की इससे मेवाड़ के महाराणा ने इन्हें 'तपा' की उपाधि प्रदान की। इस पर से यह गच्छ तपा गच्छ कहलाया। इस गच्छ के मुनियों की संख्या बहुत अधिक है। जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य विजयचन्द्रसूरि ने वृद्ध पोशालिक तपागच्छ की स्थापना की। प्रसिद्ध कर्म ग्रन्थकार देवेन्द्रसूरि जगच्चन्द्रसूरि, के पट्टधर हुए।

३ उपकेशगच्छ

इस गच्छ की उत्पत्ति का सम्बन्ध भगवान् पार्श्वनाथ के साथ माना जाता है। प्रसिद्ध आचार्य रत्नप्रभसूरि जो ओसवंश के आदि संस्थापक हैं इसी गच्छ के थे। स्वर्गीय सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता मुनि ज्ञान सुन्दरजी (आचार्य देव गुप्त सूरिजी) इसी गच्छ के थे।

४ पौर्णमिक गच्छ

संवत् ११५१ में चन्द्रप्रभसूरि ने क्रिया काण्ड सम्बन्धी भेद के कारण इस गच्छ की स्थापना की। कहा जाता है कि इन्होंने महानिशीथ सूत्र को शास्त्र ग्रन्थ मानने का प्रतिषेध किया। सुभटसिंह ने इस गच्छ का नव जीवन दिया तब से यह सार्ध (साधु) पौर्णमिक कहलाया।

५ अंचलगच्छ या विधिपक्ष

आर्य रक्षित सूरि ने सं० ११६६ में इस गच्छ की स्थापना की। मुख वस्त्रिका के स्थान पर अंचल (वस्त्र का किनारा) का उपयोग किया जाने से यह गच्छ अंचलगच्छ कहा जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

६ आगमिक गच्छ

इस गच्छ के उत्पादक शील गुण और देव भद्र सूरि थे। ई० सन् ११६३ में इसकी स्थापना हुई। ये क्षेत्र देवता की पूजा नहीं करते।

७ पार्श्वचन्द्र गच्छ

यह तपागच्छ की शाखा है। सं० १५७२ में पार्श्वचन्द्र तपागच्छ से अलग हुए। इन्होंने निर्युक्त, भाष्य चूर्णी और छेद ग्रन्थों को प्रमाण भूत मानने से इन्कार किया। यति अनेक हैं। इनके श्री पूज्य की गादी बीकानेर में है।

८ कडुआ मत

आगमिक गच्छ में से यह मत निकला। इस मत की मान्यता यह थी कि वर्त्तमान काल में सच्चे साधु नहीं दिखाई देते। कडुआ नामक गृहस्थ ने आगमिक गच्छ के हरिकीर्ति से शिक्षा पाकर इस मत का प्रचार किया था। श्रावक के वेष में घूम २ कर इनने अपने अनुयायी बनाये थे। सं. १५६२ या १५६४ में इसकी संस्थापना हुई ऐसा उल्लेख मिलता है।

९ संवेगी सम्प्रदाय

ईसा की सतरहवीं में श्वेताम्बरों में जड़वाद का बहुत अधिक प्रचार हो गया था सर्वत्र शिथिलता और निरंकुशता का राज्य जमा हुआ था। इसे दूर करने के लिए तथा साधु जीवन की उच्च भावनाओं को पुनःप्रचलित करने के लिए मुनि आनन्दघनजी, सत्य विजयजी, विनयविजयजी और यशोविजयजी आदि प्रधान पुरुषों ने बहुत प्रयत्न किये। इन आचार्यों का अनुसरण करने वालों ने केशरिया वस्त्र धारण किये और वे संवेगी कहलाये। संवेगी सम्प्रदाय अपनी आदर्श जीवन-चर्या के द्वारा अत्यन्त माननीय है।

इसके अतिरिक्त अनेक गच्छों के नाम उपलब्ध होते हैं। इस श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सबसे अधिक महत्व पूर्ण भेद विक्रम की सोलहवीं सदी में हुआ। इस समय में क्रान्तिकारी लौंकाशाह ने मूर्ति पूजा का विरोध किया और इसके फल स्वरूप स्थानकवासी सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ।

❀ स्थानकवासी सम्प्रदाय ❀

स्थानकवासी जैन समाज के अथवा अमूर्तिपूजक जैनों के प्रेरक लोंकाशाह का जन्म विक्रम संवत् १४८२ के लगभग हुआ था और इनके द्वारा की गई धर्म क्रांति का प्रारम्भ वि० सं० १५३० के लग भग हुआ। लौंकाशाह का मूलस्थान सिरोही से ७ मील दूर स्थित अरहट्टवाडा है परन्तु वे अहमदाबाद में आकर बस गये थे। अहमदाबाद के समाज में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। वे वहाँ के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष थे। इनके अक्षर बहुत सुन्दर थे। उस समय अहमदाबाद में ज्ञानजी नामक साधुजी के भण्डार की कुछ प्रतियाँ जीर्ण-शीर्ण होगई थीं अतः उनकी दूसरी नकल करने के लिए ज्ञानजी साधु ने लौंकाशाह को दी। प्रारम्भ में दशवैकालिक सूत्र की प्रति उन्हें मिली। उसकी प्रथम गाथा में ही धर्म का स्वरूप बताया गया है। उसे देख कर उन्हें धर्म के सच्चे स्वरूप की प्रतीति हुई। उन्होंने उसकाल में पालन किये जाते हुए धर्म का स्वरूप भी देखा। दोनों में उन्हें आकाश-पाताल का अन्तर दिखाई दिया। "कहां तो शास्त्र वर्णित धर्माचार का स्वरूप और कहां आज के साधओं द्वारा पाला जाता हुआ आचार"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस विचार ने उनके हृदय में क्रान्ति मचा दी। उन्होंने अन्य सूत्रों का वाचन, मनन और चिन्तन किया इसके फलस्वरूप उन्होंने निर्णय किया कि 'शास्त्रों में मूर्ति-पूजा करने का विधान नहीं है। साधु साध्वी जो कार्य कर रहे हैं। वह सत्य साध्वाचार से विपरीत है अतः जैन संघ में आए हुए विकार को दूर करने की आवश्यकता है। लौंकाशाह ने अपने इन विचारों को तत्कालीन जनता के सामने रक्खा। परम्परा से चली आती हुई मूर्तिपूजा के विरोधी विचारों को सुन कर हलचल मच गई परन्तु लौंकाशाह ने अनेक युक्तियों और प्रमाणों से अपने मन्तव्य की पुष्ठि की। धीरे २ जनता उस ओर आकृष्ट होने लगी। कहते हैं शत्रुंजय की यात्रा करके लौटते हुए एक विशाल संघको उन्होंने अपने उपदेश से प्रभावित कर लिया। दृढ़ संकल्प सत्य निष्ठा और उपदेश की सचोटता के कारण लौंकाशाह सफल धर्म क्रान्तिकार हुए। सर्व प्रथम भाणजी आदि ४५ पुरुषों ने लौंकशाह के द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिये दीक्षा धारण की। सं० १५३१ में एक साथ ४५ पुरुष लौंकाशाह की आज्ञा से नव प्रदर्शित साध्वाचार को पालन करने के लिये उद्यत हुए। इसके बाद आचार की उग्रता के कारण इस सम्प्रदाय का प्रचार वायुवेग की तरह होने लगा और हजारों श्रावकों ने अनुसरण किया।

लौंकाशाह के बाद ऋषि भाणजी, भीदाजी, गजमलजी (जगमालजी), सरवाजी, रूप ऋषिजी और श्री जीवाजी क्रमशः पट्टधर हुए। यह लौंकाशाह के नाम से लौंकागच्छ कहलाया। लौंकागच्छ के आचार्य जीवाजी के तीन शिष्य हुए-१ कुँवरजी की परम्परा में श्रीमलजी, रत्नसिंहजी, शिवजी ऋषि हुए। शिवजी ऋषिजी के संघराजजी और धर्मसिंहजी दो शिष्य हुए संघराज ऋषि की परम्परा में अभी नृपचंद जी हैं। इनकी गादी बालापुर में है धर्मसिंहजी म० की परम्परा दरियपुरी सम्प्रदाय कही जाती है।

जीवाजी ऋषि के दूसरे शिष्य वरसिंहजी की परम्परा में पाटानुपाट केशवजी हुए। इसके बाद यह केशवजी का पक्ष कहलाने लगा इस पक्ष के यतियों की गादी बडौदा में है। इस पक्ष में यदि दीक्षा छोड़-कर तीन महापुरुष निकले जिन्होंने अपने २ सम्प्रदाय चलाये। वे प्रसिद्ध पुरुष हैं लवजी ऋषि, धर्मदासजी और हरजी ऋषि।

जीवाजी ऋषि के तीसरे शिष्य श्री जगाजी के शिष्य जीवराजजी हुए। इस परम्परा से अमरसिंहजी म० शीतलदासजी म० नाथूरामजी म० स्वामीदासजी म० और नानकरामजी म० के सम्प्रदाय निकले।

लवजी ऋषि से कानजी ऋषिजी का सम्प्रदाय, खम्भात सम्प्रदाय, पंजाब सम्प्रदाय रामरतनजी म० का सम्प्रदाय निकले।

धर्मदासजी म० के शिष्य श्री मूलचन्द्रजी म० से लिंबडी सम्प्रदाय, गोंडल सायला सम्प्रदाय, चूडा सम्प्रदाय, बोटाद सम्प्रदाय, और कच्छ छोटा बडा पक्ष, निकले। धर्मदासजी म० के दूसरे शिष्य धन्नाजी म० से जयमलजी म० का सम्प्रदाय, रघुनाथजी म० संप्रदाय और रत्नचन्द्रजी म० का संप्रदाय निकले। धर्मदासजी म० तीसरे शिष्य पृथ्वीराजजी से एकलिंग जी म० का संप्रदाय निकला। धर्मदासजी म० के चौथे शिष्य मनोहरदासजी से पृथ्वीचन्द्रजी म० का संप्रदाय निकला। धर्मदासजी म० के पांचवे शिष्य रामचन्द्रजी म. से माधवमुनि म. का संप्रदाय निकला।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हरजी ऋषि से दौलतरामजी म० का सम्प्रदाय, अनोपचन्दजी म० का सम्प्रदाय और और हुक्मीचंद जी म० का सम्प्रदाय निकला।

इस तरह वर्तमान स्थानक वासी बत्तीस सम्प्रदाय लवजी ऋषि, धर्मदासजी धर्मसिंहजी, जीवराजजी और हरजी ऋषि की परंपरा का विस्तार हैं। ये सब महापुरुष बड़े क्रिया पात्र और प्रभावक हुए। इससे स्थानकवासी संप्रदाय का अच्छा विस्तार हुआ।

स्थानकवासी संप्रदाय ३२ आगमों को ही प्रमाण भूत मानता है। ग्यारह अंग, बारह उपांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोग, दशाश्रुत, व्यवहार, वृहत्कल्प, निशीथ और आवश्यक। ये स्थानकवासी संप्रदाय के द्वारा मान्य आगम ग्रन्थ हैं। इस संप्रदाय के साधु-साध्वियों का आचार विचार उच्चकोटि का समझा जाता है। क्रिया की उग्रता की ओर इस संप्रदाय का विशेष लक्ष्य रहा है और इससे ही इसका विस्तार हुआ है।

श्री व० स्थ० जैन श्रमण संघ की स्थापना

अखिल भारत वर्षीय स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस के अथक परिश्रम से स्थानकवासी संप्रदाय के समस्त समुदाय सादडी (मारवाड़) में हुए बृहत् साधु संमेलन के अवसर पर एक होकर एक ही आचार्य, एक व्यवस्था और एक समाचारी के झंडे नीचे सुसंगठित हो गये है।

यह महान् क्रान्ति वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय-तृतीया) सं० २००९ को सादड़ी (मारवाड़) में हुई। और तभी से स्थानकवासी समाज के अधिकांश मुनिगण-श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ" के एक्य सूत्र में आबद्ध हैं। इस महान संघ के वर्तमान स्वरूप का विस्तृत वर्णन "वर्तमान मुनि मण्डल" शीर्षक विभाग के अगले पृष्ठों में करेंगे।

❀ तेरा पंथ ❀

स्वामी भीखणजी इस संप्रदाय के आद्य प्रवर्त्तक हैं। आपने पहले स्थानकवासी जैन संप्रदाय के रघुनाथजी महाराज के संप्रदाय में दीक्षा धारण की थी। आठ वर्ष के पश्चात् दयादान संबन्धी दृष्टिकोण और आचार विचार संबन्धी विचार विभिन्नता के कारण आपने अलग संप्रदाय स्थापित किया।

इस पन्थ के प्रथम आचार्य भिक्षु (भीखणजी) का जन्म संवत् १७८३ में मारवाड़ के कण्ठालिया ग्राम में हुआ था। आपके पिताजी का नाम साहूबल्लू जी और माता का नाम दीपा बाई था। आप ओसवंश के सखलेचा गोत्र में उत्पन्न हुए थे। आपने संवत् १८०८ में तत्कालीन स्थानकवासी संप्रदाय में रघुनाथ जी म० के पास दीक्षा धारण की। आपकी प्रतिभा अनुपम थी। थोड़े ही समय में आपने शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। आठ वर्ष के पश्चात् आपके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया और तेरह साधुओं के साथ आप अलग हो गये। सं० १८१६ में आपने अलग संप्रदाय स्थापित किया। कहा जाता है कि तेरह साधु और तेरह अलग पौषध करते हुए श्रावकों को लक्ष्य में रख कर किसी ने इसका नाम तेरह पन्थ रख दिया। "हे प्रभो! यह तेरा पन्थ है" इस भाव को लक्ष्य में रख कर आचार्य भिक्षुजी ने वही नाम अपना लिया।

आचार्य भिक्षु ने उग्र क्रियाकाण्ड को अपनाया और उसके कारण जनता को प्रभावित करना आरंभ किया। आद्य संप्रदाय संस्थापक को अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना करना होता है। भिक्षुजी ने भी दृढ़ता से काम लिया। वे अपने उद्देश्य में सफल हुए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उन्होंने अपनी संप्रदाय का एक दृढ विधान बनाया। उस विधान में संप्रदाय को संगठित रखने वाले तत्व दूरदर्शिता के साथ सन्निहित किये। आपने अपने समय में ४७ साधु और ५६ साध्वियों को अपने पन्थ में दीक्षित किया था। आपका स्वर्गवास सं० १८६० भाद्रपद शुक्ला १३ को ७७ वर्ष की अवस्था में सिरियारी ग्राम में हुआ। आपके बाद स्वामी भारमल जी आपके पट्टधर हुए।

१ आचार्य भिक्षु, २ भारमलजी स्वामी, ३ रामचंद्र जी स्वामी, ४ जीतमलजी स्वामी, ५ मघराजजी स्वामी ६ माणकचन्दजी स्वामी, ७ डालचन्दजी स्वामी, ८ कालुरामजी स्वामी ये आठ आचार्य इस संप्रदाय के हो चुके हैं। वर्तमान में आचार्य श्री तुलसी गणी नवें पट्टधर हैं। आचार्य तुलसी वि० सं० १९९३ में पदारूढ हुए। आप अच्छे व्याख्याता, विद्वान् कवि और कुशल नायक हैं। आपके शासन काल में इस संप्रदाय की बहुमुखी उन्नति हुई है।

इस संप्रदाय की एक खास मौलिक विशेषता है, वह है इसका दृढ संगठन। सैकडों साधु और साध्वियाँ एक ही आचार्य की आज्ञा में चलती हैं। इस संप्रदाय के साधुसाध्वियों में अलग २ शिष्य-शिष्याये करने की प्रवृत्ति नहीं है। सब शिष्यायें आचार्य के ही नेश्राय में की जाती हैं। इससे संगठन को किसी तरह का खतरा नहीं रहता। संगठन के लिए इस विधान का बड़ा भारी महत्व है। इस संप्रदाय में आचार्य का एक छत्र शासन चलता है।

विक्रम सं० २००७ तक सब दीक्षायें १८५५ हुई। उनमें साधु ६३४ और साध्वियां १२२१। वर्तमान में ६३७ साधु-साध्वियां आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में विद्यमान हैं।

इस प्रकार भगवान् महावीर की परम्परा का प्रवाह स्याद्वाद के सिद्धान्त के रहते हुए भी अखंडित न रह सका और वह उक्त प्रकार से नाना सम्प्रदायों गच्छों और पन्थों में विभक्त हो गया। काश् यह विभिन्न सरितायें पुनः अखण्ड जलत्व महासागर में एकाकार हों!

भट्टारक तथा यति परम्परा

जैन श्रमण परम्परा पर विचार करते समय यति परम्परा पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। सच तो यहहै कि जैन मुनियों का वर्तमान स्वरूप यति परम्परा का ही एक परिष्कृत एवं उत्कृष्ट स्वरूप है, जिसमें एकान्त रूप से आत्म कल्याण हेतु अपने को सांसारिक प्रपंचों से किंचित मात्र भी संबंध रखने वाली प्रवृत्तियों से बचकर विशुद्ध निवृत्ति मार्ग की ओर आरूढ़ बनने में ही सच्चो श्रमण साधना मानी गई। यह परिष्कृत स्वरूप प्रारंभ में चैत्यवासियों से खरतर गच्छ, बाद में तपा गच्छ और स्थानकवासी मान्यता के रूप में शनःशनै परिवर्तित एवं परिष्कृत होता गया।

विक्रम की १० वीं सदी के पूर्वार्द्ध में चैत्यवासियों का प्राबल्य रहा। ये मन्दिर पूजन के नाम पर मन्दिरों में घर की तरह रहने लगे और धीरे धीरे उन मन्दिरों का रूप मठों जैसा होने लगा। पोप लिलाएँ बढने लगी। इस प्रकार इसमें अत्यधिक विकृत्तियां आजाने से विक्रम की ११ वीं सदी में आचार्य जिनचन्द्र सूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने चैत्यालयों में निवास करने को भयंकर आशातना माना और जिन मन्दिर विषयक ८४ आशातनाओं का विशेष

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अध्ययन कर तत्कालीन जैन मन्दिरों से इन आशातनाओं को मिटाने का बीड़ा उठाया और उन्होंने क्रियोद्धार किया। बस यहीं से चैत्यवासियों के प्रति समाज की श्रद्धा घटती गई और क्रियोद्धार कर्त्ता मुनियों की ओर आकर्षण बढ़ने लगा। जिनने क्रियोद्धार कर चैत्यालयों में निवास करना बन्द कर पौषधशाला या उपाश्रयों में रहकर साधुवृत्ति धारण की वे मुनिवर्य माने जाने लगे और जिन्होंने अपनी पूर्व वृत्ति ही प्रारंभ रक्खी वे यति या भट्टारक रूप में माने जाने लगे।

इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि जैन यतियों का जैन इतिहास में कम महत्व पूर्ण स्थान है। नहीं; वह समय धार्मिक होड़ा होड़ी का समय था। प्रत्येक धर्मावलम्बी अपने २ धर्म की गौरव वृद्धि करने में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाये हुए थे। ऐसे समय में इस यति समुदाय ने ही अपनी चामत्कारिक प्रवृत्तियों से तथा अधिक संख्या में स्थान २ पर जिन मन्दिरों का निर्माण करा कर, राजा महाराजाओं को प्रभावित करके, औषधोपचार, ज्योतिष, मन्त्र तंत्र विद्या आदि कई आकर्षक प्रवृत्तियों से लोगों को जैन धर्म की ओर अधिक आकृष्ट बनाया था। इसी प्रकार धार्मिक क्रियाएँ करना, बालकों को पढ़ाना, आदि की समाज हितकारी प्रवृतियां भी कीं, इसी से वे अबतक भी जैन समाज में पूज्यनीय बने हुए हैं। और समाज भी श्री पूज्य जी, आचार्य आदि श्रद्धायुक्त विशेषणों से सम्बोधित करती है। और यही कारण है कि विक्रम की १४ वीं सदी तक भी खरतर गच्छ में इसी यति परम्परा की सी छाप रही।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण वृत्ति के समान यति समुदाय ने भी धार्मिक क्रिया काण्ड करना, जैन मन्दिरों में सेवा पूजन करना आदि प्रवृत्तियों को अपना जीवनाधार बना लिया। यही नहीं इस प्रवृति के कारण समाज से भी इन्हें लाखों रुपया प्राप्त हुआ और आज भी यतियों के पास खासी जायदादें और लाखों की सम्पति है।

समाज की श्रद्धा ज्यों ज्यों इस यति समुदाय के प्रति कम होती गई त्यों त्यों इनका लक्ष्य भी यति क्रियाओं की तरफ से खिंचता चला गया और कोई कठोरता से टोंकने वाला नियंत्रण न रहने से धीरे धीरे इनमें से कई पूर्ण रूप से गृहस्थ बन गये। स्त्री रखने लगे–शादियां करने लगे। अब तो केवल अंगुलियों पर गिनने लायक ही ऐसे यति रह गये हैं जो यतिव्रत पालते हैं।

इस यति परम्परा में भी शाखा भेद हैं जो आचार्य परम्परा से पड़े हैं। इनमें जिनरंगसूरि शाखा, और मंडोवरी शाखा मुख्य है।

लखनऊ गादी के गद्दीधर आचार्य जिन राजसूरि के दो शिष्य हुए आचार्य जिनरंगसूरि तथा आचार्य जिनरत्नसूरि। जिनरंगसूरि लखनऊ के गादीधर रहे तथा जिन रत्नसूरि ने बीकानेर में गादी स्थापित की। इसी बीकानेर गादी पर सं० १८८१ में आ० जिन हर्ष सूरिजी हुए जिनके दो पट्टधर बने। एक पक्षने जिन सौभाग्यसूरिजी को पट्टधर बनाया तो दूसरे ने जिन महेन्द्रसूरि को। जिन महेन्द्रसूरि से मंडोवरी शाखा चली। सं० १८९२ में मंडोवर में यह शाखा उत्पन्न हुई अतः मंडोवरी शाखा कहलाई। वर्तमान में इसके श्री पूज्य जयपुर और बनारस में रहते हैं। लखनऊ के गादी धर वर्तमान में दिल्ली निवास करते हैं।

वर्तमान यति समुदाय इन्हीं शाखा भेदों के अंग प्रत्यंग हैं। दिगम्बर समाज में यति की ही तरह भट्टारक होते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वर्तमान जैन मुनि परम्परायें-

श्वेताम्बर तपागच्छीय परम्परा

नीचे भगवान महावीर स्वामी की पाट परम्परा देकर तपागच्छ संस्थापक ४४ वें पट्टधर आचार्य श्री जगच्चन्द्र सूरिजी से तपागच्छ की पाट परम्परा दी जाती है। इस पाट परम्परा का सम्बन्ध वर्तमान में विद्यमान श्वेताम्बर तपागच्छीय मुनि परम्परा से बांधने का प्रयत्न करेंगे।

निर्ग्रन्थ गच्छ

१ सुधर्मा स्वामी
२ जम्बू स्वामी
३ प्रभव स्वामी
४ स्वयंभव सूरि
५ यशोभद्र सूरि
६ सम्भुति विजय
७ स्थूलभद्रजी
८ आर्य सुहस्तिसूरि

कोटिक गच्छ

९ आर्य सुस्थित तथा सु प्रतिबद्ध सूरि
१० इन्द्र दिन सूरि
११ दिन्न सूरि
१२ आर्यसिंह सूरि
१३ वज्र स्वामी
१४ वज्र सेन सूरि

चन्द्र गच्छ

१५ चन्द्र सूरि

वनवासी गच्छ

१६ सामन्तभद्र सूरि
१७ वृद्धदेव सूरि
१८ प्रद्योतन सूरि
१९ मानदेव सूरि
२० मानतुंगसूरि
२१ वीर सूरि
२२ जयदेव सूरि
२३ देवानन्द सूरि
२४ विक्रम सूरि
२५ नृसिंह सूरि
२६ समुद्र सूरि
२७ मानदेव सूरि
२८ विबुध प्रभसूरि
२९ जयानन्दसूरि
३० रविप्रभसूरि
३१ यशोदेवसूरि
३२ प्रद्युम्नसूरि
३३ मानदेवसूरि
३४ विमलचन्द्रसूरि

वड़गच्छ

३५ उद्योतनसूरि
३६ सर्वदेवसूरि
३७ देवसूरि
३८ सर्वदेवसूरि
३९ यशोभद्रसूरि
४० मुनिचन्द्रसूरि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

४१ अजितदेवसूरि
४२ विजयसिंहसूरि
४३ सोमप्रभसूरि

तपगच्छ

४४ तपस्वी जगच्चन्द्रसूरि (हीरला)
४५ देवेन्द्रसूरि (लघु पोषाल)
विजयचन्द्रसूरि (बड़ा पोषाल)
४६ धर्मघोषसूरि
४७ सोमप्रभसूरि (४ शिष्य आचार्य)
४८ सोम तिलकसूरि (४ शि० आ०)
४९ देवसुन्दर सूरि (५ आ० शि०)
५० सोम सुन्दरसूरि (४ आ० शि०)
५१ सुन्दरसूरि (सहस्त्रावधानी)
५२ रत्नशेखर सूरि
५३ लक्ष्मीसागरसूरि
५४ सुमति साधुसूरि
५५ हेम विमलसूरि
५६ आनंद विमलसूरि
५७ विजयदानसूरि
५८ जगद्गुरु हीरविजयसूरि
राज विजयसूरि (रत्न शाखा)
५९ विजयसेन सूरि
६० विजयदेवसूरि (देसूर संघ)
विजय तिलकसुरि (आनन्दसर संघ)
६१ विजयसिंहसूरि
विजय प्रभसूरि (यतिशाखा)
६२ सत्यविजयगणी
६३ कपूरविजयगणी
कुशल विजय गणी
६४ क्षमा विजयगणी
६५ जिन विजयगणी

इसके बाद का पाटानुक्रम बनाना कठिन एवं विवादा स्पद है अतः इस फुटनोट के रूप में बादकी केवल आचार्य परंपरा ही लिख देना उचित समझते हैं।

(१) ५७ वें पट्टधर आनन्द विमलसूरि के दो शिष्य हुए श्री विजयदानसूरिजी तथा श्री ऋद्धि विमलजी। विजयदान सूरि के (५८ वें) पट्टधर श्रीहीर विजय सुरि हुए। ऋद्धि विमलजी के कीर्ति विमलजी हुए। इनकी ६ ठी पीढी में से दयाविमलजी हुए।

(२) ५८ वें पट्टधर जगद्गुरु हीरविजयसूरि के ५ शिष्य हुए। विजयसेनसूरि, उ० कीर्तिविजय गणी, उ० कल्याण वि० ग०, उ० कनक वि० ग०, उ० सहजसागरजी तथा तिलक विजयजी। विजय सेन सूरि के पट्टधर उपरोक्त पट्टावली के ६०, से ६५ नं० तक हैं। सहजसागरजी की १० वीं पीढी में मयासागर जी हुए।

(३) श्री मयासागरजी के गौतम सागरजी व नेमसागरजी दो शिष्य हुए। श्री गौतमसागरजी के झवेर सागरजी व झवेर सागरजी के आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानंद सूरि हुए।

(४) श्री मयासागरजी के दूसरे शिष्य नेमसागर जी के रविसागरजी, इनके सुख सागरजी और सुख-सागरजी के शिष्य आ० श्री बुद्धि सागर सूरिजी हुए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(५) तिलक विजयजी के १२ वीं पीढ़ी में पं० हेत विजयजी हुए जिनके दूसरे शिष्य पं० हिम्मत विजयजी हुए जो वर्तमान में मेवाड़ केसरी आ० हिमाचल सूरि के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(६) ६५ वें पट्टधर जिन विजय गणी की तीसरी पीढी में रूप विजयगणी हुए जिनके २ शिष्य हुए कीर्ति विजयगणी और अमी विजयगणी। कीर्ति वि० के कस्तूर विजयगणी हुए।

(७) अमी विजयजी की चौथी पीढी में आ० विजयनीति सूरिजी हुए।

(८) श्री कस्तूर विजयगणी के ६ शिष्य हुए-महायोगीराज श्री बुद्धिविजयजी (बुटेरायजी), अमृत विजयजी, पद्मविजयजी, गुलाब विजयजी, शुभविजय जी और आ० विजय सिद्धी सूरिजी।

(९) श्री बुद्धिविजयजी (बुटेरायजी) महाराज के ७ प्रसिद्ध शिष्य हुए-१ तपागच्छाधिपति श्री मुक्ति विजयजी गणी (मूलचन्दजी महाराज) २ श्री वृद्धि विजयजी (वृद्धिचन्दजी), ३ नीति विजयजी, ४ आनंद विजयजी, ५, आ० श्री विजयानन्द सूरिजी (आत्मारामजी) ६ तपस्वी खान्ति विजयजी दादा।

(१०) श्री मुक्ति विजयजी गणी के ५ शिष्य हुए जिनमें आ० विजय कमल सूरिजी प्रथम हैं।

(११) श्री वृद्धि विजयजी (वृद्धिचन्द्रजी) महाराज के ६ शिष्य हुए जिनमें आ० विजय धर्म सूरिजी तथा आ० विजय नेमिसूरिजी की परम्परायें विद्यमान हैं।

(१२) आ० विजय कमल सूरिजी के ५ शिष्य हुए जिनमें आ० विजय केसर सूरिजी आ० विजय देवसूरिजी तथा आ० विजय मोहन सूरिजी तथा विनय विजयजी मुख्य हैं।

(१३) श्री बुद्धि विजयजी (बुटेरायजी) के ३ रे शिष्य श्री नीति विजयजी के शिष्य विनय विजयजी के शिष्य आ० विजयवीरसूरि हुए तथा तीसरे शिष्य सिद्धी विजयजी की ४ थी पीढी में कुमुद विजयजी आचार्य हुए।

(१४) श्री बुटेरायजी म० के ५ वें शिष्य हेम विजयजी के ४ शिष्य हुए जिनमें पं० पद्म विजयजी विजयप्रभसुरि नामक आचार्य बने।

(१५) न्यायाम्भोनिधि आ. श्री विजयानन्दसूरिजी (आत्मारामजी) म० के ७ शिष्य हुए। पं० लक्ष्मी वि०, चारित्र वि०, उद्योत वि०, वीर वि०, क्रांतिविजय जय वि० और अमर वि०।

(१६) पं० लक्ष्मी विजयजी के ४ शिष्य हुए। श्री हंसविजयजी, आ० विजय कमल सूरिजी, पं० हर्ष-विजयजी, तथा कुमुद वि०।

(१७) श्री हंसविजयजी के संपत वि० तथा दौलत वि०। दौलत वि० के धर्म विजयजी आचार्य हुए।

(१८) कु० वीरविजयजी के आ० विजय दानसूरि जी आदि ५ शिष्य हुए।

(१९) आ० विजय कमलसूरिजी के आ० श्री विजय लब्धिसूरिजी, हिम्मत वि०, नेम वि० तथा लावण्य वि०।

(२०) श्री हर्ष विजयजी के आ० विजय वल्लभ सुरिजी, मोहन वि०, प्रेम वि०, शुभ वि० आदि।

(२१) कु० कुमुद विजयजी के तीसरी पीढी में आचार्य सौभाग्य सुरिजी हुए।

[२२] आ० श्री विजय वल्लभसरि जी के विवेक विजय जी, आ० ललितसूरिजी, उ० सोहन विजयजी, विमल विजयजी, विद्याविं०, विचार, विचक्षण, शिव वि०, विशुद्ध० विकास, दान और विक्रम वि०, आदि शिष्य हुए। विशेष वश वृत्त परिचय विभाग में दिया जारहा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

[२३] श्री विवेक विजयजी के आ० श्री विजय उमंग सुरिजी हैं।

[२४] आ० श्री विजय ललितसूरि के शिष्य आ० विजय पूर्णानन्दसूरि विद्यमान हैं।

[२५] उपाध्याय श्री सोहनविजयजी के ३ शिष्य हुए जिनमें आ० श्री समुद्रसूरिजी विद्यमान हैं।

[२६] आ० श्री विजयदानसूरिजी के ४ शिष्यों में आ० श्रीमद् विजय प्रेमसूरि जी विद्यमान हैं।

[२७] आ० श्री विजय धर्मसूरिजी के ७ शिष्य हुए जिनमें आ. श्री विजयेन्द्रसूरि वर्तमान में आ. हैं।

[२८] सूरि सम्राट आचार्य श्रीमद् विजय नेमि सूरीश्वरजी म० सा० के १८ शिष्य हुए:-आ० विजय दर्शनसूरिजी, आ० विजय उदय सूरिजी, आ० विजय विज्ञानसूरिजी, विजय पद्म सूरिजी, पं० श्री सिद्धि विजयजी, आ० विजयामृतसूरिजी, आ० विजय लावण्य सूरिजी आ. जितेन्द्र सूरिजी आदि आचार्य तथा उ० श्री पद्म विजयजी, सिद्धी वि० गणी, भक्ति वि०, रूप वि० गीर्वाण वि०, मान वि०, धन वि० वाचस्पति वि०, संपत वि० प्रेम वि० प्रभा वि० आदि।

आ० विजयदर्शनसूरिजी के कुसुम वि०, गुण वि०, जयानन्द वि०, प्रियंकर वि० तथा महोदय वि० आदि ६ शिष्य प्रशिष्य हैं।

आ० विजय उदयसूरिजी के आ० विजय नन्दन सूरिजी, सुमित्र वि०, मोती वि०, मेरु वि०, कुमुद पं० कमल वि० आदि १२ शिष्य प्रशिष्य हैं।

आ० विजयनन्दन सूरिजी के सोम विजयजी, शिवानन्द वि०, अमर वि०, वीर वि०, आदि ७ शिष्य प्रशिष्य हैं।

आ० विजय विज्ञान सूरि के आ. कस्तूर सूरिजी, पं० चन्द्रोदय वि०, प्रियंकर वि० आदि।

आ० लावण्यसूरिजी के पं० दक्ष विजयजी तथा पं० सुशीलविजयजी गणि, चन्द्रप्रभ वि० आदि।

आ० श्री विजयामृत सूरि के राम वि० देव, खान्ति वि०, पुण्य वि०, निरंजन वि० तथा धुरन्धर वि० आदि।

आ० जितेन्द्र सूरि के विद्यानन्द वि० आदि।

[२९] आ० विजय सिद्धि सूरिजी के ६ शिष्य हुए जिनमें पाँचवें आ० विजय मेघसूरि हैं। दूसरे शिष्य श्री विनय वि० के आ० श्री भद्रसूरिजी शिष्य हैं।

[३०] योगनिष्ट आ. बुद्धिसागरजी के शिष्य आ. अजित सागर सूरि तथा आ० ऋद्धि सागर सूरि हैं।

यद्यपि उपरोक्त फुटनोट हमने सुक्ष्म जानकारी द्वारा लिखने का प्रयत्न किया है परन्तु तपागच्छीय मुनि समुदाय वर्तमान में सब से बड़ा समुदाय है तथा अति प्राचीन है। बड़ वृक्ष की तरह फला फूला है अतः इसकी महानता को पहुँचना कठिन है इसी दृष्टि से कई भूलें रहजाना संभव है। अतः उपरोक्त विवेचन में भूलें रही हों, न्यूनाधिक लिखने में आगया हो तो क्षमा प्रार्थी हैं और भूलें सुझाने का निवेदन करते हैं ताकि आगामी संस्करण में संशोधन हो सके।

श्री तपागच्छीय पूर्व परम्परा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये 'श्री तप गच्छ श्रमण वंश वृक्ष' प्रकाशक श्री जयन्तीलाल छोटालाल शाह अहमदाबाद नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

उक्त विवेचन देने का एक मात्र प्रयोजन वर्तमान मुनि परम्परा से पूर्व परम्परा की जानकारी को सुगम बनाना मात्र ही है।

अब हम आगे के पृष्ठों में वर्तमान मुनि समुदाय के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवेचन देंगे। —लेखक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तपागच्छीय वर्तमान मुनि मण्डल

['वर्तमान मुनि मंडल' की जानकारी कराने हेतु उनके इस वर्ष यानी विक्रम संवत् २०१६ सन् १९५९ की चातुर्मास सूचि यहाँ दे रहे हैं। इस सूचि में सभी स्थानों पर विराजमान मुनिराजों के नाम समाहित हैं, यह नहीं कहा जासकता। हम अधिक से अधिक जो जानकारी प्राप्त कर सके हैं उसी के आधार पर ही यह नामावली मुख्य मुनिराजों के नाम देकर उनके साथी मुनियों की (ठाणा) संख्या तथा स्थान दे पारहे हैं। यह अधिक संभव है कि इसमें कई मुनिराजों के नाम आदि छूट गये हों, इस छूट के लिये क्षमा प्रार्थी हैं।

—लेखक]

शासन सम्राट आचार्य श्रीमद्विजय नेमी सूरीश्वरजी महाराज का मुनि समुदायः—

आ० विजय दर्शन सूरिजी, पं० जयानन्द वि० गणी ठा० ६ नेमीदर्शन ज्ञानशाला पालीताणा।

आ० विजयोदय सूरिजी, उ० सुमित्र वि०, उ० मोती विजयजी, पं० कमल विजयजी ठा० १२ जेसर (पालीताणा)

आ० विजय नन्दन सूरिजी ठा० ५ जैन साहित्य मन्दिर पालीताणा।

आ० विजयामृत सूरिजी, आ० पद्म सूरिजी, मुनि निरंजन विजयजी आदि पांजरापोल अहमदाबाद।

आचार्य विजय लावण्य सूरिजी पं० दक्षविजय जी, पं० सुशील विजयजी ठा० ६ वल्लभी पुर।

आ० जितेन्द्र सूरिजी ठा० ४, महुवा।

उ० मेरु विजयजी, पं० देव वि० आदि ठा० ५ पायधुनी आदिश्वर धर्मशाला बम्बई ३।

पं० यशोभद्र वि० गणी, पं० शुभंकर वि० पं० कीर्तिचन्द्र वि० ठा० ११ साहूकार पैठ मद्रास ३।

पं० पुण्य विजयजी गणी, पं. धुरन्धर वि० आदि ठा० ४ इरलाब्रिज करमचन्द पौषधशाला बीर्लेपर्ले बम्बई २४।

पं० परम प्रभ विजयजी गणी ठा० ३ शीहोर सौ.

पं० महिमा प्रभ वि० भालक (गु०)

मुनि विबुध वि०, भानुचन्द्र वि० आदि ठा० ४, १४१५ शुक्रवार पैठ मद्रास

मुनि विज्ञान वि०, भक्त वि०, ठा० ३ दौलत नगर अमृतसूरिजी ज्ञानमन्दिर बोरीवली बम्बई ४८

मुनि चन्द्र प्रभ विजयजी शांति भुवन पालीताणा

मुनि राजेन्द्र वि०, जसकोर धर्मशाला पालीताणा

मुनि चिदानन्द वि० कंकुबाई धर्म शाला पालीताणा

साध्वी वर्ग

साध्वी कंचन श्री ठा० ५, सुशीला श्री ठा० ६, सद्गुण श्री ठा० ३, चन्दोदय श्री ठा० ३, राजेन्द्र श्री ठा० १०, लाभ श्री ठा० २, सोमलता श्री ठा० २, विद्या श्री ठा० २, सुशीला श्री ठा० १ दीप श्री १, सयम श्री १, मंजुला श्री १, महोदया श्री १, भुपेन्द्र श्री १, आदि पालीताणा।

साध्वी कांता श्री ठा० २ भावनगर, देवेन्द्र श्री ठा० ४ सूरत, हेम प्रभा श्री ठा० ४ जेसर (सौ०), शांति श्री ठा० ४ तलाजा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आगमोद्धारक आचार्य श्री आनन्द सागर सूरीश्वरजी का मुनि समुदाय—

आ० माणेक्य सागरसूरिजी, मुनि चंदन सागरजी ठा० ११ जानी शैशी जैन उपाश्रय, बड़ौदा।

आ० चन्द्रसागर सूरिजी, पं० ज्ञानसागरजी ठा० ६ जी० अ० जैन ज्ञान मन्दिर किंगसर्कल माटुंगा बम्बई १६-

आ० हेमसागरजी ठा० ७ शीव बम्बई।

उ० देवेन्द्र सागरजी ठा० ६ एन्ड्रुज रोड़ शांता क्रूज बम्बई २३

गणि धर्मसागरजी ठा० ५ उदयपुर।

गणी दर्शन सागरजी ३, सेन्डहर्स्ट रोड़ बम्बई ४

गणी हंस सागरजी ठा० ४ संवेगी उपाश्रय बढ़वाण।

ग० चिदानन्द सागरजी भावनगर।

ग० लब्धिसागरजी, ठा० ३ लुणावाड़ा।

मुनि जय सागरजी ठा० ४ गोपीपुरा सूरत।

गुण सागरजी ठ० २ हिंगवघाट।

चन्द्रोदय सागरजी ठा० अहमदाबाद।

कंचन विजयजी ठा० ४ गोधरा।

बुद्धि सागरजी ठा० ४ कपड़ वंज।

सुरेन्द्र सागरजी ठा० २ सूरत।

संयम सागरजी ठा० २ उज्जैन।

शांति सागरजी ठा० ४ गंगधार मालवा।

मेघसागरजी मृगांक सागरजी म्हेसाणा।

मनोज्ञ सागरजी ठा० ड मलाड बम्बई।

चम्पक सागरजी टा० २ माणसा।

रैवत सागरजी ठा० २ अहमदाबाद।

अमूल्य सागरजी ठा० २ अहमदाबाद।

दौलत सागरजी ठा० ४ बेजलपुर भरुच।

विज्ञानसागरजी ठा० २ शाजापुर।

बसत सागरजी ठा० २ सुणाव।

चन्द्र प्रभ सागरजी ठा० २ अहमदाबाद।

मनक सागरजी ठा० २ कपड़ वंज।

महा प्रभ सागरजी, प्रेम सागरजी (मालवा)

इन्द्रसागरजी ठा० २, इन्दौर।

नंदीघोष सागरजी, मित्रानंद सागरजी खंभात।

साध्वी वर्ग

(स्व. साध्वी श्री तिलक श्री का समुदाय) साध्वी तीर्थ श्री जी, रंजन श्री, दर्शन श्री सुरेन्द्र श्री जी आदि ठा० ४४ अहमदाबाद के भिन्न २ स्थानों में।

मंगला श्री जी ठा. ३ सूरत, मनोहर श्री ठा. १३ इन्दौर, मृगेन्द श्री जी ठा. ६ मोरवी- रेवत श्री जी २ जोटाणा, प्रमोद श्री जी ठा. ५ बेजलपुर, निरुपमा श्री जी ठा. ४ भावनगर, प्रवीण श्री जी ठा. ६ बोटाद, सुमन श्री ठा. ३ बेडा, राजेन्द श्री ठा. ४ जूनागढ़, फल्गु श्री ठा. ७ उन्हैल साध्वी इन्दु श्री ठा. लश्कर, कनक प्रभा श्री ठा. ६ पालीताणा, गुणोदय श्री ठा. ४ लींबडी, रोहीता श्री ठा. २ दहेगाम (साध्वीजी पुष्पा श्री का समुदाय) साध्वी श्री पुष्पा श्री ठा. ४ कपड वंज, सुमलया श्री ठा. ७ कपडवंज, प्रभजना श्री ठा. २ भावनगर, सूर्य कांता श्री ७ भुज कच्छ, मनक श्री ३ अहमदाबाद, हेमेन्द श्री ३ मलाड बम्बई, महेन्द्र श्री ४ भावनगर, पद्मलता श्री ३ सूरत, किरण श्री ५ लुणावाडा (साध्वी देव श्री का समुदाय) मंगल श्री २ पाटन, अंजना श्री ३ ऊझा, सुज्ञान श्री ३ मंदसौर, सद्गुण श्री २ पालीताणा, गुलाब श्री २ बडनगर, चेलणा श्री ३ बकोढा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आ० विजय नीति सूरीश्वरजी का मुनि समुदाय

आ० हर्ष सूरिजी, आ० महेन्द्रसूरिजी, पं० मंगल विजयजी आदि ६ लुवारनीपोल अहमदाबाद।

आ० उदयसूरिजी ३ चोटीला।

पं० भानु विजयजी, पं० सुबोध विजयजी ४ पालीताणा।

पं० मनहर विजयजी नवाडीसा।

पं० दानविजयजी, पं० संपत वि., ठा. ५ भट्टी की वारी, पं० शांति वि०, पं० मंगल वि०, पं० समुद्र वि. ५ डेलाना उपाश्रय, मुनि चन्द्र विजयजी खुशालभवन, मानतुंग विजयजी सरसपुर अहमदाबाद।

पं० कुशल वि० २ मांगरोल।

राम विजयजी २ करनूल।

सोमविजयजी, उम्मेद विजयजी रतन विजयजी ३ अजमेर।

सुशील विजयजी २ जामनगर।

सुन्दर विजयजी ३ कोयम्बटूर।

भरत विजयजी २ शिवगंज।

शुभ विजयजी २ लोदरा, देवेन्द्र वि० २ खेरडी आबू, न्याय वि० २ डभोडा, चन्द्र वि० २ नागौर, तीर्थ विजयजी २ नासौली, रवि वि० २ जरका, राजहंस वि० महुवा, बल्लभ वि० २ कांठ गांगड।

साध्वी वर्ग

गुण श्री, मनोहर श्री ५ कंचन श्री ७ जीना श्री ५ प्रभा श्री २ मणी श्री ३ सुनंदा श्री ५ कीर्ति श्री २ कुसुम श्री ४ आदि अहमदाबाद।

कंचन श्री ४ लावण्य श्री ११, वल्लभ श्री २ चन्द्र श्री २, निर्मला श्री ४, हीरण श्री मंजुला श्री, कंचन श्री अरुणा श्री आदि पालीताणा।

महिमा श्री ११ पाटण, सुनंदा श्री १० अंग्रेजी काठेर बनारस, वसंत श्री ७ धाराजी, तीलक श्री शिवगंज, चेतन श्री २ नासिक, चन्द्र प्रभा श्री ३ जोधपुर, माणेक श्री २ सूरत, पुष्पा श्री ३ सादडी, समता श्री ३ पाली, दानलता श्री ३ नाडलाई, सुलोचना श्री ३ उयना आदि।

पं० धर्म विजयजी डेलावाला का मुनि समुदाय

आ० राम सूरीश्वरजी ७ सादडी। पं० अशोक वि० ३ सूरत, पं. राजेन्द्र वि० ३ डभोई, भुवन विजयजी ३ नागपुर यशोभद्र विजयजी ३ अहमदाबाद, भद्रंकर विजयजी आदि पाटण।

साध्वीजी चम्पा श्री, लावण्य श्री आदि ठाणा १० अहमदाबाद।

रंजन श्री राधनपुर, चतुर श्री जावाल, हरख श्री खीमेल, सुशीला श्री बेडा, उत्तम श्री, कंचन श्री ललित श्री, रमणीक श्री, पुष्पा श्री, मंगल श्री अनोप श्री, महिमा श्री महेन्द्र श्री आदि गुजरात में चातुर्मासार्थ विराजती हैं।

आ. श्री विजय मोहन सूरीश्वरजी का मुनि समुदाय

आ० श्री विजय प्रताप सूरिजी ४ जैन साहित्य मंदिर पालीताणा।

आ० विजय धर्म सूरिजी, यशोविजयजी, शतावधानी मुनि जयानंद वि० आदि वैताल पैठ पूना।

आ० प्रीतिचन्द्र सूरिजी ३ सूरत।

माणेक वि० ३ बडनगर, सुबोध वि० ? मान कुवा (कच्छ), हरख वि० लोडाया, महेन्द्र वि० सूरत।

साध्वीजी श्री जसवंत श्री, हेमन्त श्री, शणगार श्री, उत्तम श्री, कचन श्री आदि ३६ पालीताणा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री सिद्धिसूरीश्वर जी दादा म० का मुनि समुदाय

आ० सिद्धि सूरिजी दादा, मुनि श्री जंबु विजयजी भद्रंकर विजयजी, आदि १४ जैन विद्याशाला दोसी वाड़ा नी पोल अहमदाबाद।

आ० मनोहर सूरिजी ६ अहमदाबाद।

आ० अमृत सूरिजी २ सावर कुंडला।

पं० चरणविजय गणि ४ साणंद।

मुनि सुबोध विजयजी २ अहमदाबाद।

इतिहास प्रेमी मुनि कल्याण वि०, सौभाग्य वि० २ लेटा (मारवाड़)।

उ० सुमति वि० रांदेर, मानतुंग वि० मढड़ा, नंदन वि० मेरुविजयजी ३ पालीताणा। साध्वी राजेन्द्र श्री ४ भावनगर, चन्द्रकला श्री ३, सुलोचना श्री ५ राजुली श्री आदि ६ पालीताणा।

आचार्य श्री विजयदान सूरीश्वरजी का मुनि समुदाय

आ० श्री विजय प्रेम सूरिजी ठा ०५४ सुरेन्द्रनगर।

,, ,, विजय रामचन्द सूरिजी ठा० १८ सादड़ी।

,, ,, विजय जंबू सूरिजी ठा० १० पं० भक्ति विजय जी ठा० ८ पालीताणा।

,, ,, यशोदेव सूरिजी ठा०७ येवला (नासिक)।

उ० धर्म विजय जी गणी ३ खिवान्दी, पं० पुष्प वि० ग० २ कलोल, केवल वि० १२ अहमदाबाद, पं० मान वि० ५ पीडंवाड़ा, कनक वि० ७ खंभात भद्रंकर वि० ६ जामनगर, चिदानंद वि० २ घांधुका मृगांक वि० ४ सूरत, जयंत वि० ४ लींवड़ी, सुदर्शन वि० ३ गांधीधाम, रोहित वि० ४ जामनगर, मुक्ति वि. ११ बीजापुर, कवि वि. २ बोटाद, मानतुंग वि. ८ पाटण, माणेक वि० ३ वेरावल, राज वि० २ अहमदाबाद, जय वि० २ आंकलव, अशोक वि० २ बांकानेर, रंग वि० २ नासिक, महाभद्र वि० ५ जुनागढ़, महाप्रभ वि० २ अमरेली, महानंद वि० २ भाणवड, गुणानंद वि० ४ वीसनगर, ललित वि० २ वीटा, नित्यानंद वि० २ चूड़ा, धन वि० राणपुर, यशोभद वि० २ जींजुवाड़ा, धनपाल वि० २ मालेगांव, हर्ष वि० २ नवाडीसा, आनदंघन वि २ मांडवी कच्छ, ललित वि० अहमदाबाद नरोत्तम वि० २ पालीताणा।

साध्वी हेम प्रभा श्री ३, रत्नप्रभा श्री ३ कल्याण श्री ४ दमयंती श्री ४ आदि पालीताणा, नित्यानंद श्री २ जामनगर, मलय कीर्ति श्री २ मेहसाणा, चन्द्रोदय श्री १६ कलकत्ता, चन्दप्रभा श्री ४ सूरत।

आचार्य श्री विजयलब्धि सूरीश्वरजी का मुनि समुदाय

आ० श्री विजय लब्धि सूरिजी उ० जयंत विजय जी आदि ठा. १२ दादर एंडरूज रोड बम्बई २८।

—आ० श्री विजयलक्ष्मण सूरिजी, शतावधानी मुनि कीर्तिविजय जी ७ कोट बोरा बाजार शांतिनाथ देरासर बम्बई १ आ० श्री विजय भुवन तिलक सूरिजी ६ नंदुर बार। पं० नवीन विजय जी आदि पूना, पं० प्रवीण वि० महिमा विजय जी आदि वडाली (सांबर-कांठा) पं० भर्दकर वि० ६ पालेज, हेमेन्द वि० वापी, जितेन्द वि० २ थाणा, अरुण प्रभवि, आमोदकी, गुण भद वि० वंथणी,।

साध्वी सूर्यप्रभा श्री २ पालीताणा, सर्योदय श्री ५ दादर बम्बई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आ० श्री विजय भक्ति सूरीश्वरजी म० का मुनि समुदाय

आ० श्री विजय प्रेमसूरिजी पं० सुबोध विजयजी गणी ७ मणीया नोपाड़ो, सागरजी उपाश्रय, पाटण

पं० प्रताप वि० ४ साबरमती, कनकवि० ६ मेमाणा, प्रभा वि० २ भचाऊ, विजय वि० ४ धागंधा महिमा वि० २ सोमा, उ० संपत वि० भावनगर, माणेक, वि० २ पालीताणा, सुमित्र वि० २ खंभात, भास्कर वि० तलाजा, सोहन वि० २ चाणस्मा, संजय वि० पाटन।

साध्वीजी श्री दर्शन श्री २ बरलूट, जयश्री ११ धागंधा, जिनेन्द्र श्री ४ कोठ चरण श्री २ जेतपुर, हेम श्री ४ पोरबन्दर, केसर श्री २ टाना, गम्भीर श्री २ उमराना, प्रसन्न श्री २ वीरमगांव, संयम श्री २ आमोद, सुमंगला श्री २ भावनगर, अमृत श्री २ मडार, अमृत श्री दर्शन श्री ८ मेघ श्री ५ गुणी श्री २ पाटण, अशोक श्री ४ हिम्मत श्री, राजेन्द्र श्री आदि पालीताणा, वीर श्री, रिद्धी श्री आदि अहमदाबाद।

आ० श्री विजय वल्लभसूरिश्वरजी का मुनि समुदाय

आ० श्री विजय उमंगसूरिजो आदि ठा. ४ आत्मवल्लभ ज्ञान मंदिर साबरमती अहमदाबाद।

आ० श्री विजय समुद्र सूरिजी तपस्वी श्री शिव विजयजी गणीवर्य श्री जनक विजयजी आदि ११ जैनधर्मशाला रोशन मोहल्ला आगरा।

आ० श्री विजय पूर्णानन्द सूरिजी ओमकार विजयजी ३ जैनश्वेर मन्दिर कोयम्बटूर।

पं० नेम विजय, पं० चन्दन वि० आदि जानो शेरी बड़ौदा, विकास वि० ३ अहमदाबाद आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्य विजयजी आदि ८ लुनसावाड़ा अहमदाबाद, इन्द्र वि० मायखला बम्बई, गीणी राज वि० जूनागढ़, दर्शन वि० बड़ौदा, प्रकाश वि० पट्टी (अमृतसर) जय वि० २ जयपुर सीटी, वल्लभदत्त वि० २ भुलेश्वर लाल बाग बम्बई ४, विशारद वि० बीजोवा, कुन्दन वि० २ मेता (बनासकांठा), नरेन्द्र वि० २ पट्टी, मुक्ति वि० २ जोधपुर, विबुध वि. २ देसूरी निरंजन वि० २ देसूरी, संतोष वि० २ डभोडा, जोत वि० टाणा।

साध्वी समुदाय

साध्वी श्री शीलवती श्री, मृगावती श्री ३ किनारी बाजार आत्मवल्लभ उपाश्रय दिल्ली। चारित्र श्री ७ लुधियाना, माणेक श्री ५ बालापुर, बसन्त श्री ११ बीकानेर, शांति श्री ११ कपड़वंज, कुसुम श्री ३ शेखनो पाडो, सुधर्मा श्री कीकाभटनी पोल अहमदाबाद, तिलक श्री बम्बई, प्रभा श्री ४ नवत्राण, हरि श्री ४ पाली, ओंकार श्री ४ बड़ोदा, माणेक श्री ४ सिरोही, जयश्री ७ पांढीव, चित्र श्री ८ पाटण सोम श्री २ पालनपुर विचक्षण श्री २ अहमदाबाद, प्रताप श्री ४ जोधपुर, विज्ञान श्री ८ डभोई, चन्द्रकला श्री २ वसो (गु०) महेन्द्र श्री २ रानी स्टेशन, सुभद्रा श्री २ शाजापुर, हेत श्री, प्रभा श्री, चरण श्री हेम श्री कपूर श्री आदि का २० पालीताणा।

आ० श्री विजय धर्मसूरीश्वरजीका मुनि समुदाय

आ० श्री विजयेन्द्रसूरिजी मर्जबानरोड, टोपहील वंगला अन्धेरी बम्बई ४। न्या० न्या० मुनि श्रीन्याय विजयजी मांडल, मुनि श्री विशाल विजयज २ भावनगर, श्री पूर्णानन्दजी विजयजी ३ दहेगाम।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भिन्न भिन्न आचार्यों के मुनि समुदाय

आ० श्री विजय भद्रसूरिजी ठा० ५ राजकोट।

आ० हिमाचल सूरि जी, कांकरोली।

उ० धर्म विजयजी त्रापज (गु०) मुनि रमाणीक वि० २ पेटलाद, सुन्दर वि० ३ जूनाडीसा, मनोहर वि० ४ पालीताणा, तीर्थ वि० २ बडौदा, वयोवृद्ध मुनि मणी विजयजी दादा बोस (गु०) कमल वि० गंभीरा, मुनि दर्शन वि, त्रिपुटी अहमदाबाद, वीर वि. सिलदर, लक्ष्मी वि० बाढ़मेर भव्यानंद विजयजी गढ़ सीवाना, कंचन विजयजी गोधरा, मनक विजयजो भडौच, मनमोहन वि० गरीयाधार भद्रानंद वि० वेजलपुर भरुच। भक्ति वि० ४ खंभात, खीमा वि० पालीताणा, लब्धि वि० बाढमेर, कंचन वि० नागर मोरिया, जयन्त वि० मालेगाम चन्द वि० बेराणु, हर्ष विजयजी बीकानेर, जय विजयजी मोधरा, लब्धि वि० कमल वि० बामनवाडजी, महेन्द्र वि० घोवा नित्यानन्द वि० सीहोर, जय वि० सिरोही, भुवन वि० सि०, विमल वि० शेडुभार (अमरेली) महायश वि० राजपुर (गु०) रत्नशेखर वि० नवाडीसा, समय वि० दामा, कनक वि० भरत गौतम वि० पालीताणा, देव सुन्दरजी भावनगर, प्रेम सुन्दरजी पालीताणा कनक वि० बनारस।

खरतर गच्छ का श्रमणसमुदाय

लेखक—इतिहास मनीषी श्री ऊगर चन्दजो नाहटा, बीकानेर

[यह लेख "सेवा समाज" बम्बई के श्रमण दर्शन विशेषांक में प्रकाशित हुआ है। एवं लेख में खरतर गच्छ के प्राचीन इतिहास पर तथा अर्वाचीन स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः हम उसे ही यहाँ उद्धृत करना विशेष उपयुक्त समझ कर साभार उद्धृत करते हैं। —लेखक]

वर्तमान में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के गच्छों में तपागच्छ, खरतरगच्छ, अंचल गच्छ, पायचन्दगच्छ और लौंकागच्छ ही उल्लेखनीय हैं। अन्य कई गच्छों के महात्मा लोग राजस्थान आदि के किसी गाँव में मिलते हैं। वे कुलगुरु या मंथन (मथरण) कहलाते हैं। ओसवाल, पोरवाल, श्रीमाल जातियों के कई गोत्रों के वे अपने को कुलगुरु मानते हैं और उन गोत्रों की वंशावलियाँ भी उनके पास कुछ २ मिलती हैं। पर गच्छों का कोई साधु समुदाय नहीं है। उपरोक्त पाँच गच्छों में से अन्चलगच्छ का समुदाय सीमित क्षेत्र में और थोड़े परिमाण में है। इसी तरह पायचन्द और लौंकागच्छ भी। पायचन्द गच्छ १६ वीं शताब्दी के नागपुरीय तपागच्छ के पार्श्वचन्द सूरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ और लौंकागच्छ १६ वीं शताब्दी के मूर्तिपूजाविरोधी, लौंका शाहके नाम से। वर्तमान गच्छों में सबसे अधिक प्रभाव तपागच्छ और खरतरगच्छ इन दो का ही रहा है। यद्यपि अब खरतरगच्छ का प्रभाव तपागच्छ से कम हो गया है, पर मध्यकालीन इतिहास में उसका बहुत प्रभाव दिखाई देता है। मुनि जिन विजयजी "खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह के" किंचित वक्तव्य में लिखते हैं; "श्वेताम्बर जैनसंघ जिस स्वरूप में आज विद्यमान

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है, उस स्वरूप के निर्माण में खरतरगच्छ के आचार्य, यति और श्रावक संघ का बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपागच्छको छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरव की बराबरी नहीं कर सकता। कई बातों में तपागच्छ से भी इस गच्छ का प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अक्षुण्य रखने वाली राजपूताने की वीरभूमिका पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास ओसवालजाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धिचातुर्य और वाणिज्य व्यवसाय कौशल आदि महत् गुणों से दीप्त है, और उन गुणों का जो विकास इस जाति में हुआ है, वह मुख्यतया खरतरगच्छ के प्रभावान्वित मुख पुरुषों के सदुपदेश तथा शुभाशीर्वाद का फल है। इसलिए खरतरगच्छ का उज्वल इतिहास केवल जैनसंघ के इतिहास का ही एक महत्वपूर्ण अध्याय नहीं है, बल्कि वह समय राजपूताने के इतिहास का एक विशिष्ट प्रकरण है।

खरतरगच्छ यह नामकरण इस गच्छ की परम्परा के अनुसार, संवत् १०७० के लगभग पाटण के महाराजा दुर्लभराजकी राजसभा में चैत्यवासियों के साथ आचार्य वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि के साथ होने वाले शास्त्रार्थ से सम्बधित है। चैत्यवासी इस शास्त्रार्थ में पराजित हुए और जिनेश्वर सूरिजी आदि सुविहित मुनियों के कठोर आचारपालन का सूचक खरतर संबोधन नृपति दुर्लभराज द्वारा किया गया। अतः वर्तमान श्वेताम्बर गच्छों में यह सबसे प्राचीन भी है। अन्चलगच्छ और तपागच्छ इसके बाद ही हुए। आचार्य जिनेश्वरसूरि और उनके गुरुभ्राता बुद्धिसागरसूरि बड़े विद्वान भी थे। उनके बनाये हुए कई ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें से 'प्रभालक्ष्य' नामक जैन न्यायग्रन्थ और पन्चग्रन्थी नामक व्याकरण ग्रन्थ अपने विषय और ढंग के पहले ग्रन्थ हैं। वैसे जिनेश्वरसूरिजी रचित 'अष्टकटीका' आदि भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य जिनचन्दसूरि और अभयदेवसूरि हुए। इनमें से जिनन्द सूरि रचित 'संवेगरंगशाला' महत्वपूर्ण हैं और अभयदेव सूरिजी तो नवाँगवृतिकार के रूप में प्रसिद्ध एवं सर्व मान्य ही हैं। अभयदेवसूरिजी के पट्टधर जिनवल्लभसूरिजी अपने समय के विशिष्ट विद्वानों में से हैं और अभयदेवसूरिजी के शिष्य वर्धमानसूरि के भी मनोरमा, आदिनाथ चरित्रादि उल्लेखनीय है। जिनवल्लभ सूरिजी के शिष्य जिनशेखर सूरि से रुद्रपल्लीय शाखा और वर्द्धमानसूरिजी से मधुकरा शाखा प्रसिद्ध हुई।

जिनवल्लभ सूरिजी के पट्टधर जिनदत्त सूरिजी बड़े ही प्रभावशाली हुए। जिन्होंने करीब सवा लाख जैन बनाये और बड़े दादाजी के नाम से हैं। सैंकडों स्थानों में उनके गुरुमन्दिर और चरण पादुकाएं स्थापित है। सैंकडों स्तोत्र, स्तवन इनके सम्बन्ध में भक्तजनों ने बनाये हैं। इनका जन्म सं० ११३२, दीक्षा ११४१, आचार्य पदोत्सव ११६९ और स्वर्गवास सम्वत् १२११ में अजमेर में हुआ। आषाढ शुक्ला ११ को इनकी जयन्ती भी अनेक स्थानों पर बनाई जाती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिनदत्तसूरि के शिष्य और पट्टधर जिनचन्द सूरिजी मणीधारी दादाजी के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इनके मस्तिक में मणि थी, इनका स्वर्गवास छोटी उम्र में ही दिल्ली में हो गया था। और महरोली में आज भी आपका स्मारक विद्यमान है। इनके पट्टधर जिनपतिसूरि बहुत बड़े विद्वान और दिग्गजवादी थे। अनेक शास्त्रार्थ इन्होंने राजसभाओं आदि में करके विजय प्राप्त की थी। पांचसौ सातसौ वर्षों से जो चैत्यवास ने श्वेतांबर सम्प्रदाय में अपना प्रभाव विस्तार किया था, वह जिनेश्वरसूरि से लेकर जिनपतिसूरि जी तक के आचार्यों के जबरदस्त प्रभाव से क्षीण प्रायः हो गया। अतः सुविहित मार्ग की परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित और चालू रखने में खरतरगच्छ की श्वेताम्बर जैन संघ को महान देन है।

जिनपतिसूरिजी और उनके पट्टधर जिनेश्वरसूरि जी का शिष्य समुदाय विद्वता में भी अग्रणी था। उनके रचित ग्रंथों की संख्या और विशिष्टता उल्लेखनीय है। कुछ अन्य पट्टधरों के बाद १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनेकुशलसूरिजी भी बड़े प्रभावशाली हुए जो छोटे दादाजी के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है व भक्तजनों की मनोकामना पूर्ण करने में कल्पतरू सदृश्य है। इनके भी मन्दिर, चरणपादुकाऐं और स्तुति-स्तोत्र प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं। चैत्यवन्दन कुलकवृत्ति इनकी महत्वपूर्ण रचना है।

इन्हीं के समय जिनप्रभुसूरि नामके एक और आचार्य बहुत बड़े विद्वान और प्रभावक हुए जिन्होंने सम्वत् १३८५ में मुहम्मद तुगलक को जैन धर्म का सन्देश दिया। उसकी सभा में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कन्नाणा की महावीर मूर्ति को इन्होंने मुहम्मद तुगलक से पुनः प्राप्त किया और सम्राट उन्हें बहुत ही आदर देता था।

जैन विद्वानों में सबसे अधिक स्तोत्रों के रचयिता आप ही थे। कहा जाता है कि आपने ७०० स्तोत्र बनाये। जिनमें अब तो करीब १०० ही मिलते हैं। विविध तीर्थकल्प, विधिप्रभा, श्रेणीकचरित्र द्वाश्रय-काव्य आदि आपकी प्रसिद्ध रचनायें हैं। पद्मावती देवी आपके प्रत्यक्ष थीं। इनकी परम्परा १७–१८ वी शताब्दी से लुप्त प्रायः हो गई। इनके गुरु जिन-संघसूरि से "लघुखरतर" शाखा प्रसिद्ध हुई। इसकी जीवनी के सम्बध में पं० लालचन्द गान्धी और हमारे लिखित जीवन-चरित्र देखने चाहिये।

खरतरगच्छ संबधी ऐतिहासिक साधन, बहुत प्रचुर, और विशिष्टि है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' नामक खरतरगच्छ की पट्टावली, भारतीय ग्रंथों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। ऐसा प्रमाणिक और व्यवस्थित प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, भारतीय साहित्य में शायद ही मिलेगा।

वर्धमान सूरि से लेकर कुशल सूरिजी के पट्ट-धर जिनपद्मसूरिजी तक का (सम्वत् १३९३ का) इतिहास में इस सम्वतानुक्रम से दिया गया है। इसका पहला अंश जिनपतिसूरिजी के शिष्य जिन-पालोपाध्याय ने संवत् १३०५ में पूरा किया और उसके बाद भी यह गुर्वावली क्रमशः लिखी जाती रही है। इसकी जो एकमात्र प्रति बीकानेर के क्षमा कल्याणजी के भंडार से मुझे मिली थी, उसीके आधार से मुनि जिनविजयजी द्वारा संपादित होकर सिंघी ग्रंथमाला द्वारा यह गुर्वावली प्रकाशित हो चुकी है। संभव है इसके बाद भी पट्टावलियां लिखी जाती रही हों।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हों। पर उसकी कोई प्रति अभी प्राप्त नहीं हो सकी। इसी गुर्वावली के साथ वृद्धाचार्य प्रबन्धावली नामक प्राकृतभाषा की एक और रचना प्रकाशित हुई है। जिसमें 'वर्द्धमानसूरि से जिनप्रभुसूरि' तक के प्रधान आचार्यों के चरित्र मिलते हैं। अन्य पट्टावलियां गुरुरास, गीत आदि भी प्रचूर ऐतिहासिक साधन प्राप्त हैं। हमारा ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं।

जिन कुशलसूरिजी के सौ वर्ष बाद जिनभद्रसूरिजी हुए जिनके स्थापित ज्ञान भंडार, जैसलमेर आदि में मिलते हैं। प्राचीन ग्रंथों की सुरक्षा और उनकी नई प्रतिलिपियाँ करवाकर कई स्थानों में ज्ञान भंडार स्थापित करने का आपने उल्लेखनीय कार्य किया है।

इनके सौ वर्ष बाद पू. जिनचन्द्रसूरि जी बडे प्रभावशाली आचार्य हुए जिन्होंने सम्राट अकबर को जैनधर्म का प्रतिबोध दिया और शाही फरमान प्राप्त किये। सम्राट जहांगीर ने जैन साधुओं के निष्कासन का जो आदेश जारी कर दिया था उसे भी आपने ही रद्द करवाया। आपके स्वयं के १५ शिष्य थे। उस समय के खरतरगच्छ के साधु साध्वियों की संख्या सहस्त्राधिक होगी। जिनमें से बहुतसे उच्चकोटि के विद्वान भी हुए। अष्टलक्षी जैसे अपूर्व ग्रन्थ के प्रणेता महोपाध्याय समयसुन्दर आपके ही प्रशिष्य थे। विशेष जानने के लिये हमारी युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि देखनी चाहिये। ये चौथे दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें हमने चारों दादा साहब के चरित्र प्रकाशित कर दिये हैं। इनमें जिनचन्द्रसूरिजी को सम्राट अकबरने 'युगप्रधान पद दिया था। सं० १६१३ में बीकानेर में इन्होंने क्रिया उध्दार किया था। यु. प्र. जिनचन्द्रसूरिजी के सौ वर्ष बाद जिनभक्तसूरिजी हुए उनके शिष्य प्रतिसागर के शिष्य अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणजी हुए। जिन्होंने साध्वाचार के नियमग्रहणकर शिथिलाचार को हटाने में एक नई क्रांति की। खरतरगच्छ में आज सबसे अधिक साधु-साध्वी का समुदाय इन्हींकी परम्परा का है। यह अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे। बीकानेर में सम्वत् १८५४ में इनका स्वर्गवास हुआ। आपके शिष्य धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी से सम्वत् १९०६ में सुखसागरजी ने दीक्षा ग्रहण की, इन्हीं के नाम से सुखसागर जी का संघाडा प्रसिद्ध है जिसमें आचार्य हरिसागरसूरिजी का स्वर्गवास थोड़े वर्षो पहले हुआ है और अभी आनन्दसागर सूरिजी विद्यामान हैं। उनके आज्ञानुवर्ती उपाध्याय कवीन्द्रसागरजी और प्रसिद्ध बाल-मुनि कान्तिसागरजी आदि १०-१२ साधु और लगभग २०० साध्वियां विद्यामान हैं।

अभी खरतरगच्छ में तीन साधु समुदाय हैं। जिनमें से सुखसागरजी के समुदायका ऊपर उल्लेख किया गया है। दूसरा समुदाय मोहनलालजी महाराज का है जिनका नाम गुजरात में बहुत ही प्रसिद्ध है। आप पहले यति थे पर क्रिया उद्धार करके साधु बने और तपागच्छ और खरतरगच्छ दोनों गच्छों में समान रूप से मान्य हुए। आपकी ही अद्भुत विशेषता थी कि आपके शिष्यों में दोनों गच्छ के साधु है और उनमें से कई साधु बहुत ही क्रियापात्र सरल प्रकृति के और विद्वान हैं। खरतरगच्छमें इनके पट्टधर जिनयशसूरजी हुए। फिर जिनऋद्धिसूरिजी और रत्नसूरिजी हुए इनमें जिनऋद्धिसूरिजी गुजरात

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि में बहुत प्रसिद्ध हैं। अभी आपके समुदाय में उपाध्याय लब्धि मुनिजी, बुद्धि मुनिजी गुलाब मुनिजी आदि १०-१२ बडे क्रियापात्र साधु हैं। कुछ साध्वियाँ भी हैं। उ० लब्धिमुनिजी ने करीब ३०-३५ हजार श्लोक परिमित पद्यबद्ध संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं और बुद्धिमुनिजी ने भी अनेक ग्रन्थों का विद्वतापूर्ण संपादन किया है। जिनरत्नसूरिजी के शिष्यों में भद्रमुनिजी ने आध्यात्मिक साधना में महत्व पूर्ण प्रगति की। आज वे सहजानंदजी के नाम से एक आत्मानुभवी और आध्यात्मिक-योगी, संत के रुप में प्रसिद्ध है। अपने ढंग के सारे जैन श्रमण समुदाय में एक ही आत्मानुभवी योगी हैं।

खरतरगच्छ में योग-अध्यात्म की परम्परा ही उल्लेखनीय रही है। योगिराज आनन्दधनजी मूलतः खरतरगच्छ के थे। इसके बाद श्रीमद् देवचन्दजी बड़े आध्यात्म-तत्ववेत्ता हो गये हैं। जिन्होंने भक्ति और अध्यात्म का अपूर्व मेल बैठाया है। तदन्तर चिदानन्दजी (कपूरचन्दजी) भी खरतरगच्छ के ही योगियों में उल्लेखनीय थे तथा इनसे कुछ पूर्ववर्ती मस्त योगी ज्ञानसागरजी बीकानेर के श्मशानों के पास वर्षों तक साधना करते रहे हैं। बीकानेर, जयपुर किशनगढ़ और उदयपुर के महाराजा आपके बड़े भक्त थे। ६८ वर्ष की दीर्घायु में बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। अनन्दघनजी की चौवीसी और कुछ पदों का मर्मस्पर्शी विवेचन आपने किया है। विशेष जानने के लिए हमारा 'ज्ञानसागर ग्रन्थावली' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। प्रथम चिदानन्दजी के बाद दूसरे चिदानन्दजी जो उपरोक्त सुखसागरजी के शिष्य थे, वे भी उल्लेखनीय जैन योगी थे। इनके रचित आध्यात्मानुभव व योगप्रकाश; स्यादवाद् अनुभव रत्नाकर शुद्धदेवअनुभव विचार, द्रव्यानुभवरत्नाकर आत्मभ्रमोछेदनभानु आदि कई विशिष्ट ग्रन्थ हैं। आपका स्वर्गवास सं० १९५६ में जावरे में हुआ। अध्यात्मानुभव योग प्रकाश ग्रन्थ से आपकी योग सम्बन्धी जानकारी और अनुभवों का विशद् परिचय मिलता है।

खरतरगच्छ का तीसरा साधु समुदाय, जिनकृपाचन्द्रसूरीजी का है। आप भी पहले यति थे। सं० १९४३ में आपने क्रियाउद्धार किया। सं० १९७२ में बम्बई में आचार्यपद मिला। सं० १९९५ में सिद्धक्षेत्र पालीताणा में स्वर्गवास हुआ। आप बहुत बड़े विद्वान्, क्रियापात्र तथा प्रभावशाली गीतार्थ आचार्य थे आपके शिष्यों में जयसागरसूरिजी भी अच्छे विद्वान और त्यागी साधु थे। विद्यमान साधुओं में उपाध्याय सुखसागरजी हैं आपके शिष्य कान्तिसागरजी भी अच्छे विद्वान और वक्ता हैं। जिन्होंने 'खंडहरों के वैभव' आदि ग्रन्थ और कई विद्वता पूर्ण लेख लिखे हैं। कृपाचन्द्रसूरि का समुदाय अभी करीब १० साधु और १०-१५ साध्वियाँ विद्यमान हैं। काशी के हीराचंद सूरि भी उल्लेखनीय हैं।

खरतरगच्छ में भी तपागच्छ की तरह १०-१२ शाखाएें हुईं। जिनमें से अभी चार शाखाओं के श्री पूज्य और यति विद्यमान हैं। श्रीपूज्य परम्परा में बीकानेर की भट्टारक शाखा के जिन विजयेन्द्रसूरिजी बड़े प्रभावशाली हैं। इसी तरह लखनऊ की जिनरंग सूरि शाखा के विजयेन्द्रसूरि और जयपुर की मंडोवरी शाखा के जिनधरणेन्द्रसूरिजी भी अच्छे विचारशील हैं। बीकानेर आचार्यशाखा के श्री पूज्य रामप्रभसूरि हैं। बालोत्तरे की भावहर्षीयशाखा और पाली की अद्यपक्षीयशाखा के अब श्रीपूज्य नहीं हैं, केवल यति ही हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

खरतरगच्छ के श्रमण समुदाय में साध्वियों का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। साधुओं की संख्या ३० के करीब हैं और साध्वियां करीब २२५ हैं। करीब ५० वर्ष पूर्व प्रवर्तिनी पुष्प श्रीजी नामक एक साध्वी हुई उनके और उनकी गुरुबहिन का ही यह सारा परम्परा का विस्तार है। सोहन श्री जी बड़ी उच्चकोटि की साधिका हुई। वर्तमान में भी प्रवर्तिनी वल्लभ श्री जी, प्रमोद श्रीजी, विदुषीरत्न विचक्षणश्रीजी आदि व उनकी शिष्याएं जैन शासन की शोभा बढा रही हैं।

वर्तमान जैनतीर्थों के निर्माण, संरक्षण, जर्णोद्धार और स्थापना में भी खरतरगच्छीय साधु व श्रीपूज्य यति सम्प्रदाय का बड़ा योग रहा है। जैसलमेर के सभी कलामय मन्दिर खरतरगच्छ के श्रावकों के बनाये हुए हैं। और उनके आचार्यों के प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह बीकानेर आदि में भी जहां २ खरतरगच्छ का अधिक प्रभाव रहा है, अनेक जिनालय साधु यति व श्रीपूज्यों के उपदेश से बनाये गये। कापरडाजी आदि कई तीर्थ इन्हीं के द्वारा प्रसिद्ध हुए। शत्रुंजय, गिरनार राणकपुर, सिरोही आदि अनेक स्थानों में खरतरगच्छ के नाम से मन्दिर हैं।

खरतरगच्छीय वर्तमान मुनि समुदाय

(संवत् २०१६ के चातुर्मास) वीर पुत्र आचार्य आनन्दसागरजी म० आदि प्रतापगढ़ (राज०)

उ० गुल सागरजी ठा० २ पालीताणा, उ० लब्धि मुनिजी ठा० ५ भुजकच्छ, उ० कविन्द सागरजी बम्बई ३, गणी बुद्धिमुनिजी ठा० ५ पालीताणा, मुनि चरित्र मुनिजी मोटा रातड़िया, सुमति मुनिजी भारजा, मनीसागरजी पारनेरा (गु०) मुनि कांतिसागरजी ठा० २ हैद्राबाद, हेमेन्द्रसागरजी गढ़ सीवाना उदयसागरजी चोहटन बाड़मेर, रामसागरजी, माणेक सागरजी, राजेन्द्र वि. निपुण वि. आदि पालीताणा।

साध्वी श्री विचक्षण श्री जी ठा० ३ सायराबन्दर, साध्वी श्री संपत श्री ठा० २ मनमोहन श्री, दीप श्री कुमुद श्री आदि ठा० ३८ पालीताणा।

तपागच्छीय आचार्य श्री कनक सूरीश्वरजी म० का मुनि समुदाय

आ० श्री कनक सूरिजी ठा० ७ भचाऊ कच्छ।

पं० मुक्ति वि० ठा० २ लाकड़िया, कंचन वि० पलारवा।

साध्वीजी श्री रतन श्री ठा. १६ भचाऊ, चन्द्रकला श्रीठा० ६ फतेहगढ़, भुवन श्री ८ भुज, उत्तमश्रीठा. १० मांडवी, दिवाकर श्री ३ वांकी, सुभद्रा श्री ठा० ६ रायण, निरंजना श्री ठा० ३ अंजड़, हेम श्री ४ बीदड़ा चन्द्ररेखा श्री ७ भावनगर, जितेन्द्र श्री ५ सूरत, विद्युत प्रभा श्री ठा० ४ आधोई (कच्छ)

तपागच्छीय आ० श्री विजय शांतिचन्द्रसूरिजी का मुनि समुदाय

आ० विजय शांतिचन्द्र सूरिजी पं० सोहन विजय जी आदि ठा० ६ बाव। पं० कंचन वि. ठा० २ भामेर भुवन वि० २ पालीताणा, सुज्ञान वि० २ बोरसद, रंजन वि० २ भरुच।

साध्वी श्री उत्तम श्री ४ बाव, सौभाग्य श्री ठा० ८ भामेर, स्वर्ण प्रभा श्री ४ पालीताणा, सोहन श्री ३ बढ़वाण, जीनमति श्री ठा० ४ पालनपुर।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूज्य मोहनलालजी म० का तपागच्छीय मुनि समुदाय

पं० हीरमुनि ठा० ५ ऊँझा, कीर्तिमुनि गोधावी, निणपुमुनि ४ सूरत, दयामुनि ४ राधनपुर, चिदानन्द मुनि मृगेन्द्र मुनि इन्दौर, चारित्र मुनि रातडीया, गजेन्द्र मुनि पादरली, पुष्प मुनि देपाल पुर, धुरन्धर मुनि भुज, नीति मुनि महुड़ा।

साध्वी कंकु श्री २ नाडोल, गुण श्री ठा. ५ देसूरी अन्य ६० साध्वी समुदाय भिन्न २ स्थानों पर।

पार्श्वचन्द्र गच्छीय

श्री कुशलचन्द्रगणी वर्य का मुनि समुदाय

मुनिराज वालचन्दजी ठा० ३ रायण कच्छ, वृद्धिचन्दजी २ अहमदाबाद, भक्तिचन्दजी २ खंभात, विद्याचन्दजी २ पालीताणा, प्रीतिचन्दजी २ देशालपुर साध्वी खांति श्री, प्रीति श्री आदि खंभात जंबु श्री, शणगार श्री, जीव श्री, चम्पक श्री आदि ५० साध्वी समुदाय भिन्न भिन्न स्थानों पर।

पं० दयाविमलजी म० (तपा०) का मुनि समुदाय

आ० रंग विमलसूरिजी ठा० ३ जुनाडीसा, पं० पुण्य विमलजी २ डुंगरपुर, शांति विमलजी ठा० ४ अहमदाबाद, रवि विमलजी २ भान्डप बम्बई, देव विमलजी महुडी, प्रेम वि० पाटन, सुरेन्द्र वि० भावनगर इन्द्र वि० नडीयाद तथा सिंह विमलजी कुचेरा।

साध्वी श्री लक्ष्मी श्री, ज्ञान श्री, गुण श्री मंगला श्री आदि ठा० ६० के करीब भिन्न २ स्थानों पर।

अंचल गच्छीय मुनि समुदाय

आ० दानसागर सूरिजी, आ० नेम सागरसूरिजी मुनि लब्धि सागरजी आदि ठा० ५ घाटकोपर।

आ० गुण सागर सूरिजी ठा० २ वींढ़ मुनिचंदन सागरजी २ नवावास, कीर्ति सा० २ जामनगर, विवेक सागरजी पालीताणा।

साध्वी केशर श्री, मनोहर श्री ठा० ८ माटुंगा बम्बई। जयंत श्री हेम श्री सौभाग्य श्री जी आदि ६५ साध्वी समुदाय भिन्न २ स्थानोंपर।

उ० रविचन्द्रजी म० का मुनि समुदाय

मुनि हीराचन्दजी रेलडिया (कच्छ) साध्वी जी जवेर श्री, दर्शन श्री मोहन श्री, तारा श्री, कांता श्री आदि ठा० १३ कच्छ में।

तपागच्छीय त्रिस्तुतिक मुनि समुदाय

आ० श्री विजय यतीन्द्रसूरिजी आदि रतलाम। मुनि न्याय वि० ठा० २ सियाणा, पूर्णानन्द वि० ठा. २ सीतामऊ, लावण्य वि० ठा० ४ पावा।

मुनि जयविजयजी मोधरा, मुनिलब्धि विजयजी कमलविजयजी बामनवाड़ जी।

यति समुदाय

श्री पूज्य आ० जिन विजयसेन सूरिजी, लखनऊ।

,, ,, विजयेन्द्रसूरिजी, जीयागंज।

,, ,, धरणेन्द्रसूरिजी, कलकत्ता।

,, ,, हीराचन्दसूरिजी, बनारस।

यति श्री हेमचन्द्रजी जामनगर, सुन्दर ऋषिजी खामगाँव, जयनिधानजी कोचीन, माणेक सागरजी, भींडर, यतीन्द्र विजयजी, जेरूचीजी, महीमा वि० लक्ष्मीसागरजी पालीताणा, सुरेशचन्दजी धुलिया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्थानकवासी सम्प्रदाय

(प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास)

स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रारम्भिक एवं प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में पृष्ठ १०६–१०८ में संक्षिप्त विवेचन दिया जा चुका है। अतः यहाँ उस प्राचीन परम्परा से वर्तमान स्थानकवासी मुनि समुदाय से सम्बन्ध जोड़ कर वर्तमान स्थानकवासी मुनिवरों के नाम आदि दे रहे हैं।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के निर्माता धर्मवीर लौंकाशाह माने जाते हैं पर सत्य वस्तु यह है कि लौंकाशाह ने तत्कालीन युग में एक धर्म क्रान्ति अवश्य की एवं मूर्ति पूजा का विरोध कर स्वयं किसी के पास दीक्षित न होकर मात्र एक सफल उपदेशक के रूप में वे रहे। उनके उपदेशों से प्रभावित हो ४५ व्यक्ति उनके परम भक्त बने और जिन्होंने बाद में अपने समूह का नाम 'लौंकागच्छ' रक्खा और यति अवस्था में शुद्धाचार पालने लगे।

लौंकाशाह के १०० वर्ष बाद तक यही यति रूप चलता रहा बल्कि वे गादी धारी यतियों के रूप में रहने लगे। लौंकागच्छ के दसवें पाट पर यति वज्रांग जी हुए। उनकी गादी सूरत में थी। उनमें काफी शिथिलता आगई थी अतः उनके समय में लौंकागच्छ की इस अवस्था का काफी विरोध हुआ और कई क्रियोद्धारक महान् व्यक्ति अवतीर्ण हुए।

सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध एवं सतरहवीं सदी में पाँच महा पुरुष विशेष प्रख्यात हुए जिन्होंने लौंकाशाह द्वारा प्रज्वलित धर्म क्रान्ति को पुनः क्रान्तिमय बनाया और उनके मत को एक नया मोड़ दिया। यदि उसी नये मोड़ को ही वर्तमान स्थानकवासी सम्प्रदाय का प्रारम्भकाल माना जाय तो अधिक युक्ति संगत रहेगा। ये पाँच महापुरुष थे:–(१) पूज्य श्री जीवराजजी महाराज (२) पूज्य श्री धर्म सिंहजीमहाराज, (३) पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज (४) पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज एवं (५) पूज्य श्री हरजी ऋषिजी महाराज।

पूज्य श्री जीवराजजी म०

आपका जन्म सूरत में श्रावण शुक्ला १४ सं० १५८१ को वीरजी भाई की धर्म परायणा भार्या श्री केसरबाई की कुक्षी से हुआ। सं० १६०१ में पूज्य श्री जगाजी यति के पास दीक्षा ली। कुछ समय के बाद ही तत्कालीन यति मार्ग के प्रति आपको तीव्र असंतोष होने लगा और आपने धर्म संरक्षकों की इस अवस्था में जबरदस्त क्रियोद्धार करने का दृढ़ संकल्प किया। गुरु का प्रबल विरोध होते हुए भी आपने सं० १६०८ में पाँच साधुओं के साथ लेकर पाँच महाव्रत युक्त आर्हती दीक्षा ग्रहण करली। आर्हती दीक्षा लेने के पश्चात् शास्त्रानुसार नये साधु भेष का निरूपण किया, श्वेताम्बर साधुओं के लिये चौदह उपकरणों में से केवल वस्त्र पात्र मुंहपत्ती, रजोहरण, रजस्त्राण एवं प्रमार्जिका को ही धारण किया अन्य सबका त्याग किया। आगमों के विषय में लौंकाशाह की ही बात स्वीकार की परन्तु आवश्यक सूत्र को भी प्रामाणिक मानकर ४१ के बदले ३२ आगम माने। यही मान्यता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आज तक भी मान्य है। इस प्रकार स्थानकवासी सम्प्रदाय के वर्तमान स्वरूप के मूल प्रणेता पूज्य श्री जीवराजजी म० को मान लिया जाय तो अनुपयुक्त न होगा।

पूज्य श्री धर्मसिंहजी

आपका जन्म सौराष्ट्र के जाम नगर में दशा श्री माली श्रावक जिन दास के घर शिवादेवी जी कुक्षी से हुआ। पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज भी प्रबल क्रांतिकर्त्ता एवं साहसी धर्म प्रचारक सिद्ध हुए हैं।

गुरु की परीक्षा में सफल होने के लिये अहमदाबाद की एक ऐसी मस्जिद में एक रात भर अकेले ध्यान मग्न रहे, जहाँ किसी प्रेत का निवास स्थान माना जाता था और जो कोई इस मस्जिद में रात भर रह जाता सवेरे उसका शव ही निकलता ऐसा माना जाता था। परन्तु धर्मवीर धर्मसिंह जी महाराज इस परीक्षा में सफल रहे। कहते हैं यक्ष आपका भक्त बन गया और भविष्य में किसी को न सताने की प्रतिज्ञा की। ऐसी किंवदन्ती है। यह घटना वि० सं० १६६२ की है।

कुछ भी हो आप गुजरात में महामान्य बने। आज आपके २४ वें पाट पर पूज्य श्री ईश्वरललजी महाराज हैं और आज तक इस सम्प्रदाय की एक ही श्रंखला अविच्छिन्न रूप से चली आरही है।

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज

आपके पिता का देहावसान इनके बाल्यकाल में ही होगया था अतः माता फूलाबाई के साथ नाना वीरजी वोरा के साथ खंभात में इनका लालन पालन हुआ। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि थे। सात वर्ष की आयु में ही सामायिक प्रतिक्रमण कंठस्थ थे। उस समय वज्रांग जो यति लौंकागच्छ की गादी पर थे। वीरजी वोरा उनके भक्त थे। लवजी ने इन्हीं के पास रह शास्त्राभ्यास किया और सं० १६६२ में इन्हीं के पास दीक्षा धारण की। इनको भी यति पन के शिथिलाचार से घृणा होगई और सं० १६६४ में यतिवर्ग से अलग होकर २ साथियों के साथ दीक्षा धारण की तथा यति पन के समस्त परिग्रहों का त्याग किया। यति वर्ग द्वारा रचित षणयंत्र से प्रभावित होकर वीरजी वोरा भी इनसे क्रुद्ध होगये और खंभात के नबाब को पत्र लिखकर इन्हें कैद करादिया पर कैदखाने में भी इनकी शुद्ध क्रियाएं एवं धर्माचरण देखकर जेलर ने बेगम सा० द्वारा नबाब से कहलाकर इन्हें जेल से मुक्त कराया और भी अनेक कष्ट चैत्यवासियों द्वारा तथा यति वर्ग द्वारा इन्हें झेलने पड़े।

लवजी ऋषिजी की परम्परा बड़ी विशाल है।

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज

आपका जन्म अहमदाबाद के पास 'सरखेज' ग्राम के संघपति जीवनलाल कालीदासजी भावसार की धर्मपत्नि हीराबाई की कुक्षि से चैत्र शुक्ला ११ सं० १७०१ में हुआ। लौंकागच्छ के यति तेजसिंहजी के पास धार्मिक ज्ञान लिया। एक समय 'एकलपात्रिया' पंथ के अगुआ श्री कल्याणजी भाई सरखेज आये। धर्मदासजी उनके शिष्य बनगये पर एक वर्ष में ही इस पंथ से इनकी श्रद्धा हटगई और सं० १७१६ में स्वतः शुद्ध दीक्षा ग्रहण की। धर्मसिंहजी म० के प्रति इनका अटूट स्नेह था। एक बार एक घर से इन्हें रोटी के बदले राख बहराई गई। इस पर धर्मसिंहजी ने कहा—जिस प्रकार बिना राख के कोई घर नहीं होता वैसे बिना तुम्हारे अनुयायी के कोई घर खाली

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

न रहेगा। ऐसा ही हुआ। सं० १७२१ में उज्जैन में आप आचार्य पद से विभूषित किये गये। मालवा में आपके काफी भक्त हैं।

आपके ६६ दीक्षित शिष्य हुए जिनमें ३५ तो संस्कृत प्राकृत के विद्वान हुए। इन ३५ मुनियों के अलग २ समुदाय बने। इतने अधिक समुदायों का संभालना कठिन था अतः सं० १७५२ चैत्र शुक्ला १३ को सभी को धारा नगरी में एकत्रकर २२ सम्प्रदायों में विभाजित कर दिया। यही बाद में 'बाईस टोला' कहलाया और स्थानकवासी सम्प्रदाय का पर्यायवाची शब्द भी बना। इन २२ सम्प्रदायों के नाम इस प्रकार हैं:-१ पूज्य श्री धर्मदासजी म० की सम्प्रदाय २ पू० श्री धन्नाजी ३ श्री लालचन्दजी ४ मन्नाजी ५ बड़े पृथ्वी चन्दजी ६ छोटेलालजी ७ बालचन्दजी ८ ताराचन्दजी ६ प्रेमचन्दजी १० खेतसिंहजी ११ पदार्थजी १२ लोकमलजी १३ भवानीदासजी १४ मलूकचन्दजी १५ पुरुषोत्तमजी १६ मुकुटरायजी १७ मनोहरदासजी १८ रामचन्दजी १६ गुरु सहायजी २० बाघजी २१ रामरतन जी तथा २२ पूज्य श्री मूलचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय। सभी नामों के साथ आदि में पूज्य श्री तथा अंत में महाराज शब्द समझें।

आपके स्वर्ग गमन की घटना भी बड़ी विचित्र हैं। कहते हैं आपके एक शिष्य मुनिने अपनी अन्तिम अवस्था जान कर संथारा कर लिया पर बाद में वे विचलित होगये। धर्मदासजी ने उसे अपने आने तक रुके रहने को कहलाया। आप उग्र विहार कर धारा नगरी पहुंचे पर शिष्य मुनि धीरज छोड़ चुके थे इस पर उनके स्थान पर स्वयं धर्मदासजी संथारा करके बैठ गये और कुछ ही दिनों बाद आप कृशकायी हो स्वर्ग सिधारे।

स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस का अभ्युदय

सन् १८६४ में दिगम्बर जैन कान्फ्रेंस बनी। सन् १६०२ में श्वेताम्बर जैन कान्फ्रेंस तथा सन् १६०६ में स्थानकवासी जैन कांफ्रेंस की स्थापना हुई। इस समय स्थानकवासी समाज में ३० सम्प्रदायें थीं। २६ सम्प्रदायों के प्रतिनिधि कान्फ्रेंस में सम्मिलित हुए थे। उस समय स्था० साधु साध्वी की संख्या १५६५ थी।

इस समय से स्थानकवासी सम्प्रदाय के जैन मुनिराजों का कान्फ्रेंस के साथ गहरा सम्बन्ध जुड़ा।

पाँच धर्मसुधारकों की परम्परा

उक्त ५ धर्म सुधारकों की परम्परा का विशेष इतिहास काफी विस्तृत है तथा उसका वर्णन पृष्ठ १०७ पर दिया गया है अतः जिनका प्रभुत्व समुदाय वा टोले के रूप में "श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ" के निर्माण तक रहा उन्हीं पर यहाँ विवेचन करना चाहेंगे।

सादड़ी में बृहत साधु सम्मेलन

सादड़ी (मारवाड़) में वि० सं० २००६ अक्षय तृतिया ता० २७-४-५२ को समस्त स्थानकवासी समुदायों का एक संगठन बनाने की दृष्टि से एक बृहत् साधु सम्मेलन हुआ।

इस सम्मेलन में निम्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए:—

(१) पूज्य श्री आत्मारामजी म० की सम्प्रदाय। मुनि ८८ आर्या ८१। प्रतिनिधि मुनि श्री प्रेम चन्दजी म०।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(२) पूज्य श्री गणेशीलालजी म० की सम्प्रदाय। मुनि ३४ आर्या ७१। पूज्य गणेशीलालजी म०, मुनि श्री मलजी आदि ५ प्रतिनिधि।

(३) पूज्य आनन्द ऋषिजी म० की संप्रदाय मुनि १६ आर्या ८५। प्रतिनिधि आनन्द ऋषिजी म० आदि ५ मुनि।

(४) पूज्य श्री खूबचन्दजी म० की संप्रदाय मुनि ६५ आर्या ३८। प्रति० श्री कस्तूरचन्दजी म० आदि ४ मुनि।

(५) पूज्य श्री धर्मदासजी म० की संप्रदाय मुनि २१ तथा आर्या ८६। प्र० श्री सौभाग्यमलजी म० आदि ५ मुनि।

(६) पूज्य श्री ज्ञानचन्दजी म० की सं० मुनि १३ आर्या १०५। प्र० मुनि पूर्णमलजी म० आदि ४ मुनि।

(७) पूज्य श्री हस्तीमलजी म० की सं० मुनि ६ आर्या ३३। प्र. पूज्य श्रीहस्तीमलजी म. आदि २ मुनि।

(८) पूज्य श्री शीतलदासजी म० की सं०। मुनि ५ आर्या ७। प्र० मुनि छोगलालजी म०।

(६) पूज्य श्री मोतीलालजी म० मुनि १४ आर्या ३०। प्र० मुनि अंबालालजी म०

(१०) पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी म०। मुनि १३। प्र० उपा० कवि अमरचन्दजी म०।

(११) पूज्य श्री जयमलजी म० की स० के स्थ० मुनि श्री हजारीमलजी म०। मुनि ६ आर्या २६। प्र:— मुनि श्री बृजलालजी म०, मुनि श्री मिश्रीलालजी।

(१२) पूज्य श्री जयमलजी म० की सं० के पं० मुनि श्री चौथमलजी म० के मुनि ६ आर्या ५१। प्र० पं. मुनि श्री चांदमलजी, लालचन्दजी आदि।

(१३) पूज्य श्री नानकरामजी म० की सं० के प्रवर्तक श्री पन्नालालजी म० के मुनि ६ आर्या ८। प्र० मुनि श्री सोहनलालजी म०।

(१४) पू० श्री अमरचन्दजी म० की सं०। मुनि ७ आर्या ६५। प्र० मुनि श्री ताराचन्दजी म० आदि।

(१५) पू० श्री रघुनाथजी म० की सं०। मुनि २ तथा आर्या २६। प्र० मिश्रीमलजी म० आदि।

(१६) पू० श्री चौथमलजी म० की सं० के प्रवर्तक श्री शार्दूलसिंहजी महाराज। मुनि ४ तथा आर्या ७। प्रति० मुनि श्री रूपचन्दजी।

(१७) पू० श्री स्वामीदासजी म० की सं०। मुनि ७ आर्या १६। प्र० मुनि श्री छगनलालजी म० तथा कन्हैयालालजी म०।

(१८) ज्ञातपुत्र महावीर संघीय मुनि ३ आर्या २। प्र० पं० श्री फूलचन्दजी म०।

(१६) पू० श्री रूपचन्दजी म० की सं०। मुनि ३ आर्या ४। प्र०-पं० श्री सुशीलकुमारजी।

(२०) पं० श्री घासीलालजी म० के मुनि ११। प्र. श्री समीरमलजी म०।

(२१) पू० श्री जीवराजजी म० की सं० के मुनि ३। प्र० कवि श्री अमरचन्दजी म०।

(२२) बरवाला सम्प्रदाय (सौराष्ट्र) के मुनि ३ आर्या १८ प्र० पं० मुनि श्री चम्पकलालजी म०

इस प्रकार सादड़ी सम्मेलन में कुल उपस्थित सम्प्रदाय २२ मुनि ३४१ आर्या ७६८। प्रतिनिधि संख्या ५४। अनुपस्थित २। कोटा सम्प्रदाय के दोनों समुदायों ने सम्मेलन में होने वाले निश्चयों पर अपनी स्वीकृति भेजी।

इस प्रकार इस बृहत साधु सम्मेलन से स्थानक वासी सम्प्रदाय के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ होता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस साधु सम्मेलन में समस्त स्थानकवासी मुनियों का एक ही आचार्य और मन्त्री मण्डल के नेतृत्व में एक सुदृढ़ संगठन बनाने का निश्चय किया गया। सभी के लिये एक समाचारी तथा अन्य कई उपयोगी निर्णय किये गये।

इस संगठन का नाम रहा—**श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ**। संघ के पदाधिकारियों का चुनाव इस प्रकार हुआ:—

आचार्य— जैनधर्म दिवाकर साहित्य रत्न पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज।

उपाचार्य— पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज।

उपाध्याय— पं० श्री आनन्द ऋषिजी महाराज (२) पं. श्रीप्यारचन्दजी महाराज (३) कविरत्न अमरचन्दजी महाराज (४) पं० श्री हस्तीमलजी महाराज।

प्रान्तीय मंत्री मंडल

१ मुनि श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज (अलवर, भरतपुर, यू० पी०)

२ मुनि श्री शुक्लचन्दजी महाराज (पंजाब पेप्सू)

३ मुनि श्री प्रेमचन्दजी महाराज [दिल्ली, बागड़, हरियाणा, जंगलदेश]

४ मुनि श्री सहस्त्रमलजी महाराज (आप स्वर्गवासी हो गये हैं)। [मध्यभारत, ग्वालियर कोटा]

५ मुनि श्री पूर्णमलजी महाराज [स्थलीप्रदेश]

६ मुनि श्री मिश्रीमलजी महाराज [मारवाड़ बिलाड़ा, जैतारण, सोजत देसूरी, पाली, सिवाना, जोधपुर, जालोर प्रान्त]

७ श्री हजारीमलजी महाराज [डेगाना, परबतसर, नागौर फलौदी, सांभर, शेरगढ़ साकड़ा मेड़ता पट्टी]

८ श्री पन्नालालजी महाराज [जयपुर, टोंक, माधोपुर तथा अजमेर राज्य]

९ श्री किशनलालजी महाराज [खानदेश, बरार, म० प्रदेश बम्बई]

१० श्री विनय ऋषिजी महाराज [महाराष्ट्र, मैसूर]

११ श्री फूलचन्दजी महाराज [बंगाल, बिहार, आसाम]

१२ मोतीलालजी महाराज [स्वर्गीय] तथा श्री पुष्कर मुनि जी म० [मेवाड़, पंच महाल]

प्रारम्भ में पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज प्रधान मंत्री थे। वर्तमान में श्री मदनलालजी महाराज मंत्री पद संभाल रहे हैं।

इस मन्त्री मंडल का प्रत्येक तीसरे वर्ष चुनाव होता रहता है। इस प्रकार स्थानकवासी समुदाय के सुन्दर संगठन का अन्य जैन सम्प्रदायों पर, समस्त जैन समाज तथा अन्य धर्म संगठनों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। श्वेताम्बर मूर्ति पूजक मुनि समुदाय में भी इसी प्रकार का संगठन बनाने के प्रयत्न चालू हैं।

इस संघ में अभी गुजरात प्रदेश के मुनि पूर्ण रूपेण सम्मिलित नहीं हुए हैं यद्यपि प्रयत्न चालू हैं।

जिन प्रदेशों के मुनि व सम्मिलित हुए हैं उनमें भी कई अभी तक संघ के सदस्य नहीं बने हैं।

वर्तमान स्थानकवासी मुनिवरों की नामावली यथा समय प्राप्य न होने से आगे के पृष्ठों में देंगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गुजरात के स्थानकवासी सम्प्रदाय

दरियापुरी सम्प्रदाय

यह पूज्य श्री धर्मसिंहजी म० की सम्प्रदाय है। आपके ६ वें पट्टधर श्री प्रागजी ऋषि बड़े प्रभाविक पू. हुए हैं। आपके बाद पूज्य स्वामी, हीराचन्दजी रघुनाथजी, हाथीजी म० और उत्तम चन्दजी म० पाट पर विराजे। वर्तमान में इन्हीं के शिष्य पूज्य श्री ईश्वरलालजी म० हैं। आपकी आयु इस समय ८८ वर्ष है। अहमदाबाद के शाहपुर उपाश्रय में स्थिरता वासी हैं।

लिंबड़ी मोटी सम्प्रदाय

पूज्य श्री धर्मदासजी म० के ६६ शिष्यों में से ३५ ने नई समुदायें बनाई जिनके बाद में २२ विभाग बने उनमें से पूज्य श्री अजरामरजी म० का विहार क्षेत्र गुजरात रहा। आपके बाद देवराजजी, भाणजी करमशी, अविचलजी, हरचन्दजी, देवजी, कानजी, नत्थुजी, दीपचन्दजी और लाधाजी स्वामी हुए। आप बड़े प्रख्यात संत एवं साहित्यकार हुए हैं। आपके बाद मेघराजजी और देवचन्दजी स्वामी पूज्य हुए। वर्तमान पूज्य कविवर नानचन्दजी म० आपही के शिष्य हैं। आप सौराष्ट्र वीर श्रमण संघ के मुख्य प्रवर्तक मुनि हैं।

पूज्य देवचन्दजी के बाद लवजी व गुलाबचन्द जी स्वामी हुए। शतावधानी पं० रत्नचन्दजी म० आपही के शिष्य थे।

मुनि छोटेलालजी सदानन्दी पूज्य लाधाजी के प्रधान शिष्य है। आप अच्छे लेखक हैं।

लिंबड़ी छोटी (संघवी) सम्प्रदाय

पूज्य श्री होमचन्दजी म० के समय से इसका प्रारंभ हुआ। वर्तमान में पू० श्रीकेशवलालजी म० हैं।

गोंडल सम्प्रदाय

पू० श्री डुंगरशी स्वामी गोंडल सम्प्रदाय के निर्माता हैं। धर्मदासजी म० के शिष्य प्रचाणजी म० के आप शिष्य थे। आपके शिष्य परम्परा में बड़े नेणसी के शिष्य पू० खोडाजी स्वामी प्रभाविक संत हुए। जैन कवि आखा के नाम से प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में पुरुषोत्तम जी म० पूज्य हैं। आप सौ० वी० श्रमण संघ के प्रवर्तक मुनि हैं।

सायला सम्प्रदाय

सं० १८७२ में पू० बालाजी के शिष्य नागजी स्वामी ने इस संप्रदाय की स्थापना की। तपस्वी मगनलालजी, कानजी मुनि आदि ४ संत विद्यमान हैं।

बोटाद सम्प्रदाय

पू० धर्मदासजी म० के ५ वें पाट पर पूज्य जसराजजी म० हुए आपने अन्तिम समय बोटाद में स्थिर वास किया इसीसे यह बोटाद संप्रदाय कहलाई। पू० श्री शिवलालजी म० वर्तमान में पू० हैं। आप भी सौराष्ट्र वीर श्रमण संघ के प्रवर्तक मुनि हैं।

कच्छ आठ कोटिपक्ष

वि० सं० १६०८ में जामनगर में एकल पात्रिया, श्रावकों का जोर था। मांडवी कच्छ में इनका व्यापार सम्बन्ध था अतः साधुओं का कच्छ में पदार्पण हुआ। ये एकल पात्रिया साधु श्रावकों को आठ कोटि के त्याग से सामायिक पोषध कराते थे इसी पर से यह नाम हुआ। बाद में जाकर इसके दो भेद हुए- आठकोटि मोटा पक्ष और आठकोटि नानापक्ष। मोटा पक्ष में पूज्य नागजी स्वामी के शिष्य पं. रत्नचंद जी म० कच्छी वर्तमान हैं।

नानी पक्ष में पूज्य व्रजपालजी स्वामी प्रसिद्ध हुए। वर्तमान में श्री लालजी स्वामी पूज्य हैं।

खंभात सम्प्रदाय

पूज्य श्री तिलोक ऋषिजी के शिष्य मंगलजी ऋषि के खंभात में अनेक शिष्य हुए इसी पर से यह नाम पड़ा इस सम्प्रदाय में श्री चम्पक मुनिजी आदि २ मुनि हैं। शेष सभी साध्वियां हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तेरा पंथी सम्प्रदाय

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रारंभिक इतिहास के सम्बध में संक्षिप्त विवेचन पिछले पृष्ठ १०८—१०६ पर दिया गया है।

इस संप्रदाय में अन्य जैन संप्रदायों की तरह कोई खास भेद प्रभेद या फिरके नहीं बने। सदा से एक ही आचार्य के नेतृत्व में साधु तथा श्रावक संघ का संचालन होता रहा है। इस संप्रदाय के मूल संस्थापक आचार्य श्री भीखणजी स्वामी हुए। आपके पश्चात् ८ पट्टधर हुए हैं। इन ६ आचार्यवरों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:—

प्रथम आचार्य श्री भीखणजी महाराज

श्री भीखणजी स्वामी तेरापन्थी संप्रदाय के मूल संस्थापक हैं।

आपका जन्म आषाढ़ सुदी १३ सं० १७८३ (जुलाई सन् १७२६) में मारवाड़ के कंटालिया ग्राम में ओसवाल वंशीय श्री बलूजी सखलेचा की धर्मपत्नी श्री दीपा बाई की कुक्षि से हुआ।

आपकी बाल्यकाल से ही धर्म श्रवण की ओर अधिक रूचि थी। श्वे० स्थानकवासी संप्रदाय की एक शाखा के आचार्य पूज्य श्री रुघनाथजी महाराज को आपने अपना गुरु बनाया। प्रारंभ से ही आपकी प्रवृत्ति वैराग्य मार्ग की ओर थी और वह निरन्तर तीव्र होती ही गई। यहां तक कि आपने गृहस्थाश्रम में ही सस्त्रीक व्रत लिया कि वे सर्वथा शील पालन करेंगे। इसके साथ ही साथ उन्होंने एकान्तर उपवास करना भी प्रारंभ कर दिया। इन्हीं दिनों आपकी धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। पुनर्विवाह के लिये घर वालों का अत्याग्रह होते हुए भी आपने संसार मार्ग की अपेक्षा संयम मार्ग को ही उत्तम माना। और सं० १८०८ में आपने पूज्य श्री रुगनाथजी म० के पास स्थानकवासी दीक्षा ग्रहण की। ८ वर्ष तक भीखणजी श्री रूगनाथजी म० के साथ रहे किन्तु दोनों में परस्पर मतभेद चलता ही रहता था। यह मतभेद दिनों दिन बढ़ता ही गया और अन्ततः स्वामी भीखणजी ने बगड़ी (मारवाड़) में रुगनाथजी म० का साथ छोड़ दिया। भारीमलजी आदि कुछ साधुओं ने आपका साथ दिया।

अलग होने के बाद शनैः शनैः भीखणजी के अनुयायी तेरह साधु हो लिये थे तथा श्रावक भी १३ की संख्या में ही बने थे एक समय जोधपुर के बाजार में एक खाली दुकान में ये सब सामायिक कर रहे थे। तेरह ही साधु और तेरह ही श्रावकों का यह अनोखा संयोग देखकर एक कवि ने एक दोहा जोड़ कर सुनाया और इन्हें तेरा पन्थी के नाम से संबोधित किया। भीखणजी को भी यह नामाकरण पसन्द आया और आपने 'तेरा पन्थी' शब्द का अर्थ बताते हुए कहा कि-जिस पन्थ में पांच महाव्रत, पाँच सुमति और तीन गुप्ती हैं वही तेरापन्थ अथवा जो पंथ, हे प्रभु तेरा है, वही तेरा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पन्थ है। बस तब ही से स्वामी भीखणजी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का नाम 'तेरापंथ' प्रसिद्ध हुआ।

इस घटना के बाद सं० १८१७ आषाढ़ सुदी १५ के दिन आपने भगवान को साक्षी मान कर पुनः नवीन दीक्षा ग्रहण की।

भीखणजी के धर्म प्रचार के क्षेत्र मारवाड़, मेवाड़ थली प्रदेश, ढूंढाड़ तथा कच्छ प्रदेश विशेष रहे। भीखणजी ने अपने जीवनकाल में ४६ साधु तथा ५६ साध्वियों को प्रवर्जित किया था। आपका देहावसान भादवा सुदी १३ सं० १८६० में हुआ।

२ रे आचार्य भारीमालजी स्वामी

आपका जन्म मेवाड़ के मूहो ग्राम में सं० १८०३ में हुआ। पिता का जन्म कृष्णा जी लोढ़ा तथा माता का नाम धारणी था। आपकी दीक्षा १० वर्ष की अवस्था में ही हो गई थी।

आपके शासनकाल में ३८ साधु और ४४ साध्वियां थी। आपका देहान्त ७५ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के राजनगर ग्राम में माघ सुदी ८ सं० १८७८ को हुआ।

३ रे आचार्य श्री रामचन्दजी स्वामी

आपका जन्म सं० १८५७ में हुआ। पिता का नाम चतुरजी बंब और माता का नाम कुसलीजी था। आप भी बचपन में ही दीक्षित हो गये थे। आपके समय ७७ साधु और १०८ साध्वियां थी। आपका ६२ वर्ष की अवस्था में सं० १९०८ को रावलियां ग्राम में देहान्त हुआ।

४ थे आचार्य श्री जीतमलजी स्वामी

आप बड़े प्रभावशाली एवं साहित्यकार आचार्य हुए हैं। आपका विशेष परिचय 'महा प्रभाविक जनाचार्य' विभाग में पृष्ठ ६७ पर दिया जा चुका है। आपके शासन में १०५ साधु और २२४ साध्वियां थी। आपका देहावसान ७८ वर्ष की अवस्था में भाद्र वदी १२ सं० १९३८ को जयपुर में हुआ।

५ वें आचार्य श्री मघराजजी स्वामी

आपका जन्म चैत सुदी ११ सं० १८९७ को बीदासर [बीकानेर] में हुआ। पिता का नाम पूरणमल जी बेगानी तथा माता का नाम वन्नाजी था। लाडनू में बाल्यकाल में ही दीक्षा हुई। आपका देहान्त ५३ वर्ष की अवस्था में चैत वदी ५ सं० १९४९ को सरदार शहर में हुआ। आपने ३६ साधु और ८३ साध्वियों को प्रवर्जित किया।

६ ठे आचार्य श्री माणिकलालजी स्वामी

आपका जन्म सं० १९१२ भादवा वदी ४ को जयपुर में हुआ। पिता का नाम हुक्मीचन्दजी थरड श्रीमाल तथा माता का नाम छोटांजी था। आपने १६ साधु और ३४ साध्वियों को प्रवजित किया। देहावसान ४२ वर्ष की अवस्था में सं० १९५४ कार्तिक वदी ३ को सुजानगढ़ में हुआ।

७ वें आचार्य श्री डालचन्दजी स्वामी

आपका जन्म असाढ़ सुदी ४ सं० १९०४ को उज्जैन में हुआ। पिता का नाम कानीरामजी पीपाड़ा तथा माता का नाम जड़ावजी था। देहावसान ५७

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वर्ष की अवस्था में सं० १६०१ भाद्र मास में लाडनूं में हुआ। ३६ साधु और साध्वियां प्रव्रजित की।

८ वेंआचार्य श्री कालूरामजी स्वामी

आपका जन्म फागुन शुक्ला २ सं० १६३१ को छापर में हुआ। पिता का नाम मूलचन्दजी कोठरी और माता का नाम छोगांजी था। आपकी दीक्षा माताजी के साथ ही बीदासर में हुई। सं० १६६६ में आचार्य बने। आप बड़े कठोर तपस्वी थे। आपके समय तेरा पन्थी सम्प्रदाय का अच्छा प्रचार हुआ। आप प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान थे तथा अपने शिष्य समुदाय को भी इन भाषाओं का अच्छा ज्ञान करने हेतु काफी लक्ष्य रक्खा।

आपका सं० १६६३ भाद्र पद शुक्ला ६ के दिन गंगापुर में स्वर्गवास हुआ।

वर्तमान आचार्य तुलसीरामजी महाराज

आप ही तेरापंथी सम्प्रदाय के वर्तमान कर्णधार आचार्य हैं। सम्प्रदाय की गौरव वृद्धि के साथ साथ सार्व जनिक क्षेत्र में आपने अच्छा सन्मान प्राप्त किया है।

आपका जन्म सं० १६७१ कार्तिक शुक्ला २ को लाडनूं में हुआ। पिता का नाम झूमरमलजी खटेड़ तथा माता का नाम वदनाजी था। सं० १६८२ में दीक्षा हुई। सं० १६६३ में बाईस वर्ष की अवस्था में आचार्य पद से विभूषित किये गये। आपही के स्वहस्त से आपकी माता, ज्येष्ठ भ्राता तथा एक बहिन को भी दीक्षित बनाया। इस प्रकार समस्त परिवार संयम मार्ग में प्रव्रजित है।

आप संस्कृत व्याकरण, काव्य कोष, न्याय आदि के प्रकांड पंडित हैं और प्रतिभाशाली कवि एवं लेखक भी हैं। आपने अपने गुरू की जीवनी पद्यबद्ध १०६ ढालों में "कालू यशोविलास" राजस्थानी भाषा में रची है।

आप संघ संचालन में बड़े प्रवीण एवं अपने धर्म प्रचार में सफल प्रचारक सिद्ध हुए हैं। संघ एक्य की दिशा में सदा सतर्क प्रहरी हैं। अपने मुनि सम्प्रदाय के सर्वांगीण विकास की ओर सतत् सचेष्ट हैं।

'अणुव्रत आन्दोलन' द्वारा संघ में नैतिक एवं उच्च जीवन स्तर निर्माण की दिशा में आपका यह प्रयत्न सब क्षेत्रों में प्रशंसनीय रहा। भारत के कई उच्च व्यक्तियों ने इस आन्दोलन की महत्ता को स्वीकार किया है। इस आन्दोलन के प्रबल प्रचार से आपने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। साहित्य प्रकाशन की ओर भी अच्छा लक्ष्य है। वर्तमान (सं० २०१६ के चातुर्मास) में आपकी आज्ञा में १६८ संत तथा ४७६ सतियां विद्यमान हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय का वर्तमान मुनि मंडल

(संवत् २०१६ के चातुर्मास)

आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज, अजमेर।
आचार्य श्री महावीर किर्तिजी म., उदयपुर।
क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी, इसरी
क्षुल्लक सहजानन्दजी आदि, झूमरी तलैया
,, सुमतिसागरजी सिद्धसागरजी आदि, पन्ना
,, आदिसागरजी, भीलोडी मऊ
,, सूरि सिंहजी, बसगडे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

,, चिदानन्दजी प्राणगिरी
,, मनोहरलालजी वर्णी कोडरमा
मुनि श्री धर्मकीर्तिजी, इन्दौर
,, यशकीर्तिजी, भींडर
,, वर्धमानसागरजी क्षु. सम्भवसागरजी आदि, बनारस
,, आदिसागरजी, छतरपुर
,, शांतिसागरजी क्षु. चन्द्रमतिजी, उज्जैन
,, सुपार्श्वसागरजी आदि, कन्नड़
,, जम्बुसागरजी क्षु. सुमतिसागरजी शु. अजीत सागरजी आदि, इटावा
पूज्य श्री पमाताजी शांतिमतिजी झालरापाटन
मुनि श्री नमिसागरजी तारदेव, बम्बई
क्षु. सिद्धोसागरजी, दिल्ली
,, गुणमतीजी, दिल्ली
,, पूर्णसागरजी, भोपाल
मुनि मल्लिसागरजी नांदगांव
क्षु. अर्ककिर्तीजी, बेलगाम
,, अतिबलजी, बेलगाम
,, भद्रबाहूजी, क्षु. पार्श्व कीर्तिजी, बेलगाम
मुनि समन्तभद्रजी, कुंथलगिरी
क्षु. अनंतमतीजी माता, शोलापुर
मुनि देशभूषणजी, कोल्हापुर
मुनि जयसागरजी नेमिसागरजी, भींडर
क्षु. चन्द्रसागरजी, नासरदा
,, सिद्धिसागरजी, केकड़ी
मुनि आदिसागरजी, वारासिवनी
क्षु. चन्दसागरजी, वारासिवनी
,, श्रद्धानंदजी म०, इसरी। ब्रह्मचारी-सोहनलालजी, जीवारामजी बुद्धसेनजी, नाथूरामजी, सरदारमलजी आदि इसरी (हजारीबाग)
ब्र. लाभानंदजी, रखियाल
,, हेमराजजी, बिजोलिया
,, मूलशंकरजी, नागपुर
,, राजारामजी, भोपाल
,,छगनलालजी, नासरदा
,, ऋषभचंदजी, सहजपुर

(दिगम्बर सम्प्रदाय का प्राचीन इतिहास एवं वर्तमान मुनि परम्परा के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक सामग्री अभी यथेष्ट रूप में प्राप्य नहीं हो पाई हैं अतः उसे परिशिष्ट भाग में या आगे के पृष्ठों में दे रहे हैं। —लेखक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य

स्व. श्री मद् विजयानंद सूरिश्वरजी म,

(आत्मारामजी महाराज)

जीवन चरित्र पृष्ठ ८० पर पढें

पंजाबी केशरी-युगवीर

स्व० जैनाचार्य श्रीमद् विजयवल्लभ सूरिश्वरजी

(जीवन चरित्र पृष्ठ ८६ पर पढें)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat

www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्रीमद् विजय समुद्र सूरीश्वरजी म० शिष्य सहृदाय सहित

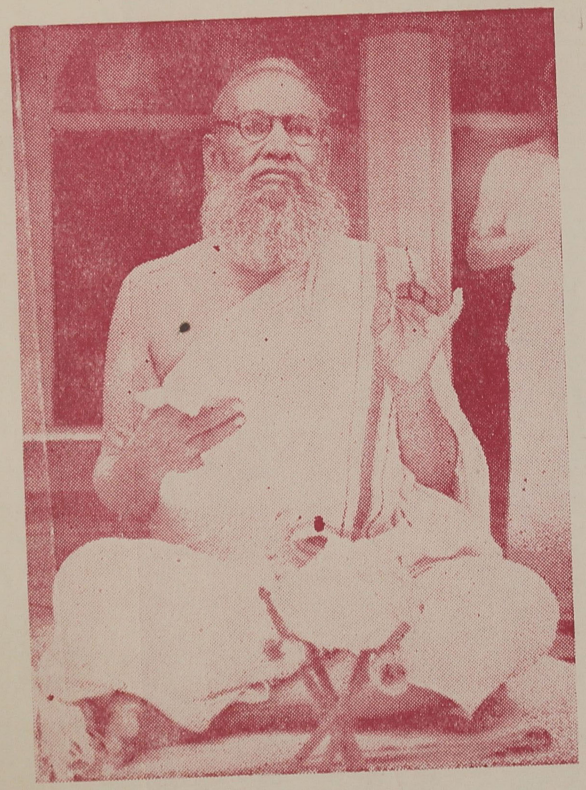

जैनाचार्य
श्री मद् विजयसमुद्र सूरीश्वरजी म०
(परिचय पृष्ठ १४२ पर)

प्रथम पंक्ति (खड़े हुए) मुनि जितेन्द्र विजयजी, ज्ञान विजयजी, सुमन विजयजी और विनीत विजयजी। दूसरी पंक्ति (बीचमें) गणिवर श्री जनक विजय जी, आचार्य श्री समुद्रसूरिजी तथा मुनि श्री शिव विजयजी। तीसरी पंक्ति (बैठे हुए) मुनि श्री शांति विजयजी बलवंत विजयजी, सुरेन्द्र विजयजी तथा न्याय विजयजी।

www.jainelibrary.org

जैन श्रमण सौरभ

(परिचय-विभाग)

पंजाब केसरी—युगवीर आचार्य
श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज
का मुनि समुदाय

पट्ट परम्परा

श्री बुद्धि विजयजी गणी

।

आ० श्री विजयानन्दसूरिजी (७३ वाँ पाठ)

(आत्मारामजी म०)

।

श्री विजयवल्लभसूरिजी (७४ वाँ पाट)

आचार्य श्री की शिष्य परम्परा

पंजाब केसरी युगवीर आचार्य श्री मद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म० न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी के शिष्य श्री लक्ष्मी विजयजी के शिष्य श्री हर्ष विजयजी के शिष्य थे। आचार्य श्री का जीवन चरित्र 'महाप्रभाविक जैनाचार्य' विभाग में पृष्ठ ८६ पर दिया गया है।

आप श्री द्वारा १८ शिष्य प्रवर्जित हुए:—१ श्री विवेक विजयजी, २ आचार्य श्री ललित सूरिजी ३ उपाध्याय सोहन विजयजी, ४ विमल विजयजी ५ विज्ञान विजयजी ६ आ० विद्या सूरिजी ७ विचार विजयजी ८ विचक्षण वि० ६ शिव विजयजी १० विशुद्ध वि० ११ पं० विकास विजयजी १२ दान वि० १३ विक्रम वि० १४ विशारद वि० १५ विश्व वि० १६ बलवन्त वि० १७ जय वि० तथा १८ विनीत विजयजी।

[१] प्रथम शिष्य श्री विवेक विजयजी के शिष्य आचार्य श्री उमंगसूरिजी विद्यमान हैं। आपके ८ शिष्य हुए जिनमें पन्यासजी श्री उदय विजयजी गणी' वीर विजय, धीर वि० चरण कान्त वि० तथा सुभद्र वि० विद्यमान हैं।

पं० श्री उदय विजयजी के ६ शिष्यों में से ३ शिष्य विद्यमान हैं।

[२] आचार्य श्री ललित सूरिजी (परिचय पृष्ठ ६० पर) के शिष्य आचार्य श्री पूर्णानन्द सूरिजी विद्यमान हैं। आपके प्रकाश विजय' हेम विजय तथा ओंकार विजय नामक ३ शिष्य वर्तमान हैं।

(३) उपाध्याय श्री सोहन विजयजी के ४ शिष्य हुए—मित्रविजयजी, आचार्य श्री समुद्र सूरिजी, सागर वि० (स्वर्गस्थ) तथा रवि विजयजी। आचार्य श्री मद् विजयसमुद्रसूरिजी के ८ शिष्यों में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से ६ विद्यमान हैं:—१ शीलविजय (स्व०) २ वल्लभ-दत्त वि०, सुरेन्द्र ३ वि० ४ न्याय वि०, ५ नीति वि० (स्व०) ६ समता वि० ७ शांति वि० ८ सुमन वि०

(४) विमलविजयजी के विबुध विजयजी।

(५) आ० विद्यासूरिजी के उपेन्द्र वि० (स्व०) प्रीति विजय एवं रत्न वि०।

(६) विचार विजयजी के वसंत विजय।

(७) विकास विजयजी के ६ शिष्य-रूप वि. विनय वि. (स्व.) गणि इन्द्र वि., चन्द्रोदय वि. ६ वि०, तथा कैलाश वि०।

(८) विशारद विजयजी के-हिम्मत वि० तथा शुभंकर वि०।

अन्य आज्ञानुवर्ती मुनिराज

१ प्रवर्तक (स्व०) कान्ति विजयजी के शिष्य चतुर विजयजी के शिष्य आगम दिवाकर पं० पुण्य विजयजी म० तथा आचार्य मेघसूरिजी. लाभ विजयजी आदि तथा पुण्य विजयजीके शिष्य पं० दर्शन वि. जयभद्र वि. चन्द्र वि चरण वि० आदि।

२ हंस विजयजी के ३ शिष्यों के ६ प्रशिष्य जिनमे दो रमणिक वि० तथा हेमेन्द्र वि. विद्यमान हैं।

इसके अतिरिक्त उद्योत विजयजी, जयविजयजी, अमर विजयजी, खांति वि०, प्रिय वि० ८ हिम्मत विजयजी ६ नेमविजयजी आदि स्वर्गस्थ मुनिराजों की शिष्य परम्पराएँ भी आपही की आज्ञानुवर्ती रही और आज इन्हीं के समुदाय के साथ है।

साध्वी समुदाय

आज्ञानुवर्ती साध्वियों में प्रवर्तिनी साध्वी देव श्री जी, जय श्री जी, प्र० दान श्री जी, प्र० माणेक श्री जी, प्र० हेम श्री जी, प्र० कपूर श्री जी, चित्त श्री जी, शीलवती श्री जी, तथा विदुषी मृगावती श्री जी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में आप की आज्ञानुवर्ती साध्वियों की संख्या १८० के लग भग है।

स्व. श्री विवेक विजयजी महाराज

युगवीर आचार्य श्री के प्रथम शिष्य तपस्वी मुनि श्री विवेक विजयजी महाराज का जन्म बलाद (अहमदाबाद) में हुआ। पिता का नाम डुंगरशीभाई तथा माता का नाम सौभाग्य लक्ष्मी था। संसारी नाम डाह्या भाई था। स० १९४८ में आ० विजयानन्द सूरिजी के शुभ हस्त से पट्टी (पंजाब) में दीक्षित हुए। तथा आ० विजय वल्लभ सूरि के प्रथम शिष्य कहलाये। आप बड़े सरल स्वभावी, शान्त मूर्ति एवं महान् तपस्वी थे। आयम्बिल उपवास की तपस्या प्रायः चलती ही रहती थी। स्वाध्याय में निरत रत रहते हुए जीवदया, शिक्षा प्रचार आदि के कई कार्य किये। बड़े गुरु भक्त थे। सं० २००० माह सुदी १२ को रात्री को ११। बजे बलाद में स्वर्ग सिधारे।

CC-0. Shri Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat. www.umaragyanbhandar.com

स्व० उपाध्याय श्री सोहन विजयजी

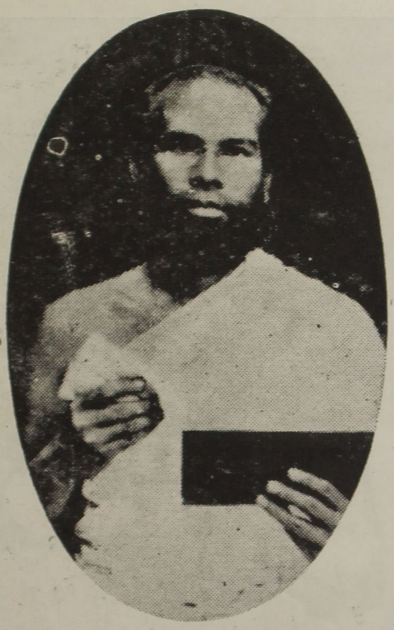

आप श्री जी का जन्म जम्मू (कश्मीर) के ओसवाल कुल में हुआ। आपका बचपन का नाम वसन्त राय था। वि० संवत १९६० में समाना में आपने स्थानक वासी मुनि श्री गैंडे राय जी के पास दीक्षा ली।

तीर्थ श्री शत्रुंजय जी की यात्रा पश्चात वि० सं० १९६३ में दसाडा (गुजरात) में तपस्वी मुनि श्री शुभ विजय जी के द्वारा आपकी संवेगी दीक्षा हुई। आप पू० गुरु देव श्री विजय वल्लभ सूरि के शिष्य कहलाए।

आप की गुरु भक्ति आद्वितीय और असीम थी। आप देश भक्त और पारस्परिक प्रेम के समर्थक थे। कई नगरों की नगरपालिका कमेटियों ने आप को अभिनन्दन पत्र दिये थे। मुसलमान और सिख संस्थाओं की ओर से भी आप को मान पत्र दिए गए। लाखों हिन्दु व मुसलमानों को आपने मांसाहार का त्याग कराया। कसाइयों ने अपने कसाई खाने तक छोड़ दिए। इन्हीं गुणों के कारण आपको "सौरिकजन (कसाई) प्रतिबोधक" कहा जाता है।

सामाजिक उत्थान और संगठन के लिए आप के सतत् प्रयत्नों का परिणाम "श्री आत्मानन्द जैन महा सभा (पंजाब)" के रूप में हमारे सामने है। आप ही इस महान संस्था के जन्म दाता थे। आपके प्रयत्नों से पंजाब के जैनों में स्वदेशी का प्रचार, दहेज कुप्रथा का विनाश और ओसवालों व खण्डेलवालों में विवाह रिश्ता नाता प्रारंभ हुआ। आप बोलते थे तो ऐसा लगता था कि पंजाब जैन समाज की आत्मा बोल रही है। आप भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के पूरे समर्थक थे। अंग्रेजों के दमन चक्र को देख कर आप ब्रिटिश सरकार को कोसने से भी न डरते थे। आप की सेवाओं और समाज जागरण के अथक प्रयत्नों से प्रभावित हो कर सं० १९८१ में जैन लाहौर में संघ ने आप श्री को उपाध्याय पदवी विभूषित किया।

लगातार परिश्रमों और दिन रात कार्य में जुटे रहने के कारण आप का स्वास्थ्य बिगड गया। आप सूख कर कांटा हो गए किन्तु जन समाज के उत्थान में हर समय प्रयत्न शील रहे। थकावट आप से कोसों दूर भागती थी। सूखे शरीर से भी आप समाज सुधार योजनाओं को कार्य रूप देते रहे। परन्तु कब तक। अनन्तः गुजराँवाला में दुष्ट काल का बुलावा आ गया और एक दिन (सं० १९८२) में वह इस वीर पुत्र को सदा के हमारे से छीन कर ले गया। उन का जीवन युग युगान्तर तक हमारा पथ प्रदर्शन करता रहे—यही प्रार्थना है।

लेखक—महेन्द्र मस्त'

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजय उमंगसूरिजी

आप श्री का जन्म सं० १९४६ में रामनगर (पंजाब) में हुआ। पिता का नाम गंगारामजी तथा माता का नाम कर्मदेवी था। दीक्षा सं० १९६४ कार्तिक वदी ३ तलाजा सौराष्ट्र में हुई। सं० १९७६ कार्तिक वदी ५ को पाली में पन्यास पद। सं० १९९२ वैशाख सुदी ४ को बलाद में उपाध्याय पद तथा वैशाख सुदी ६ सं० १९९२ को बडौदा में आचार्य पद प्रदान किया गया तथा बडौदा आदि नाथ स्वामी के मन्दिरजी के प्रतिष्ठा महोत्सव के शुभ अवसर पर सं० २००८ फाल्गुन शुक्ला १० गुरुवार को श्री संघ समक्ष आ० श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजी ने अपने व्यापक पट्टधर तरीके घोषित किया।

आप श्री की अध्यक्षता में अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठा महोत्सव, उपाधान, उद्यापन, शान्ति स्नात्र आदि अनेक धार्मिक उत्सव सम्पन्न हुए हैं।

साथ ही जैनधर्म प्रचार, साहित्य सृजन, जैनेतरों को प्रबोध आदि प्रवृत्तियों की ओर सदा से आप श्री का विशेष लक्ष्य रहा है।

आप श्री के प्रधान शिष्य पन्यासजी श्री उदय विजयगणी भी बड़े प्रभावशाली मुनि हैं।

आचार्य श्री विजय समुद्र सूरिजी

(लेखकः—महेन्द्र कुमार 'मस्त' समाना पंजाब)

युगवीर आचार्य भगवान पंजाब केसरी श्री मद् विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज के पट्टधर शान्त मूर्ति, परमगुरु भक्त श्री मद् विजय समुद्र सूरिजी के नाम से कौन अपरिचित होगा। पंजाब, मरुधर, गुजरात तथा सौराष्ट्र में आपके द्वारा किये गए कार्य, जन कल्याण तथा समाज सुधार के सफल प्रयास एवं शासन सेवाएँ सब विदित हैं।

आचार्य श्री जी का जन्म पाली मारवाड़ में सं० १९४८ मगसर सुदि ११ (मौन एकादशी) के दिन ओसवालवंशीय बागरेचा मूथा गोत्रीय श्रीशोभाचंदजी के घर सुश्री धारणीदेवी की कुक्षी से हुआ। आपका गृहस्थ नाम सुखराज था। बालक सुखराज

www.umaragyanbhandar.com

अपने जीवन की मंजिलें पार करते हुए युवावस्था को प्राप्त हुए। परन्तु आपका यौवन वैराग्य रस-पूर्ण तथा भक्ति रस पूर्ण था। फल स्वरूप वि० १९६७ फाल्गुण कृष्णा ६ को आप भी अपने बड़े भाई पुखराज के पद चिन्हों पर चलते हुए गुरुदेव श्री विजय बल्लभ सूरीश्वरजी के करकमलों द्वारा सूरत में दीक्षित होकर क्रान्तिकारी उपाध्याय श्री सोहन विजयजी के शिष्य कहलाए। अब पुखराजजी तथा सुखराजजी क्रमशः सागर विजयजी तथा समुद्र विजय जी हो गए। आपकी बहन ने भी दीक्षा लेली तथा उनका नाम हस्तिश्री जी हुआ।

जीवन के नवीन अध्याय में प्रवेश करके आचार्य श्री जी गुरु भक्ति तथा समाज सेवा में जुट गए। अनेक पुस्तकों का आपने संपादन किया तथा अंजन-शलाका व प्रतिष्ठा आदि कार्य सम्पन्न कराए। गुरुदेव श्री विजय वल्लभसूरिजी महा० के पास रह कर लग भग ४० वर्ष तक उनके निजि सचिव का कार्य करते रहे। आपकी लगन, योग्यता एवं गुरु भक्ति व अनुभव पर ही गुरुदेव ने आपको विशेष करके पंजाब के लिए नियुक्त किया। संवत १९९३ में कार्तिक शुदि १३ को अहमदाबाद में आपको गणिपद तथा इसी वर्ष मगसर वदि ५ को पन्यास पद से विभूषित किया गया। बडौदा में वि० सं० २००८ फाल्गुण सुदि १० को उपाध्याय पद से और थाणा (बम्बई) में माघ सुदि ५ सं० २००९ को आचार्य पद से विभूषित किये गये। उसी समय थाणा में गुरु देव श्री जी ने आपको पंजाब का भार संभलाया और पंजाब में जाने को विशेष तौर पर कहा।

आचार्य श्री विजय समुद्रसूरिजी जन साधारण में अत्यंत लोकप्रिय हैं। साधु, मुनिराज तथा दूसरे आचार्य गण भी आपसे परम स्नेह रखते हैं। आचार्य श्री विजय ललितसूरिजी श्री मद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी के मुख्य पट्टधर थे। मारवाड तथा दूसरे प्रान्तों में उनकी सेवाएँ तथा महान कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे। जिस समय हमारे चरित्र नायक अपने गुरुदेव श्री की भक्ति तथा समाज सेवी कार्यों में लगे हुए थे तो तो स्व० आचार्य श्री विजय ललित सूरि जीने अपने एक निजि पत्र में श्री विजय समुद्रसूरिजी (उस समय पन्यास जी) के प्रति जो वात्सल्य, सद्भावना, स्नेह तथा कृपा प्रकट की थी वह यहाँ उधृत की जाती है:—

"स्नेही पन्यासजी। तुम भी मनुष्य हो, मैं भी मनुष्य हूँ। तुम से वृद्ध हूँ। मगर भावना होती है कि यदि मैं राज गुरु होऊँ तो तुम्हारे शरीर प्रमाण सोने की तुम्हारी मूर्ति बनवाकर नित्य तुमको नमन करूं तुमको वन्दन करूं। तुम्हारी भक्ति, तुम्हारी विशुद्ध लेश्या, तुम्हारा सरल स्वभाव यह सब तुम्हारा तुम्हारे में ही है। गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें तथा भव २ तुमको गुरु भक्ति फलवती हो।"

वर्तमान में श्री गुरुदेव श्री विजय समुद्रसूरिजी बम्बई से चलकर सौराष्ट्र गुजरात एवं मरूधर प्रान्त में अपनी जन्म भूमि पाली से आगरा पधारे। आप ही के उपदेश तथा प्रेरणा से फालना जैन इण्टर कालेज में डिग्री कलासेज शुरू हुई। भगवान आपको चिरायु करें तथा हजारों बहारें आपका अभिनन्दन करती रहें।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री शिव विजयजी पंजाबी

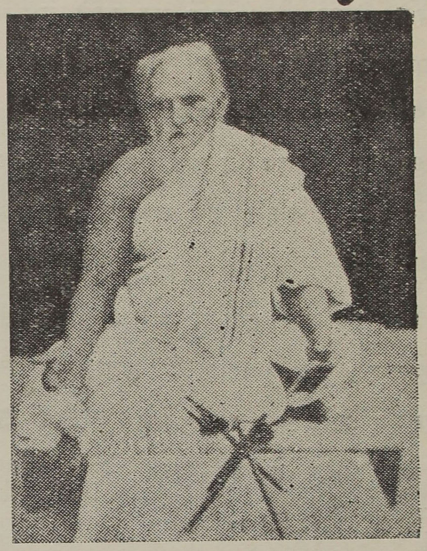

आप पूज्य आचार्य श्री मद् विजय वल्लभ सूरिजी के शिष्य हैं। आपका जन्म सं० १९३६ वैशाख सुदी १० को गुजरांवाला में हुआ। पिता का नाम लाला चुन्नीलालजी दूगड़ तथा माता का नाम अकिबाई है। संसारी नाम मोतीलाल दूगड़ था। सं० १९८२ फा० शु० ३ को बडौदा में आचार्य श्री के पास दीक्षित हुए।

आप बड़े अच्छे कवि हैं। आपने कई स्तवन एवं ढालें रची हैं। वृद्धावस्था होते हुए भी उग्र विहारी रह कर धर्म प्रचार में लीन हैं।

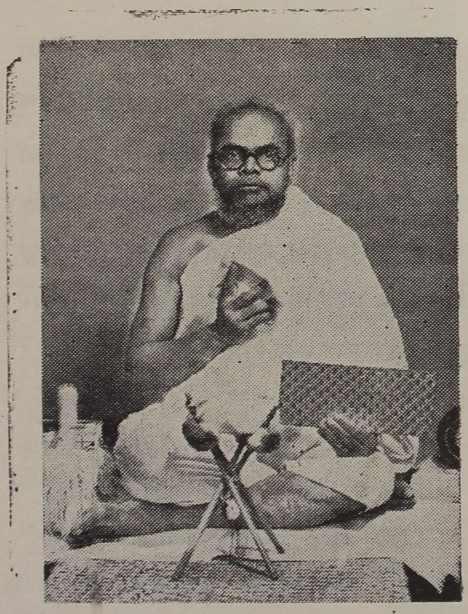

श्री पं० उदयविजयजी गणी

आप आचार्य श्री वि. उमंगसूरिजी के प्रधान शिष्य हैं। आपका जन्म वि० सं० १९६१ वैशाख शुक्ला १४ को हुआ। पिता का नाम मांगीलालजी बार भैया तथा माता का नाम समुबेन था। संसारी नाम शान्तिलाल। आपकी बालकाल से ही वैराग्यमय वृति थी। संवत् १३८५ जेष्ठ वदी ८ को हरीपुरा के वासु पूज्य जी के मन्दिर में आ० श्री उमंगसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। १९८९ में आ० श्री विजय वल्लभ सूरिजी की अध्यक्षता में योगोद्वहन किया। सं० १९९८ मिगसर सुदी ६ को आप पालनपुर में गणी तथा पन्यास पद से विभूषित किये गये। कपड़वंज में आप श्री द्वारा आचार्य श्री की अध्यक्षता में उपधान माला महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ और भी कई धार्मिक कार्य आप श्री के शुभ हस्त से हुए व होते रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजय पूर्णानन्दसूरिजी

आप आचार्य श्रीविजय वल्लभ सूरिजी के शिष्य आचार्य ललित सूरिजी के पट्टधर एक प्रभावशाली आचार्य हैं। दक्षिण भारत में जैन धर्म प्रचारार्थ एवं जैन शासन की प्रभावना हेतु आप श्री के प्रयत्न अतीव प्रशमनीय हैं।

आ० दि० पं. पुण्य विजयजी महाराज

आगम साहित्य का युगानुकूल लेखन, शोधन तथा प्राचीन ग्रन्थों का अन्वेषण तथा ज्ञान भंडारों के अमूल्य रत्नों को सुव्यवस्थित करने की प्रवृत्तियों के कारण आज आप समस्त जैन समाज के बड़े श्रद्धा भाजन एवं पूज्यनीय बने हुए हैं।

आप तीन महीने की उम्र में मोहल्ले में हुई भयंकर आग दुर्घटना के समय एक मुस्लिम भाई द्वारा बचाये गये यह पुन्य की विजय थी इसीसे 'पुण्य-विजय' नाम रक्खा गया। आपकी माता ने भी दीक्षा अंगीकार की। आपके गुरु चतुर विजयजी बड़े आगम वेत्ता विद्वान एवं अन्वेषक थे। अतः इनकी प्रवृत्ति भी इसी साहित्यिक दिशा में ही बढी और आज आप श्री द्वारा जैसलमेर खंभात बड़ौदा आदि कई स्थानों के प्राचीन ग्रन्थ भंडारों का उद्धार हुआ है।

पं० जनक विजयजी गणी

आप आचार्य श्री समुद्रसूरिजी के प्रधान प्रिय गुरु भक्त शिष्य हैं। जैन धर्म प्रचार एवं समाजोन्नति हेतु आपके हृदय में एक उत्साह पूर्ण लगन है आपके विचार युगानुकूल सुधरे एवं सुलझे हुए हैं। आपकी मिलनसार प्रवृत्ति आगन्तुक को सहज ही में आकर्षित किये बिना नहीं रहती।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आ० श्री० विजय वल्लभसूरिजी की आज्ञानुवर्ती

विदुषी साध्वी श्री मृगावती श्री

(लेखक–महेन्द्रकुमार 'मस्त'–समाना पंजाब)

भगवान श्री ऋषभ देव के समय से लेकर आज तक जैन समाज में अनेकों ऐसी साध्वियां हुई हैं जिन्होंने अपने आत्मबल, चरित्रबल तथा तपोबल से सारे संसार के धारा प्रवाह को परिवर्तित कर दिया। इन महा सतियों ने अपने आदर्श जीवन से एक नए युग को जन्म दिया है।

साध्वी श्री मृगावती का जन्म राजकोट (सौराष्ट्र) के एक धनाढ्य जैन घराने में हुआ उदाणी गोत्रीय माता–शिवकुंवर बहन–ने अपनी ग्यारह वर्षीय बेटी को साथ लेकर दीक्षा ग्रहण कर ली। दोनों के नाम क्रमशः शीलवती श्री तथा मृगावती श्री हुआ। माँ–बेटी का रिशता गुरूणी तथा शिष्या का रिशता हो गया। अब बाल–साध्वी मृगावती की शिक्षा शुरू हुई। वर्षों के परिश्रम के बाद आप ने हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत तथा गुजराती पर काफी अधिकार प्राप्त किया। अपने बंगाल–प्रवास में बंगला भाषा तथा पंजाब में घूमते हुए अंग्रेजी सीखी। उर्दू कवियों के पद्य भी आपने खूब याद किये हैं।

स्व० आचार्य श्री विजय वल्लभसूरिजी की आज्ञा से आपने एक चातुर्मास कलकत्ता में किया तथा शासनोन्नति एवं धर्म प्रभावना में पूरा योग दिया। गीता, उपनिषद्, रामायण, कुरान, बाइबल तथा त्रिपिटक आदि खूब मनन किये हैं। आपके सरस, प्रभावोत्पादक तथा नूतन शैली वाले व्याख्यानों में जैनेतर लोग अधिक होते हैं। पांडवपुरी में श्रीगुलजारी लाल नन्दा के सामने विशाल जन समूह में आपने भूमि दान पर विद्वता पूर्ण भाषण दिया था। भारत की मन्त्रिणी सुश्री तारकेश्वरी सिन्हा भी आप से भली भाँति परिचित है।

सन् १९५४ ई० में आपका आगमन पंजाब में हुआ। दस २ तथा पन्द्रह २ हजार नर नारियों के सामने आपके भाषण हुए। आपके आह्वान पर सारे पंजाब की जैनाजैन जनता दहेज के विरुद्ध कटिबद्ध हुई। पैप्सु के मुख्य मंत्री श्री वृषभान की उपस्थिति में सैंकड़ों नवयुवक और नवयुवतियों ने दहेज न लेने देने की प्रतिज्ञाएँ की। श्री आत्मानन्द जैन हाई स्कूल, लुधियाना के लिये आप ही के उपदेश से अस्सी हजार रुपये का दान इकट्ठा हुआ।

होशियारपुर (पंजाब) का जैन हाई स्कूल प्रायमरी से हाई स्कूल बनना शुरु हुआ। नकोदर का जैन कन्या स्कूल मिडल बनना प्रारम्भ हुई। अमृतसर में श्री आत्म वल्लभ शिल्प विद्यालय की स्थापना हुई। वहाँ के अन्ध विद्यालय के लिये हजारों रुपये एकत्र करवाये। रोपड़ और मालेरकोटला में श्री आत्म वल्लभ जैन भवन (उपाश्रय) बने। पंजाब के जैनों की मुख्य प्रतिनिधि सभा श्रीआत्मानन्द जैन महासभा का अधिवेशन अपनी निश्रा में बुलवाकर उस से समाज कल्याण के महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करवाए तथा पैसा फण्ड जारी किया। गुरुदेव श्री विजयानन्द सूरिजी के जन्मस्थान "लहरा" में ४२ फीट ऊँचा मनोहर कीर्तिस्तम्भ बनवाया। पट्टी में लड़के लड़कियों के लिए श्री जैन धार्मिक पाठशाला स्थापित की। शिमला, कांगड़, भाखड़ा नंगल तथा कसौली जैसे दुर्गम प्रदेशों में धर्म प्रभावना की। ब्राखन मैमोरियल क्रिश्चियन मैडिकल हॉस्पिटल, लुधियाना की धर्मशाला के लिए भी हजारों रुपये दान दिलवाये। काश्मीर के जम्मु शहर में महावीर जयन्ती के अवसर पर वहाँ के मुख्यमन्त्री बख्शी गुलाब मुहम्मद ने साध्वी श्री की प्रेरणा पर ही जैन स्थानक के लिए भूमि देने की घोषणा की। अम्बाला शहर में श्री वल्लभ विहार (समाधि–मन्दिर) का बनना आरम्भ हुआ।

आपने महिला स्वाध्याय मंडल बनवाए हैं। चिरकाल से आप शुद्ध खादी का प्रयोग करते हैं। आपकी एक ही शिष्या सुज्येष्ठा श्री के नाम से है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शासन सम्राट, सूरिचक्रवर्ती, अनेकतीर्थोद्धारक

जैनाचार्य श्रीमद् विजय नेमीसूरिश्वरजी महाराज का मुनि समुदाय

स्वर्गीय जैनाचार्य श्रीमद् विजय नेमी सूरीश्वर म० सा० अपने समय में एक महान् प्रभावशाली, सर्व प्रिय एवं महान् शासन प्रभावक जैना चार्य हुए हैं। और यही कारण है कि जैन संघ आज भी आप श्री के नाम के साथ शासन सम्राट, सूरि चक्रवर्ती, तीर्थोद्धारक आदि सम्मान पूर्ण शब्द जोड़ कर अभिनंदन प्रकट करता है। इन सम्बोधनों से ही आचार्य श्री के महान् व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। आप श्री का संक्षिप्त जीवन चरित्र "महा प्रभाविक जैनाचार्य" विभाग में पृष्ठ ८२ पर दिया गया है।

आप श्री की परम्परा का मुनि समुदाय काफी बड़ा है। वर्तमान में समुदाय में निम्न आचार्य विद्यामान हैं:—

(१) आचार्य श्री मद् विजय दर्शन सूरीश्वरजी म०
(२) आ० श्री विजय उदयसूरिश्वरजी म०
(३) आ० श्री विजयनन्दन सूरीश्वरजी म०
(४) आ० श्री विजयविज्ञान सूरीश्वर म०
(५) आ० श्री विजय अमृतसूरीश्वरजी म०
(७) आ० श्री विजय लावण्य सूरीश्वरजी म०
(८) आ० श्री विजयकिस्तुर सूरीश्वरजी म०

पू० आ० श्री के समुदाय में १३५, करीब साधु हैं। जो न्याय-व्याकरण-साहित्य-दर्शन-ज्योतिष-शास्त्रों में लब्धप्रतिष्ठत हैं। उनमें से मुख्य रूप से:—

पू० पं० श्री जीतविजयजी गणी
" " " सुमित्रविजयज "
" " " मोतीविजयजी "
" " " रामविजयजी "
" " " मेरुविजयजी "
" " " यशोभद्रयिजयजी गणी
पू० पं० श्री दक्षविजयजी गणी
" " " देवविजयजी "
" " " सुशीलविजयजी गणी
" " " जयनन्दविजयजी "
" " " पुण्यविजयजी "

धुरन्धरविजयजी गणी, प्रियंकरविजयजी गणी, चन्दोदयविजयजी गणी, आदि गणी वर्य विद्यमान हैं। तथा मुनि श्री हेमचन्द विजयजी, पं० शुभंकर विजयजी, पं० परमप्रभविजयजी, पं० महिमा प्रभ विजयजी, पं० चन्दन विजयजी, सूर्योदय विजयजी, खांति विजयजी, निरंजन विजयजी आदि हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजयामृतसूरिजी

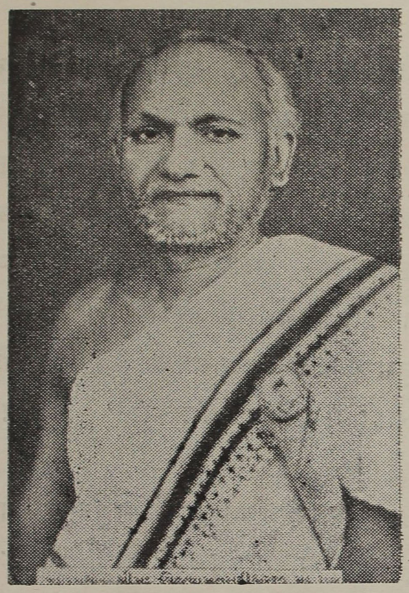

शासन सम्राट तपोगच्छाधिपति आचार्य नेमि-सूरीश्वरजी के पट्टधर शिष्य, शास्त्र विशारद, कवि रत्न, पियूषपाणि आचार्य श्री विजयामृत सूरीश्वरजी का जन्म सौराष्ट्र प्रदेश में विक्रम संवत् १९५२ माघ शुक्ला अष्टमी के दिन ग्राम बोटाद देशाई कुटुम्ब में हुआ। पिता का नाम हेमचन्द देशाई तथा माता का नाम दिवाली बाई था। विक्रम संवत् १९७१ राजस्थान सिरोही जिला, जावाल ग्राम, ज्येष्ठ मास, में दीक्षा हुई। अहमदाबाद, १९९२ में आचार्य पदवी मिली। सप्तसन्धान महा काव्य की सरणी नाथ की टीका, कल्पलता व तारिका, वैराग्य शतक आदि ग्रन्थों की रचना की है। पन्यास रामविजयजी गणी, पं० देवविजयजी गणी पं० पुण्य विजयजी गणी, पं० धुरंधर विजयजी गणी, पं० परम प्रभविजयजी गणी आदि बड़े विद्वान् तथा प्रतिष्ठित शिष्यगण है। आपके उपदेश से 'बम्बई, उपनगर बोरीवली पूर्व दौलत नगर में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ जैन मन्दिर श्री अमृत सूरीश्वरजी ज्ञान मन्दिर, श्री वर्धमान तप पुण्योदय शाला, तथा वर्धमान तप निवास ये चार स्थायी कार्य अन्तिम चार वर्ष में हुए हैं। बोटाद में जैन मन्दिर, और ज्ञान मन्दिर, अमदाबाद धामा सुतार पोल में ज्ञान मन्दिर आपके उपदेश हुआ है।

पं० श्री प्रियंकर विजयजी गणी

संसारी नाम पोपटलाल। जन्मः—विक्रम संवत् १९६९ काश्रावण शुक्ला १५ बुधवार ता. ५-८ १९१४ गुजरात के देहग्राम के पास हरसोली(ग्राम) में पिता नगीनदास गगलदास (डमोडा) वडोदरा। वर्तमान निवास-अमदाबाद जुना महाजन वाडा। माता का नाम माणेक बेन। दशा श्रीमाली। दीक्षा इडर में संवत् १९८९ मागशीर्ष शुक्ला एकादसी वृहद्दीक्षा उंझा संवत् १९८९ माघ कृष्णा ६। गुरु का नाम आ० म० श्री विजयदर्शनसूरिजी। आप व्याकरण न्याय, काव्य, कोष, ज्योतिष तथा धर्म ग्रन्थ के प्रखर पंडित हैं आपकी रचनाएं निम्न हैं:—हेमलघु-प्रक्रिया टिप्पणी अलंकृत। शान्तिनाथ जिन पूजा (गुजराती) आदि। सं० २००७ चेत्र कृष्णा १३ को गणी पद तथा वैशाख शुक्ला ३ को अहमदावाद में पन्यास पद से विभूषित हुए।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पन्यासजी श्री मेरु विजयजी गणि

आ. श्री विजयोदय सूरीश्वरजी म० के शिष्य रत्न प्रसिद्ध वक्ता पन्यासप्रवर श्रीमेरु विजयजी गणि वर्य का जन्म इडर के समीपवर्ती 'दीसोत्तर' गांव में वि० संवत् १९६२ में हुआ। पिता का नाम मोतीराम उपाध्याय और माता का नाम सूरजबाई था ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी पूर्व पुण्योदय से जैन धर्म प्राप्त हुआ।

सं० १९८५ में वतरां गांव में आचार्य श्री विजयामृतसूरीश्वरजी के करकमलों से दीक्षा ली।

सं० २००६ में सुरेन्द्रनगर में आपको श्री भगवती जी का योगोद्वहन पूर्वक आपके गुरुदेव श्री विजयोदय सूरिजी म० ने गणिपद और सं० २००७ में राजनगर में आपको पन्यासपद प्रदान किया। आप जैनागम, व्याकरण, साहित्य के महान् विद्वान होने के साथ साथ प्रखर व्याख्याता एवं शासन प्रभावक मुनि हैं।

अनेक गांव नगरों में विचरते हुए आपने कई भव्यों को सदुपदेश से धर्मवासित बनाये। आपने तीन उपधान वहन कराये। कितने ही संघ निकाले और कई जिन मन्दिरों की प्रतिष्ठा की।

अभी आप बम्बई आदीश्वरजी की धर्मशाला में विराजते हुए जैन समाज के अनेकानेक कार्य कर रहे हैं।

पं० श्री देव विजयजी गणि

आचार्य श्री विजयामृत सूरीश्वरजी के शिष्य रत्न श्री देवविजयजी गणिवर्य ने सं० १९८७ में 'नांडलाई' (मारवाड़) में पन्यासजी श्री सुमित्र विजय जी म० के पास प्रव्रज्या स्वीकार की। आप श्री ने भी श्री विजय नेमिसूरिजी म० की छात्रछाया में व्याकरण प्रकरण सिद्धान्तादि शास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया। सं. २००७ का. वदी ६ में गणिपद और २००७ वै० सुदी ३ को पन्यासपद प्रदान किया गया। आप श्री अभी अपने मधुर वचनों से अनेक भव्यों को उपदेश दे रहे हैं। आप श्री का जन्म मेवाड़ के सलुम्बर गांव में वि० सं० १९६७ में हुआ। पिता का नाम कस्तूरचन्दजी और माता का नाम कुन्दनबाई था।

मुनि श्री खान्तिविजयजी

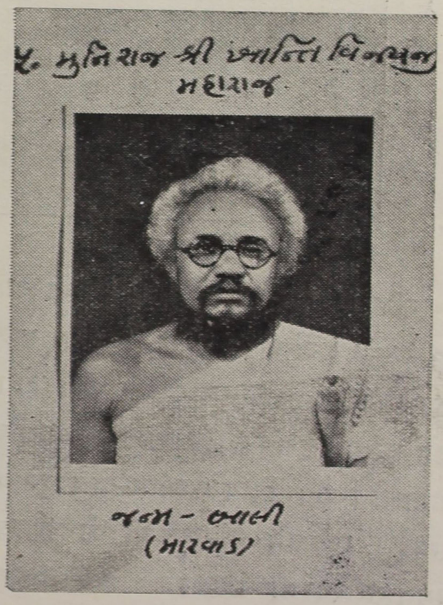

संसारी नाम-खीमचन्दजी। जन्म सं० १९६४ जन्म स्थान-बाली (मारवाड़)। पिता-हजारीमलजी अमीचन्दजी। माता-सारीबाई। जाति-बीसा ओसवाल। गौत्र-हडुंडिया राठौड। दीक्षा स्थान-१९८८ जावाल [राजस्थान]। गुरु का नाम-आचार्य विजय अमृतसूरिजी महाराज। आपने अपने लघुबंधु को उपदेश देकर दीक्षित किया जिनका नाम मुनि श्री निरंजन विजयजी है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री विशालविजयजी

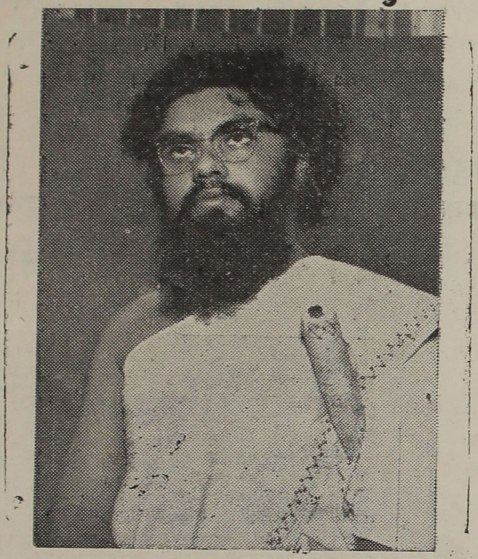

संसारी नाम-'विनयचन्द्र'। जन्म-माघ पूर्णिमा सं० १९८१। जन्म स्थान-इन्दौर (मालवा)। पिता का नाम शाह शिवलाल नागरदास जौहरी। माता का नाम कांता बहेन। जाति तथा गौत्र-जैन वणिक दसा श्रीमाली। दीक्षा तिथि व स्थान-चैत्र शु० ७ सं. २००९ बम्बई। गुरुनाम-नेमिसूरिजी के शिष्य आ० श्री अमृत सूरीश्वरजी महाराज। अल्प समय में अच्छी प्रगति की है। आप एक अच्छे लेखक, कवि एवं प्रखर वक्ता हैं। वर्द्धमान देशना, चारु चरित्र, कुलदीपकवंक,चूल चरित्र आदि पुस्तकों के लेखक हैं। आपकी दीक्षा के ६ महिने बाद आपके लघुभ्राता किशोरचन्द्र, २॥ सालबाद दूसरे लघु भ्राता रमेशचंद्र की दीक्षा हुई और उनके करुणा विजयजी, और राजशेखर विजयजी क्रमशः नाम दिये गये और आप (विशाल विजयजी) के शिष्य घोषित हुए।

मुनि श्री निरंजनविजयजी

संसारीनाम-नवलमलजी। जन्म सं० १९७४। (जन्म स्थान, पिता माता आदि मुनि खान्ति विजयजी के समान)। दीक्षा-सं० व स्थान-१०९१ कदम्बगिरि। बडी दीक्षा-१९९१ जेठ सुदी १२।

आप एक सुप्रख्यात विद्वान लेखक एवं साहित्य कार हैं। साहित्य सृजन की दिशा में विशेष लक्ष्य है। आप द्वारा लिखित १२०० पृष्ठों का "संवत् प्रवर्तक महाराजा विक्रमा दित्य" अनुपम कृति है। छोटे मोटे ४० के करीब और भी कई प्रकाशन हैं।

आपकी शुभ प्रेरणा से "कथा भारती" नामक द्विमासिक सं० १०१२ से लगातार निकल रहा है। इस पत्र में सचित्र सभी रसों के पोषक, विविध सुन्दर शैली के चरित्र आते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सात लाख श्लोक प्रमाण नूतन-संस्कृत-साहित्य-सर्जक

साहित्य महारथी-कवि रत्न

आचार्य श्री विजय लावण्य सूरीश्वरजी महाराज

आप महान् ज्योतिर्धरसूरि सम्राट आचार्य श्रीमद् विजय नेमिसूरीश्वरजी के पट्टालंकार हैं। आपका जन्म सं० १९५३ भाद्रपद कृष्णा ५ को बोटाद (सौराष्ट्र) में हुआ। पिता का नाम सेठ जीवनलाल खेतसी भाई तथा माता का नाम अमृतबाई है। आपका संसारी नाम लवजी भाई था। जाति बीसा श्रीमाली।

बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति वैराग्यमयी रही। दीक्षा लेने के लिये घरवालों का विरोध होने से आप कई बार घर से भागे अन्ततः १९ वर्ष की आयु में आचार्य सम्राट के पास सं० १९७२ आषाढ़ शुक्ला ५ को सादडी (मारवाड़) में दीक्षा अंगीकार की। सं० १९८७ कार्तिक कृष्णा २ को अहमदाबाद में आपको प्रवर्तक पद, सं० १९९० मिंगसर सुदी ८ को भावनगर में गणिपद, सुदी १० को पन्यास पद तथा सं० १९९१ जेठ बदी २ को महुवा में उपाध्यायपद प्रदान किया। गया साथ ही व्याकरण वाचस्पति, कविरत्न तथा शास्त्र विशारद की पदवी से भी विभूषित किये गये।

सं० १९९२ के वैशाख सुदी ४ के दिन अहमदाबाद में आचार्य पद प्रदान किया गया। अहमदाबाद में हुए तपागच्छीय साधु सम्मेलन में आप 'जैनधर्म पर होने वाले आक्रमणों का प्रतिकार' करने वाली कमेटी के विशेष सभ्य बनाये गये।

महान साहित्य सेवा

आप एक मधुर व्याख्यानी एवं न्याय, व्याकरण एवं जैनागम साहित्य के पारगामी उत्कट विद्वान हैं। आपकी साहित्य सेवा जैन जगत को एक अनुपमदेन है। निम्न रचनाएं हैं:—

(१) ४॥ लाख श्लोक प्रमाण 'धातु रत्नाकर' के विशाल ७ खंड। (२) महाकवि धनपाल रचित 'तिलक मंजरी' ग्रन्थ पर ५० हजार श्लोक प्रमाण 'पराग' शीर्षक मनोहर वृत्ति (३) कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य "रचित सिद्ध हेम शब्दानुशासन" के त्रुटक स्थानों का अनुसंधान एवं संशोधन अभूत पूर्व है। (४) तत्वार्थाधिगम् सूत्र पर षड दर्शन का प्रकाश डालने वाली 'प्रकाशिका' नामक ४००० श्लोक प्रमाण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

टीका। (५) 'नय रहस्य' ग्रन्थ पर 'प्रमोहा' नामक ३००० श्लोक प्रमाण वृति। (६) 'सप्त भंगी नयप्रदीप' ग्रन्थ पर २००० श्लोक प्रमाण बाल बोधिनी टीका। (७) 'अनेकान्त व्यवस्था अपरनाम जैन तर्क परिभाषा' पर १४००० श्लोक प्रमाण वृत्ति (८) नयामृत तरंगिणी ग्रन्थ पर 'तरंगिणी तरणी' नामक १६००० श्लोक टीका। (९) हरिभद्र सूरि रचित 'शास्त्रवार्ता समुदाय' ग्रन्थ पर 'स्याद्वाद वाटिका' नामक २५००० श्लोक प्रमाण अनुपम टीका। (१०) 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ पर ४० हजार श्लोक प्रमाण सुन्दर वृत्ति (११) श्री सिद्धसेन दिवाकर प्रणीत 'द्वात्रिंशद द्वात्रिंशिका ग्रन्थ पर 'किरणावली' नामक टीका (१२) इसके अतिरिक्त देवगुर्वाष्टिका आदि महान् ग्रन्थों की रचनाएं की हैं।

इसी प्रकार व्याकरण, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष न्याय, जैनागम आदि सभी विषयों के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थों का आप श्री को गहन अध्ययन है।

संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में धारा प्रवाही प्रवचन करने में एवं गद्य पद्य दोनों में उत्कृष्ट सिद्ध हस्त कवि हैं।

इस प्रकार आचार्य देव श्री मद् विजय लावण्यसूरिजी जैन जगत् की एक अनुपम ज्योति हैं। ३७ वर्ष का विशुद्ध दीक्षा पर्याय है।

आप श्री के विद्वान शिष्यों में पं० दक्ष विजयजी गणि तथा पं० श्री सुशील विजयजी गणि प्रमुख हैं। इसके सिवाय अनेक शिष्य प्रशिष्यादि हैं। विशाल मुनि समुदाय है।

पं० श्री सुशील विजयजी गणि

आ० श्री विजय लावण्य सूरि के मुख्य पट्टधर विद्वद् शिरोमणी पन्यासजी श्री दक्षविजयजी के गणि के शिष्य रत्न पन्यासजी श्री सुशील विजयजी गणि का जन्म सं० १९७३ में चाणस्मा में हुआ। पिता का नाम चतुर भाई ताराचन्द तथा माता का नाम चंचल बहेन था। जाति बीसा श्रीमाली चौहान गौत्र। संसारी नाम–गोदड भाई।

१४ वर्ष की बालवय में आ० विजय लावण्य सूरिजी के पास सं० १९८८ का० व० २ को उदयपुर (मेवाड़) में दीक्षित हुए। वि० सं० २००७ का० व० ६ को वेरावल (सौराष्ट्र) में गणिपद तथा सं० २०२७ वैशाख शुक्ला ३ को राजनगर अहमदाबाद में १५ अन्य गणिवरों के साथ महा महोत्सव पूर्वक पन्यास पद विभूषित हुए।

आप एक प्रखरवक्ता, कवि तथा लेखक रूप में प्रसिद्ध हैं। २७ वर्ष की निर्मल दीक्षा पर्याय है। व्याकरण, न्याय साहित्य तथा जैनागम के अभ्यासी हैं। विनयी क्रिया पात्र तपस्वी एवं सद् चारित्रता आपके जीवन की विशेषताएं हैं।

आप श्री की रचनाए :—१. श्री 'सिद्धहेम' व्याकरण ग्रन्थोपयोगी 'श्री सिद्ध हेम शब्दानुशासन सुधा [प्रथम भाग] २. आ० सिद्धसेन दिवाकर रचित 'द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका' ग्रन्थ का प्रौढ़ भाषामय भावार्थ ३. आ० श्री विजयदेवेन्द्रसूरि कृत 'भाष्यत्रय' का छन्दबद्ध भाषानुवाद ४. संस्कृत में 'तिलक मंजरी कथा सार' तथा उसका गुजराती में संक्षिप्त भावार्थ। ५. श्री हरिभद्रसूरि कृत 'शास्त्रवार्ता समुच्चय' ग्रंथ का भावार्थ ६. श्री हेमचन्द्राचार्य कृत 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ पर संस्कृत में चूर्णिका। ७. परमार्हत कुमारपाल कृत 'आत्मनिंदा द्वात्रिंशिका' पर 'प्रकाश' नामक टीका तथा कुमारपाल राजा की जीवनी। ८. जगद्गुरु हीरसूरिजी कृत 'वर्द्धमान जिन स्तोत्र' पर 'दीपिका' टीका। ९. प्राचीन श्री गौतमाष्ट' पर वृत्ति तथा श्री गौतमस्वामी का जीवन वृतांत। १०. महाकवि धनपाल का आदर्श जीवन वृत्तान्त।

इनके अतिरिक्त 'प्रभुमहावीर जीवन सौरभ, ए धर्मनाज प्रतापे, ए तारा ज प्रतापे, दीक्षा नो दिव्य प्रकाश, आत्म जागृति, संघोपमा बत्तीसी, ऋषभ पंचाशिका, वर्धमान पचाशिका, सिद्ध गिरी पंचाशिका, अमी झरणां, सिद्धचक्र। कुसुम वाटिका आदि ५० से भी अधिक ग्रन्थों की आपने रचनाएं एवं सम्पादन किया है। आपके संसारी पिता तथा वर्तमान में पूज्य वयवृद्ध स्थविर मुनिराज श्री चन्द्रप्रभ विजयजी म०, ज्येष्ठ बन्धु पन्यास प्रवर श्री दक्ष विजयजी गणि, छोटी बहिन बाल ब्रह्मचारिणी साध्वीजी रवीन्द्र प्रभा श्री भी दीक्षित अवस्था में संयम मार्ग में आरूढ़ आत्मोन्नति रत हैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्रीमद् विजय दान सूरीश्वरजी म० की मुनि-परम्परा

जैन इतिहास में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री मद् विजयानन्द सूरीश्वरजी (आत्माराम जी) के प्रशिष्य आ० श्रीमद् विजय दान सूरीश्वर जी म० भी अपने समय के एक महान् जैन शासन प्रभावक आचार्य हुए हैं। आपका जीवन चरित्र 'महा प्रभाविक जैनाचार्य' विभाग में पृष्ठ ८४ पर दिया गया है।

आपकी शिष्य परम्परा की मुख्य विशेषता है सबका साहित्य और स्वाध्याय। प्रेम वर्तमान में आपकी परम्परा के वर्तमान मुनिराजों की संख्या २५० के करीब है और साध्वी समुदाय भी काफी विस्तृत है।

अब हम यहाँ विद्यमान आचार्यों व मुनिवरों का संक्षिप्त वर्ण करेंगे।

आचार्य विजय प्रेम-सूरीश्वरजी म०

आपका जन्म ७६ वर्ष पूर्व सं० १९४० कार्तिक शुक्ला १५ को पींडवाड़ा (सिरोही, में हुआ। पिता का नाम श्री भगवानदास जी, तथा माता का नाम कंकुबाई था। भाई थे। संसारी नाम प्रेमचन्द था। १५ वर्ष की आयु में शत्रुंजय की यात्रार्थ जाना हुआ वहीं से मुनिवरों के संसर्ग से वैराग्य वृत्ति का बीजा रोपण हुआ। और सं. १९५७ का० व० ६ को पालीताणा में आ० श्री दानसूरिजी के पास दीक्षित हुए। सं० १९८१ में पन्यासपद। सं० १९९१ चैत्र सुदी १४ को राधनपुर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में आचार्य पद और इस परम्परा में ७५ वें पट्टधर हैं।

ज्ञानोपासना में रात दिन रत रहना ही आपकी जीवनचर्या का मुख्य अंग है। विशाल ज्ञान सागर का मंथन करने वाले ये महान् मुनि आज जैन समाज के महान श्रद्धेय आ० हैं। संस्कृत एवं प्राकृत के आप दिग्गज विद्वान हैं। कर्म साहित्य पर आपने 'कर्म सिद्धी' तथा 'मार्गणा द्वार विवरण' नामक ज्ञानागम ग्रन्थों की सुन्दर रचनाएं की हैं। आपकी पांडित्य पूर्ण अनुभव, चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन की विशेषताएं आपके आज्ञानुवर्ती मुनि समुदाय पर भी प्रभावोत्पादक बनी हुई है।

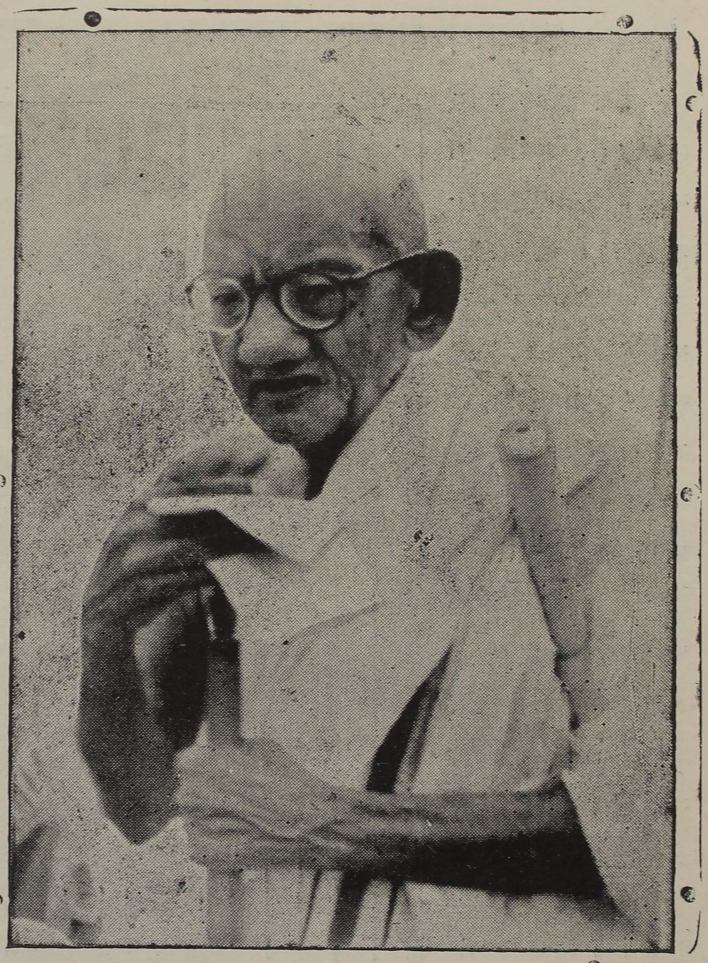

आ० श्री विजय रामचन्द्रसूरिजी म०

आपका जन्म सं० १९५२ फाल्गुन कृष्णा ४ पादरा (गु०) गांव में हुआ। पिता का नाम छोटालाल। माता का नाम समरत बेन। संसारीनाम-त्रिभोवनदास। दीक्षा-सं० १९६९ पौष सुद गंधार ग्राम। पन्यास पद सं० १९८७ का० व० ७। उपाध्याय पद स० १९९१ चैत्र शु० १४ राधनपुर। आचार्य पद सं० १९९२ वै० शु० ६ बम्बई। गुरु-आ० श्री वि० प्रेम सूरीश्वरजी म०।

वर्तमान प्रभावशाली जैनाचार्यों में आप श्री का प्रमुख स्थान है। प्रख्यात प्रवचनकार हैं। 'जैन प्रवचन' पत्र द्वारा आपके प्रवचन सर्वत्र सुलभ हैं। आप श्री द्वारा अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठाएं, उपधान, आदि कार्य सम्पन्न होते ही रहते हैं।

आचार्य विजय जम्बूसूरिजी म०

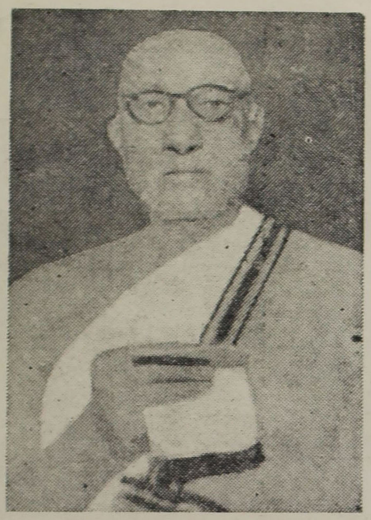

आपका जन्म सं. १९५५ म. व० ११ गांव डभोई। संसारी नाम खुशालचन्द। पिता नाम-मगनलाल माता-मुक्ताबाई। दीक्षा-सं० १९७८ प्र० जे० व० ११ सिरोही। पन्यास पद सं० १९९० फा० व० ३ अहमदाबाद। उपाध्याय-सं० १९९२ वै शु० ६ बम्बई आचार्य पद १९९९ फा० शु० ३ अहमदाबाद।

आप जैनागमों के वांचन, मनन एवं अनुशीलन की विशेषताओं से "आगम प्रज्ञ" तरीके प्रसिद्ध हैं। तिथि साहित्य के सर्जन के साथ साथ षड़ दर्शन, प्राचीन समाचारी के ग्रन्थ आदि पर आपकी रचनाएं हैं। प्रतिष्ठा, उपधान आदि जैन विधि विधानों का परम विज्ञ हैं।

मुनि श्री नित्यानन्द विजयजी म०

आपका जन्म सं० १९७८ का० शु० २ अहमदाबाद,। सं० नाम जयन्तिलाल। पिता मोहनलाल। माता मणिबेन। दीक्षा-सं० २००० वै० शु० ७ अहमदावाद। गुरु० आ० श्री वि० जबूसूरिजी। आप बड़े साहित्य प्रेमी एवं उदीयमान लेखक हैं। आपने 'श्री दान प्रेम वांशं वाटिका' नाम से अपनी समुदाय के सदस्य मुनिवरों के जीवन वृत संग्रहीत कर प्रकाशित कराये हैं।

आचार्य विजय भुवनसूरिजी म०

आपका जन्म सं० १९६३ महासुदी १३ उदयपुर (मेवाड़) पिता नाम लक्ष्मीलालजी, माता नाम कंकुबाई। बीसा ओसवाल, गौत्र-महेता। दीक्षा स १९८० मा० शु० ६ राजोद (मालवा)। गुरु आ० वि० रामचन्द्रसूरिजी म०। पन्यास पद १९९५ वैशाख वदी ६ पूनाकेम्प। उपाध्याय पद १९९९ फा० शु० ३ अहमदाबाद। आचार्य पद २००५ महासुद ५ शेरडी (कच्छ)।

आप स्वाध्याय रत रह कर आत्मोन्नति करते हुए समाज कल्याण में सतत् प्रयत्नशील जैन शासन प्रभावक आचार्य हैं। आपके शुभ हस्त से कई जगह उपधान तप, प्रतिष्ठाएं, अंजन शलाका आदि महत्व पूर्ण कार्य हुए हैं। आपके नेतृत्व में गिरनारजी व मारवाड़ पंच तीर्थी के संघ निकले हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar, Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजय यशोदेवसूरीश्वरजी

जन्म सं० १९४४ चै० व० १३ अहमदाबाद। गृहस्थ नाम जेसिंग भाई। पिता-लालभाई। माता गजराबेन। जन्म नाम जेसिंगभाई। दीक्षा १९८२ फा० शु० ३ अहमदाबाद। सं० १९९५ वै० व० ६ को पन्यास पद। सं० २००५ माह सुदी ५ को अहमदाबाद में आचार्य पद।

तीव्र वैराग्य से अनुरंजित ज्ञान, ध्यान और तपस्या में विशेष लीन रहना ही आपका जीवन क्रम है। मंदिरों की प्रतिष्ठादि, उनके सुधार, संघ में संगठन कराना आपकी विशेषताएं हैं।

पं० मानविजय गणि

जन्म सं० १९५४ आसोज शुक्ला १ अहमदाबाद जन्म नाम माणेकलाल। पिता कछराभाई। माता मंगु बाई। जाति दसा पोरवाड। दीक्षा सं० १९८३ चै० शु० १३ खंभात। गुरु आ० विजय रामचन्द्रसूरिजी। रचनाएं—पिण्ड विशुद्धि, आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, उपमिति भव प्रपंचा, कथा सारोद्धार, ११ आवश्यक निर्युक्ति व चूर्णि, विभक्ति विचार प्रकरण आदि ग्रंथों कां सम्पादन।

अन्य विद्वद्वर-मुनि मंडल

पूज्य पन्यास श्री धर्म विजयजी गणि श्री कनक विजयजी गणि, पं० श्री कांति विजयजी गणि, पं० श्री भद्रंकर विजयजी गणी, मुक्ति विजयजी गणि, भानुविजयजी गणि, मुनिराज श्री हिमांशु विजयजी, पद्मविजयजी गणि, सुदशनविजयजी गणि, हर्ष विजय जी, राज विजयजी, कुमुद विजयजी. महानंद विजय जी, नित्यानन्द विजयजी, आदि विद्वान मुनि वृन्द हैं।

मुनिराज श्री चन्द्रयश विजयजी, त्रिलोचन विजय जी गणि, रैवत विजयजजी गणि, जयविजयजी, जय पद्म विजयजी आदि महान् तपस्वी मुनिवर हैं।

मुनि जयघोष विजयजी, धर्मानन्द विजयजी, हेमचन्द्र विजयजी, भद्रगुप्त वि० आदि साहित्य एवं जैनागम के विद्वान हैं। पं० श्री कांति विजयजी, रैवत विजयजी ज्योतिर्विद हैं।

श्री सुदर्शन विजयजी गणि

आप आचार्य श्रीविजय भुवनसूरीश्वरजी के लघु भ्राता हैं। जन्म सं० १९७० मा० शु० ७ उदयपुर [मेवाड़]। पिता लछमीलालजी माता कंकुबाई। जाति बीसा श्रीमाल महेता। दीक्षा १९८९ पोष वदी ५ पाटण। गणि पद २०१३ का० व० ५ पोरबन्दर। पन्यास पद २०१५ वै० शु० ६ बांकी कच्छ।

आप बड़े ही साहित्य प्रेमी हैं। साहित्य सर्जन एवं प्रकाशन के प्रति विशेष दिलचस्पी रखते हैं। करीब १२-१३ ग्रन्थ सुसम्पादित कर छपवाये हैं। कई स्थानों पर उपधान महोत्सव कराये। सादडी मारवाड़ जामनगर, धमलनेर और पाटन में ज्ञान भडारों की स्थापना करवाई।

आपके प्रमोद विजयजी तथा लाभ विजयजी नामक दो शिष्य हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री० विजयलब्धिसूरिजी म०

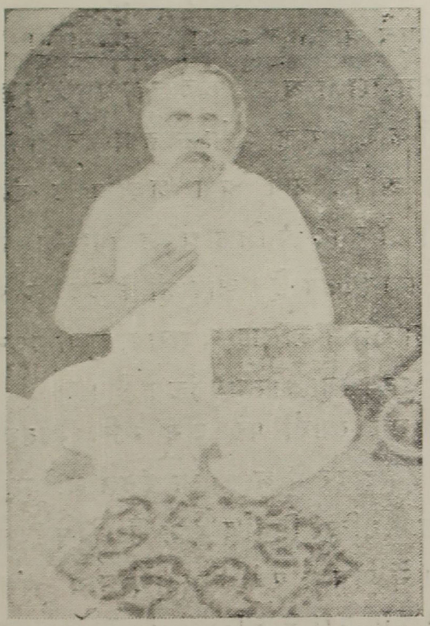

आपका जन्म वि० सं० १९४० में भोयणीजी (गुजरात) में हुआ। पिता नाम-पितांबरदास। माता नाम-मोतीबहन। जन्म नाम लालचन्द भाई।

बालवय से ही आपके चित्त में वैराग्य वृत्ति थी। पढ़ने में भी बड़े तीव्र बुद्धिशाली थे। वि० स० १९५९ में आचार्य श्री विजय कमलसूरिजी के पास बोरू गाँव में दीक्षित हुए। आपकी अद्भुत प्रतिभा, बुलन्द आवाज, वाणी की मधुरता पूर्ण प्रखर व्याख्यान शैली से प्रसन्न हो आचार्य श्री ने आपको सं० १९७१ में "जैन रत्न व्याख्यान वाचस्पति" की पदवी से विभूषित किया। तथा सं० १९८१ को छाणी (गु०) में आचार्य पद प्रदान किया।

आप षड़ दर्शनों के पारगामी विद्वान हैं। तथा महान् साहित्य सेवी हैं। आप श्री द्वारा रचित 'वैराग्य रस मंजरी, तत्व न्याय विभाकर, सूत्रार्थ मुक्तावली, द्वादशारनम चक्र० आदि ग्रन्थ अपनी खास विशेषता रखते हैं। इनके अतिरिक्त मूर्ति मंडन, अविद्यांधकार मार्तण्ड, मत मीमांसा, दयानन्द कुतर्क तिमिर तरणि, देव द्रव्य सिद्धी आदि ग्रन्थ सरल एव जैन शासनोपयोगी हैं।

आपकी कवित्व शक्ति में भक्ति एवं वैराग्य भरा हुआ है। पद्य बद्ध निम्न रचनाएं हैं—नूतन पूजा संग्रह, संस्कृत चैत्य वन्दन स्तुति, नूतन सज्झाय संग्रह आदि।

एक प्रखर व्याख्याता, विद्वान साहित्य कार होने के साथ साथ दिग्गज शास्त्रार्थ शिरोमणी भी हैं। आपने कई स्थानों पर आर्य समाजियों एवं अन्य मत वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया है और इस प्रकार जैन शासन का गौरव बढ़ाते हुए महा प्रभाविक जैनाचार्य सिद्ध हुए हैं।

शिष्य समुदाय

आपकी शिष्य परम्परा में आचार्य श्री विजय गंभीरसूरिजी, आ० श्री विजय लक्ष्मणसूरिजी, आ० श्री वि० भुवन तिलकसूरिजी आदि तीन आचार्य हैं। तथा उपाध्याय जयन्त विजयजी, पं० नवीन विजयजी गणि, पं० प्रवीण वि० आदि ६ गणिवर्य हैं। अन्य मुनिजन भी काफी बड़ी संख्या में हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजयलक्ष्मणसूरिजी म.

आ० श्रीमद् विजय लब्धिसूरिजी के पट्ट प्रभावक आ० श्री विजयलक्ष्मणसूरीश्वरजी महाराज का जन्म सं० १९५३ में जावरा (मालवा) के ओसवाल जातीय मूलचंदजी की धर्म पत्नि धापूबाई की कुक्षि से हुआ। १७ वर्ष की वय में आ० श्री विजय लब्धिसूरिजी के पास दीक्षित हुए। दीक्षोपरान्त जैनागम, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष मंत्र शास्त्र आदि के विषयों पर गहन अध्ययन किया। कुछ ही समय में आप महा प्रभाविक जैनाचार्य बनगये।

श्री राजगोपालाचार्य, मैसूर नरेश सौराष्ट्र के राजप्रमुख भावनगर नरेश, ईडर नरेश आदि कई राजा महाराजा आपसे अत्यन्त प्रभावित हुए। कई राज्यों के मंत्री गण, प्रोफेसर तथा उच्चाधिकारी गणों ने भी आपके प्रति अपार श्रद्धा प्रकट की है। कई स्थानों की नगर पालिकाओं ने आपको अभिनन्दन पत्र प्रदान किये हैं। आप श्री के उपदेश से अनेकों मांसाहारियों ने मांसाहार, शराब, जुआ पर स्त्री गमन आदि दुर्व्यसनों का त्याग किया है।

अनेक स्थानों पर जैन मन्दिर, तथा उपाश्रय बन्धे हैं। दादर में श्री आत्म कमल लब्धिसूरीश्वरजी जैन ज्ञान मन्दिर निर्माण हुआ है जिसमें हजारों की संख्या में प्राचीन एवं शास्त्रादि ग्रन्थ संग्रहीत हैं।

दक्षिण देश में आप श्री ने विशेष उपकारी कार्य किये हैं जिससे 'दक्षिण देशोद्धारक' विरुद से विभूषित हैं। २० हजार मील का पाद प्रवास का वर्णन 'दक्षिण मां दिव्य प्रकाश' सचित्र ग्रन्थ प्राप्त है। आप श्री के पट्ट शिष्य शताधिक पं० मुनि श्री कीर्तिविजयजी प्रख्यात मुनिवर हैं।

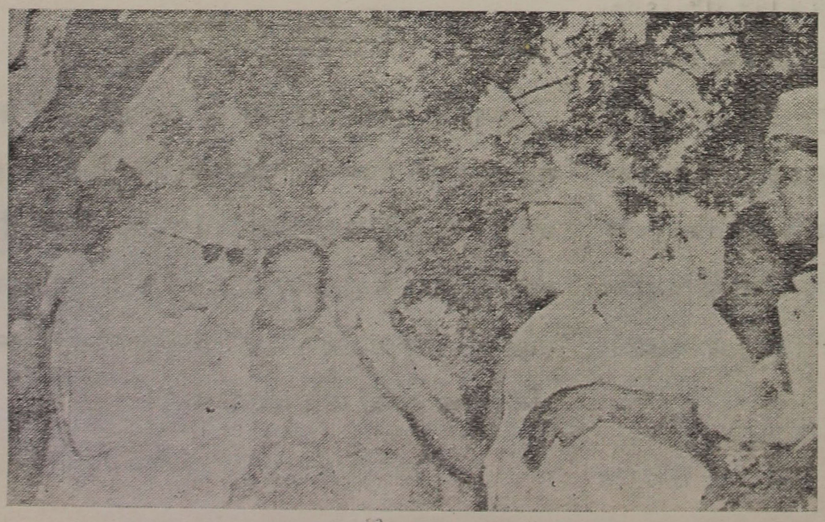

आ० श्री विजय लक्ष्मण सूरीजी भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य के साथ धर्म चर्चा कर रहे हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शतावधानी मुनि श्री कीर्तिविजयजी

आपका जन्म गुजरात के स्थंभनपुर गांव में पिता मूलचन्द भाई तथा माता खीमकोरबाई की कुक्षि से स० १६७२ चैत्र वदी अमावस्या के दिन हुआ। संसारी नाम कान्तिलाल। सं० १६८८ में चाणस्मा में आचार्य श्री विजय लक्ष्मणसूरिजी के पास दीक्षा अंगीकार की।

अल्पकाल ही में आप एक प्रसिद्ध वक्ता, कवि तथा संगीतज्ञ के रूप में पहिचाने जाने लगे। सं० २०१३-१४ के बम्बई, दादर तथा अहमदाबाद में हुए आपके प्रवचनों ने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध बनाया। सं० २००६ में बंगलोर के चातुर्मास में आपको "कविकुल तिलक" के विरुद से सुशोभित किया गया। आपने कई सुन्दर रसीले स्तवन, पूजाएं तथा गहुंलियाँ युक्त पुस्तकें लिखी हैं तथा 'अमीनाबेण, संस्कारनी साडी, अर्हत् धर्म प्रकाश, अहिंसा, महावीर, स्वामी नुं जीवन चरित्र, दीवा दांडी, अनेक महान् विभूतिओ, अन्तर ना अजवाला, दक्षिणमां दिव्य प्रकाश आदि १०-१५ पुस्तकें लिखी हैं। अर्हत् धर्म प्रकाश का हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नडी, तामिल तेलगु एवं मराठी में अनुवाद छपे हैं।

एक अच्छे लेखक, कवि व्याख्याता होने के साथ साथ चमत्कारी शतावधानी हैं। अनेक स्थानों पर आपके शतावधान प्रयोग से लोग चमत्कृत हुए हैं।

२६ वर्ष की दीक्षा पर्यायी ये मुनिवर जैन शासन के गौरव वृद्धि हेतु सतत् प्रयत्न शील हैं।

पं श्री यशोभद्र विजयजी गणि

आप श्री का जन्म सं० १४५४ आसोज सुदी १३ को कच्छ सुथरी में हुआ। पिता का नाम शामजीभाई तथा माता का नाम सोहनबाई। जाति-ओसवाल गौत्र-छोड़ा।

आचार्य श्री विजय किस्तूर सूरिजी के पास सं० १६८७ माघ सुदी ६ को कलोल (गुजरात) में दीक्षा अंगीकार की।

आप श्री एक विद्वान व्याख्याता, साहित्य प्रेमी मुनिवर हैं। आप श्री के शुभ हस्त से कई स्थानों पर उपधान उजमणा, प्रतिष्ठा, उपाश्रय तथा वर्धमान तप खाते खुलवाने के कार्य हुए हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूज्य श्री मोहनलालजी महाराज की परम्परा का मुनि समुदाय

पूज्य श्री मोहनलालजी म०

जैन इतिहास में पूज्य श्री मोहनलालजी म० का व्यक्तित्व और उनका समय काल अपना विशेष महत्व रखता है। वे महान् श्रद्धेय लोकप्रिय पूज्य पुरुष हुए हैं। आपका विस्तृत जीवन चरित्र "महा प्रभाविक जैनाचार्य" शिर्षक विभाग में पृष्ठ ८५ पर दिया गया है।

शिष्य परम्परा

आपके शिष्य परम्परा में तपागच्छ तथा खरतर गच्छ दोनों मान्यता मानने वाले अभी विद्यमान हैं पर हर्ष है दोनों समुदायों में सद् भावना पूर्ण प्रेम है तथा पूज्य श्री मोहनलालजी के प्रति दोनों में अगाध श्रद्धा है। दोनों अपने को उनकी परम्परा का मानने में अपना गौरव मानते हैं।

पूज्य श्री के १० शिष्य थे-१ आनन्दमुनि २ जिनयशः सूरि ३ प्र० कांतिमुनि ४ पं० हर्षमुनि ५ राजमुनि ६ उद्योत मुनि ७ देवमुनि ८ हेम मुनि ९ गुमानमुनि १० कमलमुनि।

तपा गच्छीय मुनि

इनमें से नं० १ आनन्दमुनि ३ कांतिमुनि ४ हर्ष मुनि ६ उद्योतमुनि और १० कमलमुनि की परम्परा तपागच्छीय क्रिया करते हैं।

इनमें से ३ कांतिमुनि के नयमुनि, भक्ति, सौभाग क्षांति, गंभीर, कीर्ति मुनि आदि शिष्य प्रशिष्य हैं।

हर्ष मुनि के जयसूरि, पद्म मुनि रंग मुनि माणिक्य चन्द्रसूरि, देवमुनि, कनकचन्दसूरि, तथा। कनकचन्द सूरि के निपुण मुनि भक्ति मुनि तथा चिदानन्द मुनि एवं मृगेन्द्रमुनि हैं। उद्यो. मुनि के कल्याण मुनि, भक्ति मुनि हीर मुनि और सुन्दरमुनि आदि शिष्य प्रशिष्य हैं।

कमलमुनि के चिमन मुनि हैं।

खरतर गच्छीय मुनि

(१) पूज्य मोहनलालजी म० के शिष्य नं० १ जिन यशः सूरिजी ५ राजमुनिजी, ७ देवमुनिजी ८ हेममुनिजी तथा ९ वें गुमानमुनिजी की परम्परा खरतर गच्छीय क्रिया करते हैं।

(२) श्री जिनयशः सूरिजी के जिनऋद्धि सूरिजी पट्टधर हुए जिनके शिष्य गुलाब मुनिजी के शिष्य रत्नाकर मुनि तथा भानुमुनि विद्यमान हैं।

(३) राज मुनिजी के श्री जिनरत्न सूरि स्वर्गस्थ एवं लब्धिमुनि विद्यमान हैं। श्री जिन रत्नसूरि के गणि प्रेम मुनिजी, भद्रमुनि तथा हीरमुनि शिष्य तथा मुक्ति मुनि प्रशिष्य हैं।

(४) श्री लब्धिमुनि के मेघमुनिजी शिष्य हैं।

(५) देवमुनिजी और उनके शिष्य गणि भानमुनि स्वर्गस्थ हैं।

(६) हेममुनिजी के शिष्य केशरमुनिजी के शिष्य गणि बुद्धि सागरजी विद्यमान हैं। आपके ३ शिष्यों में से साम्यानन्द व रैवत मुनि हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० श्रीमद् जिन यशस्सूरिजी महाराज

पूज्य श्री मोहनलालजी म. के मुख्य शिष्य विहिता खिलागम योगानुष्ठान ५३ उपवास कर स्वर्ग प्राप्त महान् तपस्वी वर्तमान खरतर गच्छ संवेगी शाखा के आचार्य प्रवर श्री जिन यशस्सूरिजी म० का जन्म सं० १६१२ जोधपुर में हुआ। सं० १०४० में पूज्य श्री मोहनलालजी म० के पास दीक्षित हुए। सं० १६५६ में अहमदाबाद में गणि तथा पन्यास पद प्रदान किया गया। सं० १६६६ में बालूचर (मुर्शिदाबाद-बंगाल) में सूरिपद विभूषित किये गये।

आप एक महान् योगी, आत्म साधना में सतत् लीन रहने वाले महान तपस्वी संत थे। आपका सं० १६७० में महान् तीर्थ पावापुरीजी में स्वर्गवास हुआ। आपके पट्टधर आ० श्री जिन ऋद्धि सूरिजी म० हुए।

स्व० श्रीमद् जिन ऋद्धिसूरिजी म०

आपका जन्म सं० १६२६ में चुरु (बीकानेर) के पास लोहागरजी तीर्थ के निकट एक गांव में एक ब्राह्मण कुटुम्ब में हुआ। जन्म नाम रामकुमार था। आपकी बाल्यकाल से ही सांसारिक कार्यों से उदासीनता तथा पठन पाठन की ओर विशेष रुचि थी। इसी कारण आप चुरु चले आये और यहाँ बृहत खरतर गच्छ की मोटी गादी के यति श्री चिमनीरामजी म० के पास शिक्षा पाने लगे और १६३६ में चुरु में यति दीक्षा अंगीकार की। स० १६४६ में सिद्ध क्षेत्र (सौराष्ट्र) में आप संवेगी दीक्षा में दीक्षित हुए। सं० १६६६ लश्कर में गणि तथा पन्यास पद तथा सं. १६६५ में थाणा (बम्बई) में आचार्य पद विभूषित किये गये।

आप भी महा प्रभाविक जैनाचार्य हुए हैं। गुजरात बम्बई प्रान्त में आपके प्रति बड़ा भक्ति भाव था कारण इसक्षेत्र में आप श्री द्वारा अनेकों उपकारी कार्य हुए हैं। अनेक स्थानों पर धर्म प्रभावनार्थ जैन मन्दिर तथा उपाश्रयों का निर्माण कराया। बम्बई के पायाधुनीस्थित महावीर स्वामी के मन्दिर में घंटाकर्ण की मूर्ति स्थापित की। आप श्री के उपदेश से निर्मित थाणा का विशाल जैन मन्दिर आज तीर्थ भूमि बना हुआ है। ऐसे महान् प्रभावक आचार्य सं० २००८ को बम्बई (पायधुनी) पर स्वर्ग सिधारे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० श्रीमद् जिन रत्नसूरिजी महाराज

जन्म सं० १९३८ लायजा (कच्छ)। दीक्षा सं० १९५८ रेवदर(आबू)। गणिपद सं० १९६६ लश्कर (ग्वालियर)। आचार्य पद सं. १९९६ पायधुनी बम्बई। स्वर्गवास सं० २०११ मांडवी (कच्छ)।

आप महान् अध्यवसायी। तपस्वी एवं निरन्तर साहित्य सृजन में लीन महा पुरुष थे। आपने अनेक प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन कर उनके भावार्थ को ग्रन्थित किया है। आप महान् साहित्यकार थे।

उपाध्याय श्री लब्धि मुनिजी

जन्म सं० १९३६ मोटी खाखर (कच्छ)। पिता का नाम-दनाभाई खीमराज। माता का नाम-नाथी बाई। संसारी नाम-लधा भाई। जाति-ओसवाल जैन देढ़ीया। दीक्षा-सं० १९५८ रेवदर (सिरोही), उपाध्याय पद सं० १९९६ पायधुनी बम्बई। गुरु श्री जिन रिद्धिसूरिजी महाराज। दीक्षा गुरु श्री राजमुनि जी। पूज्य मोहनलालजी म० की खरतरगच्छीय परम्परा के वर्तमान में आप ही शिरोमणि मुनि हैं।

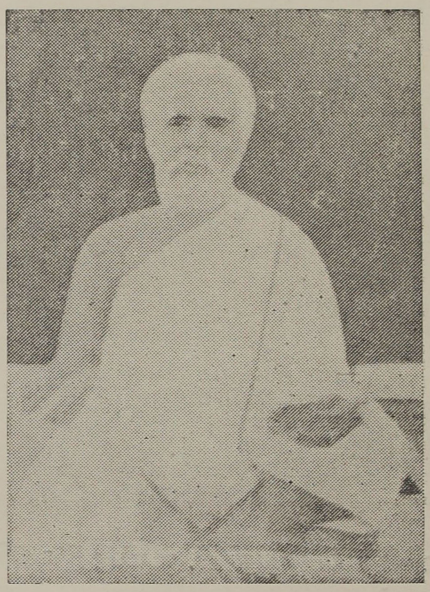

उपाध्याय श्री लब्धि मुनिजी

एक महान् त्यागी, तपस्वी शान्त मूर्ति एवं समन्वय वादी विद्वान के रूप में आज आप समस्त जैन समाज के श्रद्धा भाजन बने हुए हैं।

आप संस्कृत व प्राकृत भाषा के महान् विद्वान होने के साथ साथ महान् साहित्यकार विद्वान हैं। आप द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—कल्प सूत्र की टीका, खरतरगच्छ नी मोटी पट्टावली, नव पदजी नी थोही तथा दादासाहब नु स्तोत्र, श्री श्रीपाल चरित्र श्लोक बद्ध, रत्न मुनि नु चरित्र संस्कृत में, आत्म भावना, चौवीस प्रभुजी ना चैत्य वदंन आदि कई स्तुति ग्रन्थ श्लोक बद्ध बनाये हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बार पर्वनी कथा, सुरुढ़ चरित्र, जिनदत्त सूरिजी, मणिधारी जिन चन्द्रसूरिजी, जिन कुशलसूरिजी, अकबर प्रति बोधक जिन चन्द्रसूरिजी के हिन्दी ग्रन्थ का संस्कृत में श्लोकबद्ध अनुवाद। जिनयशसूरि तथा जिन रिद्धीसूरिजी म० के श्लोक बद्ध जीवन चरित्र। आदि कई ग्रन्थों की संस्कृत में श्लोक बद्ध रचनाएं कर साहित्य जगत में अपूर्व श्रद्धा प्राप्त की है।

अद्भुत साहित्य सेवी होने के साथ २ आप श्री के शुभ हस्त से पनासली (मालवा) तथा कच्छ मांडवी के जैन मन्दिरों में अंजनशलाका व प्रतिष्ठा महोत्सव कराये हैं।

आपके विशेष सहयोग रूप पूज्य बुद्धिमुनिजी भी समाज में बड़े आदरणीय मुनिवर बने हुए हैं। जैन शासन की गौरव वृद्धि की ओर विशेष लक्ष्य रखते हैं।

इस समुदाय में साध्वी जी श्री भाव श्री जी की शिष्या आनन्द श्री जी की शिष्या सद् गुण श्री जी, रूप श्री जी, लाभ श्री जी तथा राज श्री, रत्न श्री जी तथा विनय श्री जी आदि हैं।

श्री चिदानन्दमुनिजी तथा श्री मृगेन्द्र मुनिजी

[संसारी पिता-पुत्र]

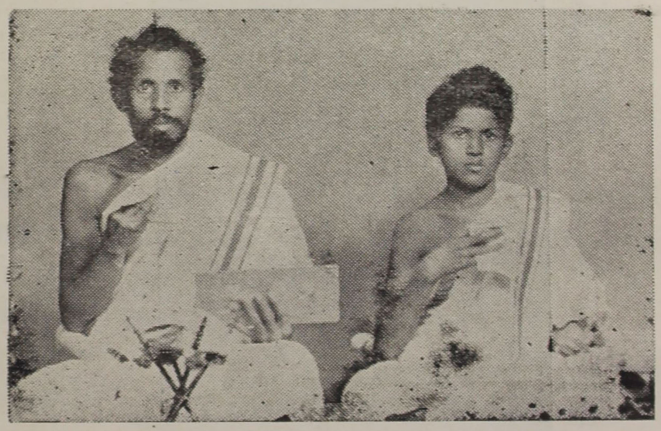

श्री चिदानन्द मुनिजी का संसारी नाम चिमनलालजी तथा मृगेन्द्रमुनि का सं० नाम महेन्द्र कुमार है। जन्म-क्रमशः सं० १९६९ वैशाख बदी १० गांव सूरत, सं० १९९३ पौष सुदी १५ गांव सगरासपुरा (गुजरात)। चिदानन्द मुनिजी के पिता का नाम शा० हीराचन्द आशा जी तथा मृगेन्द्रमुनि के पिता का नाम शा० चिमनलाल हीराचन्दजी था। माता का नाम क्रमशः दिवाली बेन तथा गजरा बेन। जाति बीसा ओसवाल। पिता पुत्र तथा गजरा बेन (पत्नी श्री चिमनलालजी) तीनों ने सं० २००३ वैशाख वदी ११ को गांव पांचेटया (राजस्थान) में पूज्य पन्यास श्री निपुण मुनि के वरद हस्त से दीक्षित हुए।

श्री चिदानन्द मुनिजी का ध्यान समाजोन्नति की ओर विशेष रहता है। समाज संगठन और शिक्षा प्रचार के लिये सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। आप ही के उपदेश से धूलिया में पाठशाला स्थापित हुई और अच्छा कार्य कर रही है। इसी तरह सिरपुर, नेर, गौतमपुरा, देपालपुर, भोपाल आदि कई स्थानों की समाजों में एक नवीन जागृति आकर धार्मिक शिक्षण की व्यवस्थाए हुई है। आप एक उच्चकोटि के विद्वान लेखक भी हैं।

९ वर्ष की अल्पायु में ही दीक्षित बाल मुनि मृगेन्द्र जी भी व्याकरण, न्याय जैनागम विषयक ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा ज्ञानोपार्जन में सतत् लीन रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आगमोद्धारक आचार्य श्रीमद् विजय सागरनन्द सूरिश्वरजी म० का मुनि समुदाय

आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानन्दसूरिजी का जीवन परिचय 'महाप्रभाविक जैनाचार्य' विभाग में पृष्ठ ८८ पर दिया गया है। आपके २५ शिष्य थे। आपके वर्तमान मुनि समुदाय की सूची पृष्ठ ११६ पर देखिये।

आचार्य हेमसागर सूरीश्वरजी महाराज

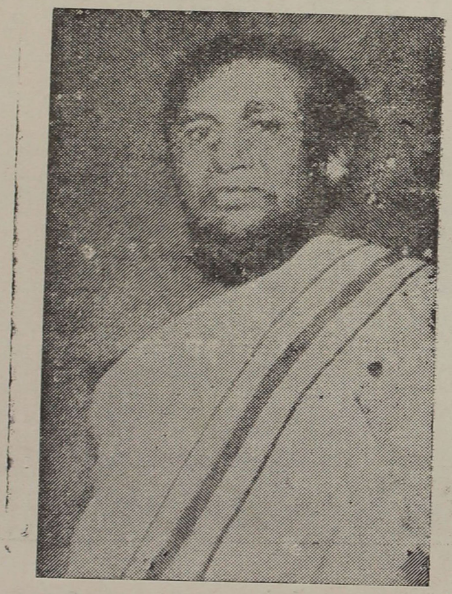

आप आगमोद्धारक आचार्य श्रीमद् विजय आनंद सागर सूरीश्वरजी के प्रधान शिष्यों में से वर्तमान में एक प्रसिद्धी प्राप्त जैनाचार्य हैं।

आप श्री के शुभ हस्त से कई स्थानों पर प्रतिष्ठाएं उपधानतप उजमण, उद्यापन आदि अनेक धर्म कार्य होते रहते हैं।

साहित्य सृजन और शिक्षा प्रचार की ओर भी आपका विशेष लक्ष्य है।

मुनि श्री प्रबोधसागरजी महाराज

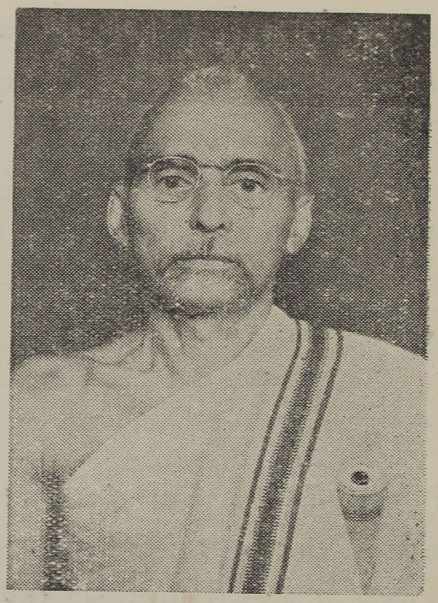

जन्म सं० १९६३ ज्येष्ठ शुक्ला ६ कपड़वंज। संसारी नाम पोपटलाल। पिता लल्लुभाई। माता का नाम प्रधानबाई। जाति–बीसा नीमा जैन। पन्यास जी श्री विजयसागरजी गणि के पास सं० १९८७ में आषाढ़ शुक्ला ६ को दीक्षा अंगीकार की।

सारा परिवार संयम मार्ग पर

आप श्री का सारापरिवार संयम मार्ग पर प्रवर्तित है। प्रारम्भ में आपकी माता ने यह मार्ग अपनाया। बाद में मुनि प्रबोध सागरजी मुनि बने। आपके बाद आपकी स्त्री और लड़की दोनों ने संयम मार्ग ग्रहण किया। थोड़े ही वर्षों बाद आपके छोटे भाई ने अपनी पत्नी और एक कन्या के साथ संयम मार्ग स्वीकारा। आपके संसारी बड़े भ्राता जिनका वर्तमान में नाम बुद्धिसागरजी है इन्होंने, इनकी पत्नी ने और इनकी दो कन्याओं ने दीक्षा अंगीकार की।

मातृ पक्ष में भी कई बहिनों आदि ने भी दिक्षाएं ली हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० आचार्य श्री विजयसुरेन्द्रसूरीश्वरजी
[डेहला वाला]

आपका जन्म बनासकांठा (गु०) के कुवाला ग्राम में का० शु० २ सं० १९५० को हुआ नाम शिवचन्द रक्खा गया। सं० १९६९ पौ० व० १० को पाटन (गु.) में उपाध्याय श्री पं० धर्मविजयजी गणि के पास दीक्षा अंगीकार की। सं० १९९९ मगसर सुदी ५ को योगोद्वहन पूर्वक गणि तथा पन्यास पद प्रदान किया गया।

सं० १९९० में साधु सम्मेलन के पश्चात् उ० धर्म विजयजी के स्वर्गवास होने पर संघ की जिम्मेवारी आप पर आई। आचार्य पदवी धारक नहीं बनना चाहने पर भी संघ के आगे वानों की अत्यन्त आग्रह भरी विनति पर आप सं० १९९९ में फालगुन कृष्णा ६ का राजनगर जूनागढ़ में आचार्य पद से विभूषित किये गये। परन्तु काल की विचित्र गति है। आचार्य बनने के ६ वर्षों बाद ही सं० २००५ कार्तिक वदी ४ को ११॥ बजे राजनगर में आपका स्वर्गवास हुआ। गुजरात सौराष्ट्र कच्छ आदि प्रदेशों में आपका बड़ा प्रभाव था आपके पट्टधर वर्तमान में यशस्वी आचार्य श्री विजय रामसूरीश्वरजी म० विद्यमान हैं।

बाल ब्रह्मचारी
आचार्य श्री विजयरामसूरीश्वरजी म.

आपका जन्म सं० १९७३ महासुदी पूनम के दिन अहमदाबाद में श्री भलाभाई की धर्मपत्नी गंगाबाई (वर्तमान में साध्वी श्री सुनन्दा श्री जी) की कुक्षि से हुआ। नाम रमण लाल रक्खा गया।

बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृति वैराग्य मयी थी। सं० १९८६ वैशाख वदी १० के दिन डेहलाना उपाश्रय अहमदाबाद में आचार्य श्री सुरेन्द्र सूरीश्वरजी के पास दीक्षा अंगीकार की। अब रमणलाल से आपका नाम राम विजय रक्खा गया।

कुछ ही समय बाद आपकी माता ने भी साध्वी जी श्री चंपा श्री जी के पास दीक्षा अंगीकार कर ली और सुनन्दा श्री जी बन गई।

रामविजयजी ने अल्प समय में ही आचार्य श्री तथा उनके शिष्य रत्न मुनि श्री रविविजयजी की सुदेखरेख में अनेक धर्म ग्रन्थों और जनागमों का गहन अध्ययन कर अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। अल्पायु में ही विशाल ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आप में किंचित मात्र अभियान नहीं घुस पाया। आचार्य श्री के स्वर्गवास के पश्चात् सं० २००७ वैशाख सुदी पूनम के दिन आप आचार्य पद पर विभूषित किये गये।

आचार्य बन जाने पर भी आप में निराभिमानता, सरलता और मधुरता आपके जीवन क्रम की महान् विशेषताएं बनी हुई हैं।

आप श्री ने उपदेश द्वारा गुजरात, राजस्थान मारवाड़ आदि क्षेत्रों में अनेक भव्य जीवों को जैन धर्म के प्रति श्रद्धालु बनाया हैं। शासनोन्नति के अनेक कार्य हुए हैं। सिरोही, पांडोव चंडवाल तथा बिठोड़ा के जैन मन्दिरों में हुए भव्य उद्यापन महोत्सव आज भी सिरोही जिले की समाज याद करती है। इसी प्रकार और भी अनेक स्थानों पर उपधान प्रतिस्ठाएं होती रहती हैं। धार्मिक शिक्षा की ओर भी आपका विशेष लक्ष्य है। और कई जगहों पर धार्मिक पाठशालाएं खुलवाई हैं।

सिरोही के जैन पाठशाला की उन्नति हेतु आपके प्रयत्न प्रसंनीय हैं। साबरमती जैन पाठशाला, अहमदाबाद में श्री सुरेन्द्रसूरि तत्वज्ञान पाठशाला, कुवाला जैन पठाशाला आदि आपही के उपदेश का फल है।

आपका शास्त्राभ्यास भी अति गहन है।

पन्यास श्री अशोक विजयजी गणि

आपका जन्म सं० १९६९ भादपद शुक्ला को दस्सा वणीक जैन श्री वीरचन्दजी मगनलाल की धर्मपत्नी श्री जुबल बेन की कुक्षि से हुआ। संसारी नाम श्री चन्द था। संवत् १९८७ कार्तिक वदी ११ को

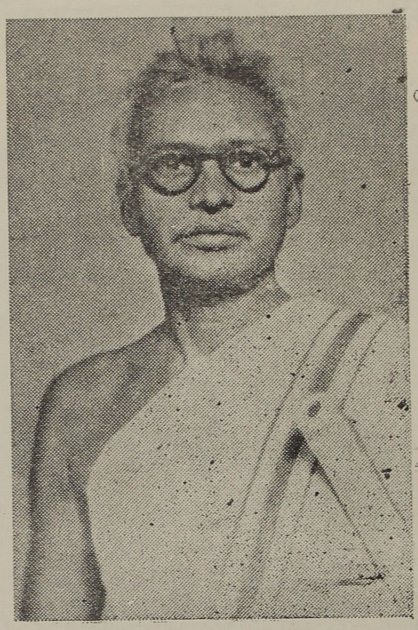

डेहलाना उपाश्रय वाला उपाध्याय श्री धर्मविजयजी गणि के पास दीक्षा अंगीकार की।

आप बड़े ही शान्तमूर्ति, तपस्वी और ज्ञानाभ्यासी न्याय व्याकरण षड़ दर्शन और जैना गमों के अच्छे जानकार हैं।

आपके शुभ हस्थ से उपाधान, प्रतिष्ठा, दीक्षा, बड़ी दीक्षा आदि कई पवित्र धार्मिक अनुष्ठान हुए हैं तथा होते रहते हैं।

पन्यास श्री राजेन्द्रविजयजी गणि

जन्म सं० १९७० फागुन वदी ११ राधनपुर। पिता-गिरधारीलाल त्रिकमलाल। (सिद्धीगिरी की यात्रार्थ जाते हुए बोटाद में जन्म हुआ) माता का नाम जुबिलबेन। जाति—बीसा श्रीमाली। दीक्षा सं० १९९२ मिगसर सुद ३ पालीताणा। दीक्षा गुरु-आचार्य श्री सुरेन्द्रसूरीश्वरजी म० (डेहला वाला)।

आप बड़े शान्तसूर्ति, तपस्वी एवं निरन्त ज्ञान ध्यान मग्न रहने वाले मुनि हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजयनीतिसूरिजी महाराज का मुनि समुदाय

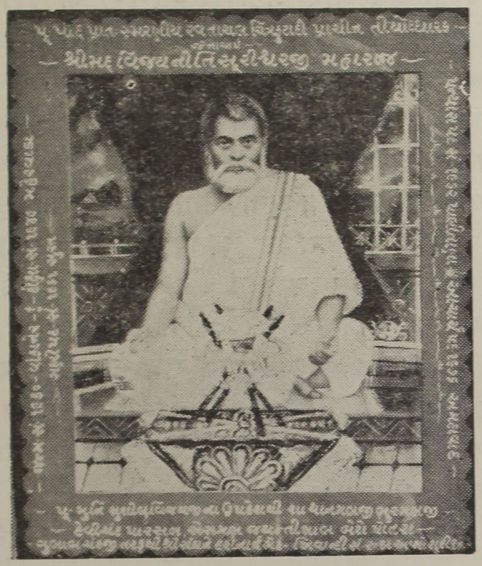

आचार्य श्री विजय नीति सूरीश्वरजी म०

स्व० आचार्य श्री विजय नीति सूरीश्वरजी म० का जैन शासन प्रभावना की ओर विशेष लक्ष्य रहा है। आपकी पूर्व परम्परा के लिये पृष्ठ ११३ (७) देखें।

आपका जन्म सं० १६३० पौष शुक्ला १३ को बांकानेर में हुआ। पिता फूलचन्दजी माता चोथीबाई। जाति बीसा श्रीमाली संसारी नाम निहालचन्द। दीक्षा सं० १६४६ आषाढ़ शु० ११ मेरवाड़ा। गुरु पं० श्री भावविजयजी गणि। सं० १६६१ मि० शु० ५ पालीताणा में गणिपद तथा सं० १६६२ का० व० ११ पालीताणा में पन्यास पद। सं० १६७६ मिं० शु० ५ अहमदाबाद में आचार्य पद।

आप श्री के उपदेशों से गिरनार तथा चित्तौड़ के जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। अनेक स्थानों पर मन्दिर पाठशालाएं तथा विद्यालय स्थापित हुए। उपधान प्रतिष्ठा आदि अनेक धार्मिक कार्य हुए।

सं० १६६७ पौ० व० ३ को एकलिंगजी में स्वर्ग-वासी हुए। आपकी परम्परा में आ० विजय हर्षसूरिजी और आपके प्रशिष्य आ० महेन्द्रसूरिजी विद्यमान हैं।

आचार्य विजय हर्ष सूरीश्वरजी म०

जन्म थांवला (जालौर) में सं० १६४१ फा० शु० ५। पिता अचलाजी, माता भूरीबाई। जाति-दसा ओसवाल। सं० नाम हुक्माजी। दीक्षा सं० १६५८ फा० शु० ६ को दाहोद। गुरु विजयनीति सूरिजी। पन्यास पद १६७० मि० शु० १५ राधनपुर। आचार्य पद १६८८ जे० शु० ६ फलौदी।

आचार्य विजय महेन्द्र सूरिजी म०

जन्म सं. १६५३ आसोज वदी ३ रतलाम, संसारी नाम मिश्रीलाल। पिता चेनाजी, माता दलीबाई। बीसा पोरवाड़। दीक्षा तिथि सं० १६६६ का० व० ४ राजपुर अहमदाबाद। गुरु आ० विजय हर्ष सूरिजी। गणि पद १६८६ मिं० शु० ५ अहमदाबाद। पन्यास पद १६८७ का० व० ८ सीपोर। आचार्य पद फा० व० ६ अहमदाबाद।

आप श्री के शुभ हस्त से कई स्थानों पर उपधान प्रतिष्ठा आदि धार्मिक तथा समय २ पर कृत्य हुए हैं होते रहते हैं।

मुनि श्री हर्ष विजयजी म०

जन्म सं० १६६५ आसोज वदी ६ बेगम (गुज०) संसारी नाम भूमचन्द भाई। पिता रंगजी भाई, माता जनुबाई। जाति-बीसा श्रीमाली संघणि। दीक्षा सं० १६८५ महावदी ११ पालीताना। गुरु आ० विजय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भद्रसूरिजी के शिष्य सुंदर वि० के शिष्य पन्यास श्री चरणविजयजी गणि।

आपका प्राचीन ग्रन्थों की शोधखोज व पठन पाठन की ओर विशेष लक्ष्य है। कई स्थानों पर प्रतिष्ठा-उपधान आदि धार्मिक कृत्य भी कराये हैं। आपके उपदेश से पाठशालाएं भी खुली हैं। आपके शिष्य मुनि श्री सुदर्शन विजयजी हैं। जिनका जन्म सं० १९७६ मि० वदी अमावस तखतगढ़ में हुआ। पिता हंसाजी, माता-मणी बेन। सं० ना० तखत मल जी। जाति-पोरवाड़ चौहान। दीक्षा-सं० २००६ म० सु० १ भोयणी जी तीर्थ। गुरू-आ० महेन्द्रसूरिजी।

मुनि श्री सुशील विजयजी महाराज

आप आ० श्री महेन्द्रसूरि के प्रधान शिष्यों में हैं और जैन शासन प्रभावना की ओर विशेष लक्ष्य रखते हैं। आपका जन्म सं० १९७० पौष वदी १४ को सिरोही (राजस्थान) के आलपा ग्राम मे बीसा ओसवाल शिशोदिया गौत्रीय शा० हजारीमलजी के पुत्र रूप में माता भीखी बाईजी कुक्षि से हुआ। संसारी नाम-फौजमल। सं० २००७ जेठसुदी ३ (गु०) को दीक्षा हुई और जेठसुदी ७ (गु०) को बड़ी दीक्षा पालीताणा में हुई। आचार्य श्री के साथ आपने मारवाड़ के ग्रामों में विहार किया। कुछ ही समय में विशाल ज्ञानाभ्यास के कारण आप समाज में लोक प्रिय और प्रभावशाली मुनि बन गये। आपके उपदेशों से आलपा, रामसेन, जूना जोगा पुरा आदि कई स्थानों पर वर्षों से चले आ रहे कुसम्प मिटे हैं। सिरोही के बुगांव में चालीस वर्षों से बने मंदिर की रूकी हुई प्रतिष्ठा को आपने सं० २००९ में करवाई।

सं० २००९ का चातुर्मास रामसेन (सिरोही) में हुआ। चतुर्मास बाद चांदुर वाले शा० तेजमल दाना जी को शिष्य रूप में प्रवर्जित बनाया और मुनि तेज विजयजी नाम रखा।

सं० २०१० माघशुक्ला १३ को आ० श्री विजय हर्ष सूरीश्वरजी की निश्रा में इन्हें बड़ी दीक्षा दी और नाम तेजप्रभ विजयजी रक्खा।

मुनि श्री तेजप्रभ विजयजी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री सुशील विजयजी एक क्रियाशील ज्ञान वान मुनि होने के साथ साथ बड़े समाज सुधारक भी हैं। दीक्षोपरान्त आपका विहार क्षेत्र प्रायः मारवाड़ ही विशेष रहा है और आपके उपदेशों से अनेक स्थानों पर कुसम्प मिट कर सु संगठन स्थापित हुए हैं। आपके उपदेशों से कई तीर्थ यात्री संघ निकले। जावाल में वर्धमान तप आयम्बिल खाता चालू हुआ तथा गांव बाहर आदिश्वर भगवान के मंदिर में भगवान के तेरह भवों का कलात्मक पट्ट बना है और भी अनेक उपकारी कार्य हुए हैं।

मुनिराज श्री तिलकविजयजी

जन्म तिथि १६५५ आसोज शुद २ को पचपदरा (भागल)। पिता धनराजजी। माता लक्ष्मीबाई। जाति ब्राह्मण गौत्र सकांणा। दिक्षा १६७२ जेठ वदि ५ सिलदर। यति दिक्षा गुरु गुलाब विजयजी। बडी दिक्षा गुरु आ० श्री महेन्द्र सूरिजी। १६८५ माह शुद ५ मंडार। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर विद्वान हैं।

आपके उपदेशों से कई स्थानों पर फूट मिटी है। तथा प्रतिष्ठा महोत्सव, संघ यात्रा के कार्य हुए हैं। कई जगह आयंबिल खाता खुलवाये हैं। आप बड़े तपस्वी हैं।

मुनि श्री लक्ष्मी विजयजी म०

आपका जन्म मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत बादनवाड़ी नामक गांव में हुआ। आपने विशाल परिवार से नाता तोड़ कर सं० १६६६ की साल में नाकोडा तीर्थ स्थान पर आचार्य श्री० हिमचल सूरिजी के पास दीक्षा स्वीकार की। उस समय आपकी उम्र करीब ४० के उपर थी। आप कार्यवश वादनवाडी पधारे तो आपकी पूर्व की पत्नी ने गोचरी के बहाने ऐसा षड्यंत्र रचा कि लक्ष्मीविजयजी के कपड़े उतरवा दिये, आपको करीब एक मास अनिच्छा से भी घर में रहना पड़ा। किसी प्रकार विश्वास देकर धन कमाने के बहाने से पालीताणा जाकर आचार्यदेव श्रीमद् विजय उमंग सूरीश्वरजी के हाथ से मेवाड़ केसरी आचार्यदेव के शिष्य के नाम से पुनः दीक्षा सं० १६६८ के मार्ग शीर्ष मास में अंगीकार की, आप हृदय के बड़े सरल एवं भद्रिक हैं। उग्र तपस्वी और उग्र विहारी है, बोलने में बडी मधुरता टपकती है। जालौर जिले की जैन समाज में आपके प्रति काफी श्रद्धा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पंन्यास श्री रंजन विजयजी गणिवर

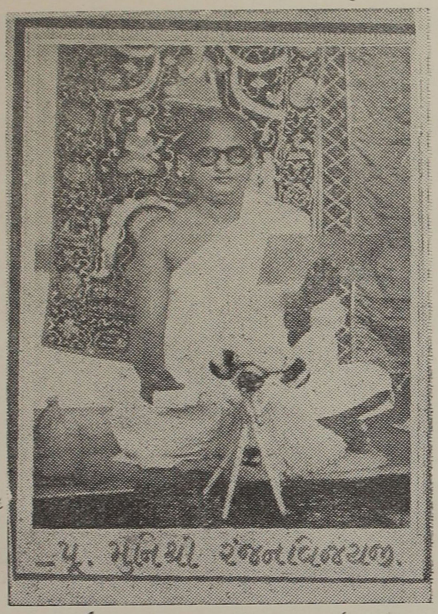

संसारी नाम—रतनचंद । जन्म तिथि—सं० १९७३ पौष वद ८ मालवाडा (राजस्थान)। पिता का नाम—मलूकचंद भाई। माता का नाम—नवल बहन। जाति—विसा पोरवाड़। दीक्षातिथि—सं० १९९४ जेठ वद २। गुरु का नाम—पंन्यास श्री तिलक विजयजी गणिवर भाभरवाले। आपने अब तक प्रतिष्ठा तीन, उपधान एक, वर्धमान आयंबिल तप खाता की स्थापना जिर्णोद्धार एक, जैन पुस्तकालय १ की स्थापना, शान्ति-स्थात्र ध्वजा दंडा रोपण दीक्षा आदि अनेक शुभ कार्य कराये हैं। आपकी सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य—श्री विजय शान्तिचंद सूरीश्वरजी हैं।

मुनि श्री भद्रानंद विजयजी

संसारी नाम—लालचंद। जन्म स्थान—वांखली (मारवाड) पिता का नाम खेतशी भाई। माता का

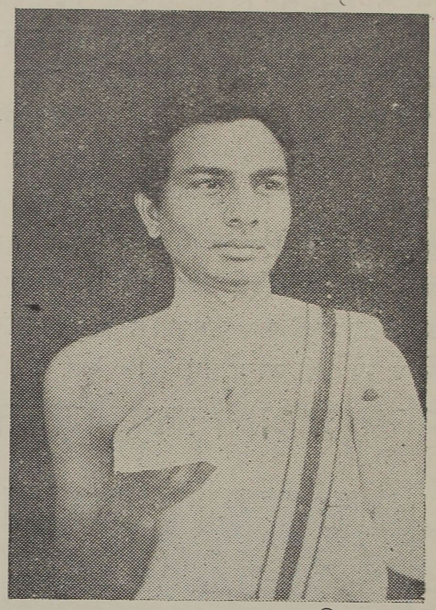

मुनि श्री भद्रानंद विजयजी

नाम—कुमकुम् बहन। जाति—विष्णु। दीक्षातिथि—वि० सं० २००५ मागशर सुदी ४ शनिवार। गुरू का नाम—पन्यास श्री रंजन विजयजी गणिवर्य।

मुनि श्री विनयेन्द्र सागरजी

जन्म—स० १९५३ मिंगसर सुदी ३ कच्छ सुथरी। पिता—गोविन्दजी, माता चंपा बाई। जाति कच्छी दरसा ओसवाल जन्म नाम वसनजी। दीक्षा सं० २००२ अषाढ सुद ३ मोरबी गुरू—आ०—श्री गुण सागर जी महाराज।

आप बड़े ही तपस्वी हैं। कई बार वर्षा तप किये हैं तथा २४ वर्ष से लगातार एकासणा कर रहे हैं। ६ वर्ष से वर्धमान तप की ओली कर रहे हैं। वृद्धा-वस्था के कारण कोठारा (कच्छ) में स्थिर वास है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजय धर्म सूरिजी म०

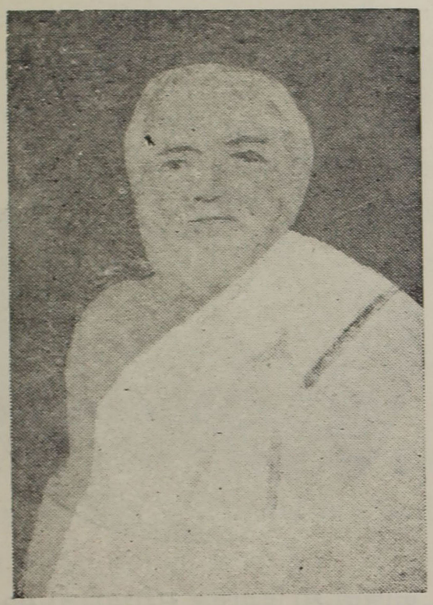

आचार्य श्री मद् विजय प्रतापसूरीश्वरजी के पट्टधर आ० विजय धर्म सूरिजी, जैन श्रमण संघ में कर्मशास्त्र तथा द्रव्यानुयोग के प्रखर विद्वान बहुत ही अल्प है, उनमें से आप एक हैं। आपकी वक्तृत्व शैली भी अनोखी है। आप श्री ने कर्मशास्त्र सम्बन्धी कुछ सुन्दर रचनाएं की हैं।

आपका जन्म वढ़वाण (सौरास्ट्र) में सं० १९६० में हुआ। दीक्षा सं० १९७६ में तथा पन्यास पद सं० १९९२ में सिद्धक्षेत्र में। आ० श्री विजयमोहन सूरिजी के शुभ हस्त से उपाध्याय पद प्रदान किया गया तथा भायखला बम्बई में हुए भव्य उपधान महोत्सव के शुभ प्रसंग पर आचार्य पद प्रदान किया गया।

आपके मुनि यशोविजयजी, जयानन्द विजयजी, कनकविजयजी सूर्योदय विजयजी आदि न्याय व्याकरण शास्त्र के विद्वान शिष्य हैं।

मुनिराज श्री सिंह विमलजी गणि

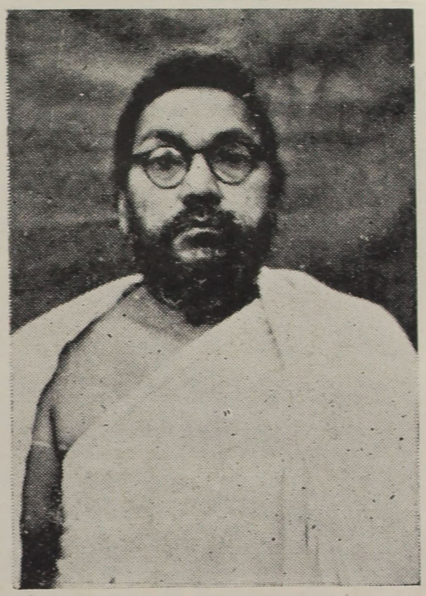

मूर्तिपूजक विमल गच्छ। संसारी नाम—गणेश मलजी जन्म सं० १९६७ मिगसर सुदि ११ जन्म स्थान निपल राणी स्टेशन के पास। पिता का नाम—किस्तूरचन्दजी। माता का नाग—केशरबाई जाति—ओसवाल श्री श्रीमाल। दीक्षास्थान विशलपुर (एरनपुरा १९९५ असाढ़ सुदि ३ गुरू आचार्य श्री हिम्मतविमल सूरीश्वरीजी।

आप बड़े मधुर व्याख्यानी और जैनसमाजोन्नति के लिये विशेष लक्ष्य रखते हैं। आप श्री के उपदेशों से कई गांवों में कुसम्प मिटे हैं। कई स्थानों पर प्रतिष्ठऐं जिर्णोद्धार, उपधान, उद्यापन हुए हैं। कांठाप्रन्त में जैन धर्म का प्रबल प्रचार किया। थली और मारवाड़ आपका मुख्य विहार क्षेत्र है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मेवाड़ केसरी आचार्य श्री हिमाचल सूरीश्वरजी महाराज

स्म० पन्यासजी श्री हितविजयजी म०

आगम तत्ववेत्ता पन्यासजी श्री हितविजयजी महाराज के पट्टधर मेवाड़ केसरी श्रीनाकोडातीर्थोद्धारक बालब्रह्मचारी आचार्य पुंगव श्रीमद् बिजय हिमाचल सूरीश्वरजी म० का कुम्भलगढ़ जिले के केलवाडा ग्राम में सं० १९६४ में जन्म हुआ। आप बीसा ओसवाल थे आपका नाम हीराचन्द, पिता का नाम गुलाबचन्दजी, माता का नाम पनीबाई था।

जब आप तीन वर्ष के हुए उस सगय माता ने गौतम वि० नाम के यतिजी की भेंट कर दिया था, १२ वर्ष के हुए तब यतिजी का देहावसान होगया। गामगुडा श्री संघ ने आपका पालन पोषण किया। सं० १९८० में घाणेराव में मुनि श्री हेत विजयजी के पास आपकी दीक्षा हुई और हिम्मत विजय नाम

आचार्य श्री हिमाचल सूरीश्वरीजी म०

रक्खा गया। सं० १९८५ में पन्यास पद प्रदान किया गया।

आपने पन्यास बन जाने के बाद गुरुदेव की सेवा में रह कर काफी अनुभव प्राप्त किया और गुरुदेव की सेवा भी अपूर्व की। उस सेवा का ही यह प्रताप है कि आज एक महान् आचार्य पद पर प्रतिष्ठा पूर्वक हीरे की तरह चमक रहे हैं।

आपने अपने जीवन काल में अनेक प्रतिष्ठाएं, करवाई जामनगर की प्रतिष्ठा उल्लेखनीय है जहाँ बावन जिनालय है पर एक ही मुहर्त में एक साथ ११२ धजा दंड चढाये गये।

उदयपुर से पालीताणा का पैदल संघ, सुरेन्द्र नगर से जूनागढ़ का संघ, और तखतगढ़ से नाकोडा तीर्थ का संघ। आपके जीवन में उल्लेखनीय संघ निकले हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आप को सं० २००० की साल में पन्यासजी कमलविजयजी द्वारा आचार्य पद दिया गया, तथा २००४ में मेवाड़ केसरी पद से अलंकृत किया गया। मेवाड़ प्रान्त में इतना उपकार किया है कि वहां के लोग कदापि नहीं भूल सकते।

मजेरा जैन विद्यालय की जड़ आपने ही मजबूत की है। कराई, समीचा, उसर आदि गांवों में नवीन जैन मन्दिरों का निर्माण भी आपने करवाया है अनेकों प्राचीन जिन मन्दिरों का उद्धार आपने अपने उपदेश द्वारा करवाया है जिसमें नाकोडा तीर्थ की घटना विशेष प्रसिद्ध है।

आप ही के अथाग परिश्रम का फल है कि श्री हित सत्क ज्ञान मन्दिर का नवीन भवन निर्माण हो गया है। प्रतिष्ठा होने की तैयारी है।

घाणेराव का नूतन उपाश्रय, तथा उदयपुर का आंबिलभवन, तथा रिच्छेड का जैन उपाश्रय, मजेरा का जैन उपाश्रय यह सब आप के उपदेश का परिणाम है। आप ज्योतिष शिल्पशास्त्र तथा आगम ग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान हैं।

आचार्य श्री का पहले नाम हिम्मतविजयजी था मगर आचार्य पदवी के समय परिवर्तन कर हिमाचल सूरिजी रक्खा गया।

आपके शिष्य परिवार में मुनि श्री भव्यानन्द विजय, लक्ष्मी विजय, मनक विजय, रत्नाकर विजय, केशवानन्द विजय, और संपत विजय, मुनि इन्द्र विजय, मोती विजय विद्यमान हैं।

पं० कमल विजयजी के एक शिष्य देवेन्द्र विजयजी है। आचार्य श्री आज्ञा में करीब ८०-९० साध्वीजी मौजूद हैं।

मुमुक्षु भव्यानन्द विजयजी म०

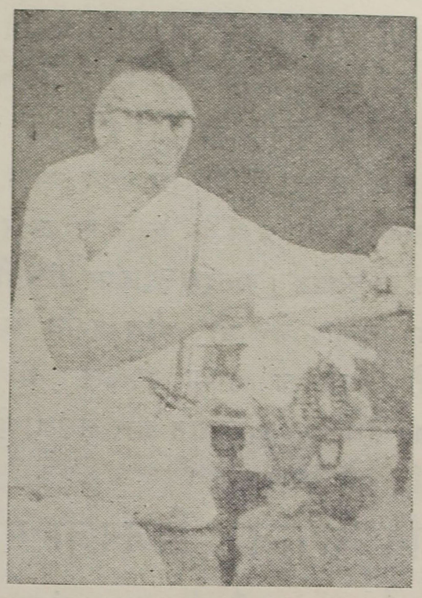

उदयपुर गुडा गांव में आपका जन्म सं० १९८१ ज्येष्ठ मास में हुआ। आपके पिता का नाम पृथ्वीराज जी संघवी और माता का नाम नौजीबाई था। आप तीन भाई थे। दूसरे भाई बम्बई में दुकान चलाते थे। आप भी १० वर्ष की छोटी सी उम्र में बम्बई चले गये हैं। पिता ५ वर्ष में माता १४ वर्ष में और बम्बई वाले भाई की १५ वर्ष में मृत्यु हो गई,। आप बम्बई में रहते हुए अंधेरी में आचार्य श्री रामचन्द सूरीश्वरजी के पास उपधान करने गये। आपकी वैराग्य वाहिनी देशना से हृदय पलट दिया। वैराग्य रंग में रंगे मुमुक्षु श्री भव्यानन्द विजयजी रत्नाकर विजयजी श्री के शवानंद विजयजी आप तीनों एक ही गांव के हैं।

उदयपुर के सुप्रसिद्ध चौगानिया के मंदिर के निकट वट वृक्ष के नीचे आचार्य श्री विजय हिमाचल

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सूरीश्वरजी के कर कमलों से सं० १६६८ के वै० शु० ३ के दिन आपने भगवती दीक्षा स्वीकार की। अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता से सन् १६४६ तक तो आपने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज की शास्त्री परीक्षा पास करली। सन् ५३ में सौराष्ट्र विद्वद् परिषद् की 'संस्कृत साहित्य रत्न' की परीक्षा में सर्व प्रथम आये। आप द्वारा लिखित छोटी बडी दो दर्जन से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जगद्गुरुहीर पर पांचसौ रुपयों का प्रथम पुरस्कार, जैन और बौद्ध दर्शन के निबंध पाच्हरसौ रुपयों का द्वितोय पुरस्कार भी आपको प्राप्त हुआ है। आपकी जबान और लेखनी दोनों ही चलती है, बडी विशेषता है।

मुनि श्री गजेन्द्र विजयजी म०

संसारी नाम हाथीभाई जन्म संवत् १६५८ महासुद १३ आजोर (मारवाड)। पिता मलूकचन्दजी माता सजूबाई। जाति व गौत्र जैन नीमा सोलंकी दीक्षा सं. १६८७ महासुदी ५ स्थान पोकरण फलौदी। गुरु पन्यासजी श्री पद्मविजयजी गणि। आप महान् तपस्वी आत्मा हैं। आपके वर्धमान तप की ६८ वीं ओली चालू है।

मुनि कल्याण विजयजी

जन्म सं० १६६६ राजगढ़ मालवा जन्म नाम सुगनचन्द। पिता जड़ावचन्दजी मोदी। माता गेंदीबाई दीक्षा सियाणा (राजस्थान) मार्गशीष शुक्ला १३ गुरु श्री मद्विजय भूपेन्द्रसूरीश्वरजी म०। आपने गुरु सेवा में रहकर जैनागम, व्याकरण, काव्यकोष न्यायादि साहित्य का अध्ययन किया। धार्मिक, सामाजिक कार्यों का उपदेश द्वारा प्रचार करते हैं।

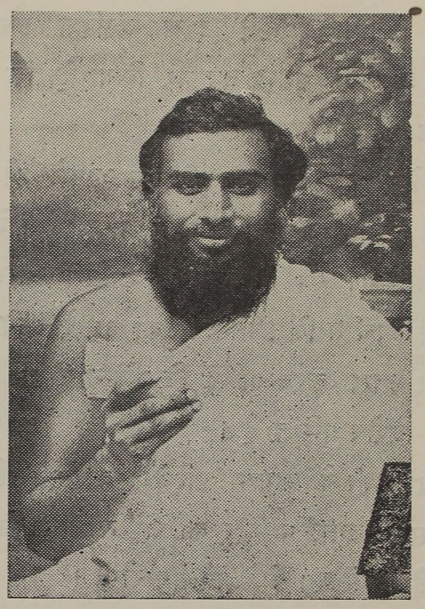

मुनिराज श्री कान्तिसागरजी म०

खरतरगच्छाचार्य स्वर्गीय श्री जिनहरिसागरसूरिजी महाराज के शिष्य मुनिराज श्री कान्तिसागरजी महाराज प्रसिद्धवक्ता के नाम से विख्यात हैं।

आप रतनगढ़ बीकानेर के ओसवाल कुल भूषण श्री मुक्तिमलजी सिंघी के सुपुत्र हैं। बाल्यवस्था में ही गृहस्थ धर्म को छोड़कर आपने जैन दीक्षा ग्रहण करली। अपनी कुशाग्रबुद्धि और गुरु का कृपा से व्याकरण, न्याय, काव्य, कोश अलंकार तथा जैन व जैनेतर ग्रन्थों को अभ्यस्त कर वक्तृत्व शक्ति का उत्तरोत्तर विकास किया। आपकी प्रतिभाशालिनी वक्तृत्व शैली आकर्षक है।

विकासो-मुखी प्रतिभा के बलपर बड़वानी, प्रतापगढ़, अरनोद, उदयपुर आदि कई नरेशों को अपने सार गर्भित भाषणों द्वारा अनुरागी बना कर जैन-धर्म के प्रति निष्ठा की जागृति की। आपके सार्वजनिक

www.umaragyanbhandar.com

व समन्वयवादी भाषणों द्वारा कई स्थानों पर फूट का विलीनीकरण होकर संघ सङ्गठन का प्रादुर्भाव हुआ है।

आप तपस्या में बडी श्रद्धा रखते हैं। बीकानेर के चातुर्मास में आपने स्वयम् मासक्षमण तप किया था।

आप श्री के उपदेश से खेतिया, तलोदा और नागौर आदि कई स्थानों पर भव्य जिन मन्दिरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार कार्य हुए हैं एवं ज्ञान मन्दिर भी स्थापित हुए हैं। मकसी, बीकानेर, आमेट, जलगाँव, आर्वी, हैद्राबाद और कुलपाक आदि कई स्थानों पर प्रतिष्ठाऐं शांति स्नात्रादि कार्य सम्पन्न हुए हैं।

आपके सदुपदेश से खामगाँव, तीर्थ भद्रावती, टिन्डी वनम और आर्वी आदि कई स्थानों पर भव्यात्माओं ने उपधान तप किया।

न्यायतीर्थ, साहित्यशास्त्री मुनि श्री दर्शनसागरजी महाराज को साथ लेकर आपने बंगाल, बिहार, यू.पी. राजस्थान, मध्य भारत, खानदेश, बरार और सौराष्ट्र आदि प्रदेशों में विहार कर जैन धर्म के सूत्रों से समन्वयवाद, अहिंसा, एकीकरण, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर जनता को लाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मुनिराज श्री न्यायविजयजी महाराज

आपका जन्म सं. १९७० पौषशुक्ला ३ को खाचरौद (मालवा) में हुआ। पिता का नाम श्रीकिस्तूरचंद जी बोहरा बीसा ओसवाल। जो वर्षों से साटाबाजार इन्दौर में व्यवसाय करते हैं। माता का नाम धूरीबाई था। प्रारंभ में आपने उज्जैन मिल में कार्य किया।

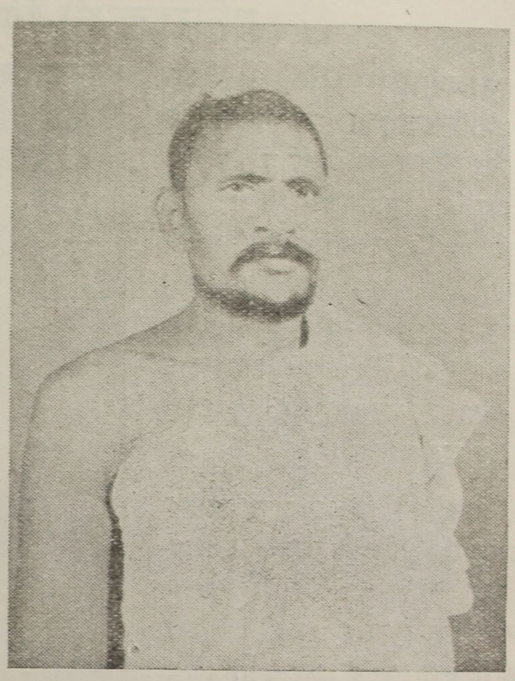

मुनि श्री न्याय विजयजी म०

जैन मुनिराजों के संसर्ग तथा सिद्ध गिरीजी के यात्रा के समय गुरुणीजी श्रीमान श्रीजी के उपदेश से आप में वैराग्य भावना जागृत हुई और विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर सं० १९९५ आषाढ़ शुक्ला ११ को आचार्य श्री विजय यतीन्द्रसूरिजी म. के पास डूंडसी (मारवाड़) में दीक्षा अंगीकार की। आपका नाम न्याय विजयजी रक्खा गया। बड़ी दीक्षा १९९६ माघ शु० ५ को सियाणा में हुई।

वर्तमान में आप २२ वर्ष के दीक्षा पर्यायी होकर जैनागमों के तथा संस्कृत प्राकृत के धुरन्धर विद्वान और जैन विधि विधानों के प्रकांड पारगामी हैं। मारवाड़ में आपका अच्छा प्रभाव है। आपके शुभ हस्त से प्रायः-प्रति वर्ष प्रतिष्ठाएं उपधान आदि धार्मिक कृत्य होते ही रहते हैं। आप एक अच्छे वक्ता एवं लेखक भी हैं। आपके यशो विजयजी नामक शिष्य भी प्रगतिशील विचारों के विद्वान मुनि हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनिराज श्री विशाल विजयजी महाराज

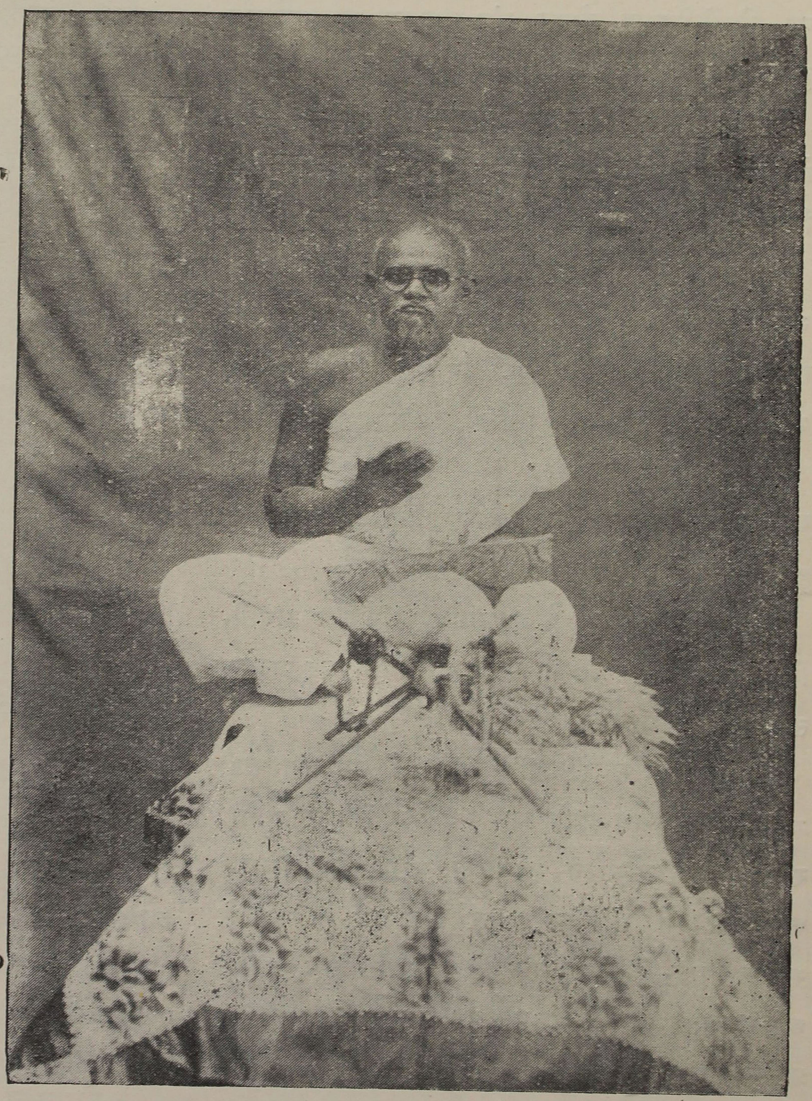

राधनपुर (गुजरात) में स्थित श्री शान्तिनाथजी जिनालय के निर्माता श्रवण श्रेष्ठी के वंशज सेठ भिकमजी मकनजी बीसा श्री माली गौत्र गोच्चनाथिया (तुंगियाणा) के आप पुत्र थे। माता नन्दुबेन उर्फ प्रधानबाई की कुक्षि से सं० १९४८ फाल्गुन शुक्ला ६ को आपका जन्म हुआ। संसारी नाम वृद्धिलाल था।

आपके पिताजी और अग्रजबंधु एक ख्याति प्राप्त विद्वान है। 'पाइअ सद् महाण्णवो' नामक ग्रन्थ के संपादक है और इनकी ही देख रेख में बनारस में श्री यशोविजय जी जैन संस्कृत पाठशाला में वृद्धि लालजी ने ज्ञानाभ्यास किया।

सौभाग्य से युगवीर आचार्य श्रीमद् विजय धर्म सूरीश्वरजी के दर्शनों तथा सम्पर्क का लाभ इन्हें मिला। वि० सं० १९७० मार्ग शीर्ष शु० ६ के दिन व्यावर में आचार्य देव के शुभ हस्त से दीक्षित हो स्व० शान्त मूर्ति श्री जयन्त विजय जी म० के शिष्य बने।

आचार्य विजय धर्म सूरिजी की परम्परा में प्रायः सभी शिष्य उच्च श्रेणी के विद्वान मिलेंगे। आप भी बड़े विद्वान हैं। साहित्य रसिक हैं। आपने वल्लभीपुर में स्थापित श्री वृद्धि धर्म जैन ज्ञान मन्दिर को एक उच्च कोटि का ज्ञान भंडार बनाया तथा श्री यशो विजय जैन ग्रन्थ माला भावनगर के द्वारा साहित्य प्रकाशन में सतत् सचेष्ठ हैं। स्वयं सुलेखक हैं।

एक परम विद्वान, ज्ञानाभ्यासी होने के साथ २ आप बड़े तपस्वी मुनि हैं। आपने निम्न ग्रन्थों की रचनाएं की हैं:—द्वाषष्टि मार्गणाद्वार, संस्कृत प्राचीन स्तवन संग्रह, सुभाषित पद्य रत्नाकर ५ भाग, श्री नाकोड़ा तीर्थ, भारोल तीर्थ, चार तीर्थ, काबि गंधार भगडिया तीर्थ, शंखेश्वर स्तवनावलि, बे जैन तीर्थो, श्री घोघा तीर्थ इत्यादि।

आपके ग्रन्थों में शोध खोज पूर्ण ठोस साहित्य के दर्शन होते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तपागच्छीय त्रिस्तुतिक सम्प्रदाय

श्री सौधर्म बहत्पागच्छीय पार परम्परा में ६७ वें पाट पर पूज्य जैनाचार्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वर जी महाराज बड़े प्रभाविक आचार्य हुए हैं। त्रिस्तुतिक संप्रदाय के आद्य प्रेणता आप ही हैं। आपने अद्वितीय और सर्वा मान्य अभिधान राजेन्द्र कोष की रचना की है। आप भरतपुर निवासी पारख गोत्रीय ओसवाल थे।

आपके पाटपर जैनाचार्य श्रीमद् विजय धनचन्द्र सूरीश्वरजी म० हुए। आप भी बड़े विद्वान् और प्रभाविक थे। आप किशनगढ़ निवासी ककु चोपड़ा गोत्रीय ओसवाल थे। आपके कई एक शिष्य थे। आपके समय में ही पट्टधर बनने के विषय में प्रधान शिष्यों में आपसी वैमनस्य उमड़ चुका था। आपके बाद में दो आचार्य हुए-श्री विजय भूपेन्द्रसूरिजी तथा श्री विजय तीर्थेन्द्रसूरिजी। पं० श्री भूपेन्द्रसूरिजी के पट्टधर आ. श्री विजय यतीन्द्रसूरिजी विद्यमान हैं।

स्व० आ० श्री विजय तीर्थेन्द्रसूरीश्वरजी

आप सागर (म० प्र०) निवासी चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। सं० १९४८ कार्तिक शुक्ला १० को आपका जन्म हुआ था। आपके पिताजी का नाम नाथूरामजी तथा माताजी का नाम लक्ष्मीबाई था। जन्म नाम नारायण था।

आपने प्रथम यति दीक्षा वि० सं० १९६१ में कमल गच्छाधिपति श्री पूज्य श्री सिद्धसूरिजी महाराज के पास बीकानेर में ग्रहण की थी और फलौदी निवासी यति पदमसुन्दरजी के शिष्य घोषित हुए। यति पदमसुन्दरजी बड़े पण्डित और प्रख्यात यति थे। जोधपुर के महाराजा सर प्रतापसिंहजी ने चार गाँव मेड़ता परगने में इनायत किये थे। आपके देहावसान हो जाने पर यति नारायण सुन्दर ने विजय धनचन्द्र सूरीश्वरजी के पास सं० १९६४ खाचरोद (मालवा) में साधु दीक्षा ग्रहण की थी। बड़ी दीक्षा भोलडीयाजी जैन तीर्थ में हुई थी। आपका शुभ नाम तीर्थ विजय

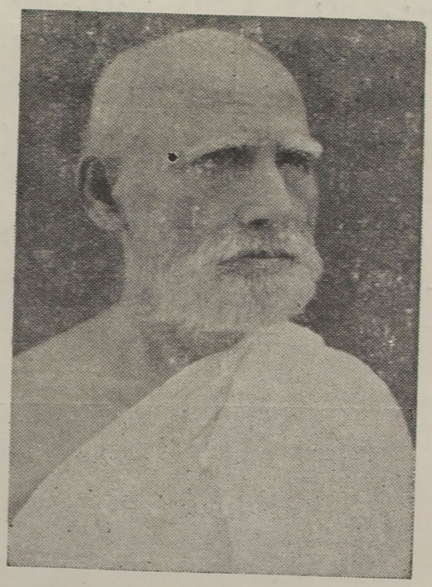

आचार्य श्री विजय तीर्थेन्द्रसूरीश्वरजी

जी रखा गया था। आप आचार्य श्री के बड़े प्रिय शिष्य थे। आचार्य श्री ने आपको ही पट्टधर आचार्य बनाने की घोषणा की थी।

वि० सं० १९७२ में विजय धनचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज ने आपको पन्यास पद प्रदान किया था। और वि० सं० १९८१ में महाराजाधिराज श्री झाबुआ नरेश श्री उदयसिंह साहब ने महामहोपाध्याय-पद प्रदान किया था और सं० १९९२ में भीनमाल निवासी श्री सिरेमलजी नाहर ने दर्शनार्थ आबूजी का संघ निकाला था। वर्तमान में दोनों की परम्परा है। उस वक्त सकल श्री संघ तथा संघवीजी ने मिलकर आपको आबूजी पर आचार्य पद प्रदान किया था।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनिराज श्री जयविजयजी म०

गुरुदेव ने कई एक महानुभावों को साधु दीक्षा देकर शिष्य बनाए थे। जिसमें से अभी विद्यमान प्रधान शिष्य मुनिराज श्री जयविजयजी महाराज हैं। आप जयपुर निवासी हैं और राठौड़ वंशीय राजपूत हैं। आपका जन्म सं० १९४८ वैशाख सुदी पंचमी का है। आपने सं० १९७९ मिंगसर सुदी पंचमी को दीक्षा ग्रहणकी थी। बड़ी दीक्षा अलीराजपुर (मालवा) में वि० सं० १९८१ में हुई थी और आपको गुरुदेव ने ही 'विद्याभूषण' का पद प्रदान किया था।

संवत् १९९२ माघ सुदी सातम के दिन मुनि श्री लब्धिविजयनी महाराज को दीक्षा दी गई।

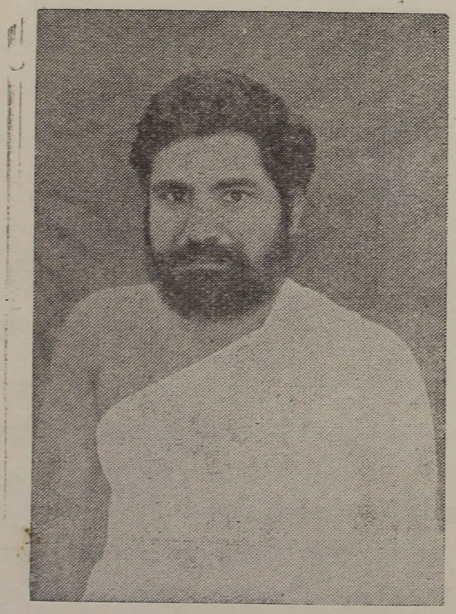

मुनिराज श्री लब्धिविजयजी म०

आपका जन्म स्थान खरसोद है और शाकलद्वीपी ब्राह्मण हैं। आपकी बड़ी दीक्षा फलौदी में सं० १९९३ में हुई हैं। आप संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान कवि हैं।

मुनिराज श्री कमलविजयजी म०

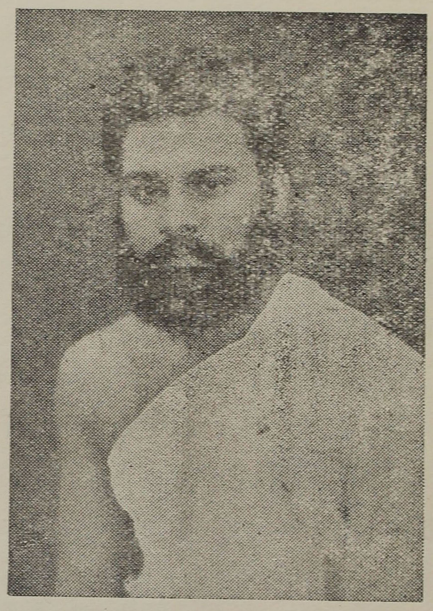

संवत् २००३ माघ सुदी तेरस को मुनि श्री कमलविजयज की दीक्षा धानेरा (उत्तर गुजरात) में हुई। बडी दीक्षा बामणवाडजी में स० २००४ में दी गई है। आपकी जन्म भूमि झाबुआ (मालवा) है आप सूर्यवंशी राजपूत हैं। आप साहित्य प्रेमी एवं गंभीर विचारक हैं।

मुनिराज श्री मनकविजयजी म०

महिमा का घर मालवा के अरणोद गांव में आप का जन्म हुआ था। आप बालब्रह्मचारी हैं सं० १९९९ की साल में मन्दसौर में आपकी दीक्षा हुई। मुनि श्री लदमीविजयजी के यह प्रथम शिष्य हैं। दिन भर ध्यान करते रहते हैं। आपकी उम्र इस समय करीब ६० वर्ष की है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

महान् तपोनिष्ठ आचार्य श्री विजय सिद्धी सूरीश्वरजी म० (दादा)

वर्तमान जैन श्रमण संघ में संभवतः सबसे वयोवृद्ध महामुनि आप श्री ही हैं। इस समय (सं. २०१६)में आपकी आयु करीब १०५ वर्ष है। आप श्री का जन्म सं० १९११ श्रावण शुक्ला १५ को अहमदाबाद में हुआ। १३ वर्ष की अवस्था में प्रबल तम वैराग्य भावना के कारण आपने तत्कालीन महा प्रभाविक पूज्य श्री मणि विजयजी (दादा) के पास सं० १९२४ जेठ वदी २ को अहमदाबाद में दीक्षा अंगीकार की। सं० १९५७ आषाढ़ सुदी ११ को पन्यास पद तथा सं० १९७५ महासुदी ५ को मेहसाना में आप आचार्य पद विभूषित किये गये।

इतने लम्बे दीक्षा पर्याय में आ० श्री के शुभ हस्त से अनेकों धार्मिक कल्याणकारी कार्य सम्पन्न हुए हैं।

मुनिराज श्री सुबोध विजयजी म०

वर्तमान जैन श्रमण समुदाय में आप श्री के प्रति अति श्रद्धा भाव हैं। इतने वयोवृद्ध होते हुए भी आप श्री का तपानुष्ठान चालू है। महान तपस्वी आप श्री के ६ प्रमुख शिष्य हुए श्री ऋद्धि विजयजी, विनय विजयजी, प्रमोद विजयजी, पं० रंगविजयजी, आचार्य विजय मेघसूरिजी, केसरविजयजी आदि। श्री विनय विजयजी के शिष्य आचार्य श्री विजय भद्रसूरिजी और प्रशिष्य आचार्य ॐकारों सूरिजी विद्यमान हैं। आचार्य श्री मेघसूरिजी के १० प्रधान शिष्यों में से आचार्य विजय मनोहर सूरिजी, सुमित्र विजयजी, विचक्षण विजयजी, सुबोध विजयजी, सुभद्र विजयजी आदि तथा प्रशिष्य में श्री मृगांक विजयजी, भद्रंकर विजयजी, मलय वि. विबुध वि. हेमेन्द्र वि० नय वि०, सुधर्म वि०, क्षेमंकर वि०, सूर्यप्रभ वि० आदि २०० साधु साध्वी समुदाय है।

मुनिराज श्री सुबोध विजयजी महाराज

जन्म नाम त्रिकमलाल। जन्म तिथि-सं० १९५८ आषाढ़ सुद ४ रविवार अहमदाबाद रायपुर कामेश्वर नी पोल। पिता शंकरचंद जेसिंहभाई। माता गजराबाई। ओसवाल। दीक्षा सं० १९८१ फा० शु० १०।

आप श्री महान् तपस्वी हैं। प्रायः नित्य प्रति तपस्या क्रम चालू रहता है। आपके शुभ हस्त से प्रतिष्ठा, अंजन शलाका, पयान आदि अनेक धार्मिक कृत्य हुए हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री विजयभद्र सूरीश्वरजी म०

आपका जन्म सं. १९३० वैशाख शु. ६ राधनपुर में हुआ सं० नाम भोगीलाल था। पिता नगर सेठ श्री उगरचन्दजी भाई। माता सूरजबेन। बीसा श्री माली जैन, मसालिया गौत्र। दीक्षा सं० १९५८ वै० शु० १५ राधनपुर। सं० १९७० मिंगसर सुद १५ को पन्यास पद तथा सं० १९८९ पौष वदी ७ को आचार्य पद विभूषित किये गये।

आपने अपनी धर्मपत्नि के साथ सजोड़े आ० विजय सिद्धी सूरिजी के प्रशिष्य पं० विनय विजयजी के पास दीक्षा अंगीकार की थी। वर्तमान में आपकी आज्ञा में करीब ४० मुनि हैं तथा ७० के करीब साध्वियां हैं। आपश्री के शुभ नेश्राय में पालीताणा, आबूजी, भोयणीजी शंखेश्वरजी आदि कई तीर्थ स्थानों की यात्रार्थ बड़े बड़े विशाल छः री पालते संघ निकले हैं। अनेक प्रतिष्ठाएं उपधान आदि धार्मिक कृत्य हुए हैं। आपके शिष्यों में श्री मद् विजय ओंकार सूरीश्वर जी महाराज आचार्य हैं।

आ. श्री विजय ओंकार सूरीश्वरजी म०

आपका जन्म सं० १९८९ आसोज शुक्ला १३ को हुआ। संसारी नाम चीनुकुमार। पिता ईश्वरलाल भाई। माता कंकुबेन। बीसा श्रीमाली जैन। गुरु आचार्य श्री विजय भद्रसूरिजी।

आपने अपने पिता के साथ भिंभुवाड़ा में सं० १९९० महासुद १० के दिन दीक्षा अंगीकार की। पिता का मुनि नाम विलास विजयजी रक्खा गया और आप उनके शिष्य ओंकार विजयजी बने। तपानुष्ठान की ओर आपका विशेष लक्ष्य रहता है। सं० २००६ मिंगसर सुदी ६ को राधनपुर में पन्यास पद तथा सं० २०१० महासुदी १ को मेहसाना में आ० श्री विजय भद्रसूरिजी के शुभ हस्त से आचार्य पद विभूषित बने।

मुनिराज श्री प्रकाशविजयजी म०

संसारी नामः—श्री हजारीमलजी। जन्म तिथिः—वि० सं० १९६८ फाल्गुण सुदी ६ ता० २१-२-१२ बुद्धवार। जन्म स्थानः—झाडोली (सिरोही-मारवाड़) पिताः—श्री ताराचन्दजी। मातः—श्री सुमति बाई जी। जाति—पोरवाल, अग्नि गोत्र चौहान। दीक्षाः—सं० २००१ प्रथम वैशाख सुदि ६ पालीताणा में। बडी दीक्षाः—बोरु (गुजरात) वैशाख सुदि १४ वि० सं० २००१। गुरुः—राजस्थान केसरी-ज्योतिषाचार्य-आचार्य श्री पूर्णानन्दसूरिजी महाराज। आप श्री की तपस्या में विशेष रुचि है। स्वंय तथा श्री संघ से भी खूब तपस्या करवाते हैं। बड़ौत में गुरु मन्दिर की प्रतिष्ठा, तथा नाभा में मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। सं० २०१५ में आपकी प्रेरणा से पालीताणा को यात्रा संघ' गया। सं० २०१६ में पट्टी में ३८ व्यक्तियों ने ब्रह्मचर्य व्रत का नियम लिया। सं० २०१० में पालेज में ज्ञान मन्दिर खोला। आपके ३ शिष्य हैं श्री नन्दन विजयजी, श्री निरंजनविजयजी तथा श्री पद्मविजयजी महाराज।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अचलगच्छीय-प्रखरवक्ता

आचार्य श्री गुणसागर सूरीश्वरीजी म०

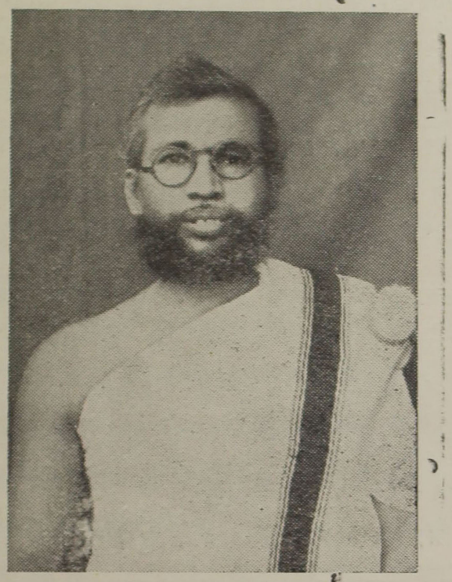

आपका जन्म सं० १९६९ महासुदी २ को कच्छ के देछीया ग्राम में बीसा ओसवाल कुल में हुआ। पिता का नाम श्री लालजी भाई तथा माता का नाम धन बाई था। संसारी नाम-गांगजी भाई।

बाल्यकाल से ही आप बड़े प्रतिभावान, धर्म-निस्ठ एवं तपः पूत थे धर्मराधाना एवं तपस्या में ही लीन रहने वाले इस महत पुरुष ने कई तीर्थों की यात्राएं भी की। सन्त समागम से वैराग्य भावना प्रबल बनी। आपने जैन तत्वज्ञान सम्बन्धी काफी पुस्तकों का अध्ययन किया। कई थोकड़े, प्रतिक्रमण आदि आवश्यक ग्रन्थ कंठस्थ होगये थे। जैनागमों का भी अध्ययन क्रम जारी था।

२३ वर्ष की अवस्था में अचल गच्छाधिपति त्याग मूर्ति पूज्य दादासाहब श्री गौतमसागरजी म. सा. के शिष्य रत्न शान्तमूर्ति पूज्य श्री नीतिसागरजी म० सा० के पास सं० १९९३ चैत्र कृष्णा ८ का कच्छ देछिया में दीक्षा अंगीकार की और गुणसागरजी नाम रक्खा गया। वैसे ही आपका जीवन धर्मानुष्ठान की ओर ही प्रवृत था—दीक्षोपरान्त आप विशेष रूप से आत्मोद्धार मार्ग में प्रवृत बने। प्राकृत एव संस्कृत के गहन अध्ययन से आप न केवल एक प्रकांड विद्वान ही बने एक अच्छे लेखक भी बने और आपने संस्कृत भाषा व गुजराती भाषा में अच्छी रचनाएं की हैं।

आपकी व्याख्यान शैली भी बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रखर वक्ता के रूप में आप प्रसिद्ध हैं।

सं० १९९९ महासुदी ५ को आप उपाध्याय पद पर विभूषित किये गये तथा पट्टधर घोषित किये गये। सं० २००९ में पूज्य श्री गोतम सागरजी म० के स्वर्ग वासी होने पर अचलगच्छीय जैन संघ के आप ही अधिनायक माने गये और सं० २०१२ वैशाख शुक्ला ३ को बम्बई के माडवी लता में महा महोत्सव पूर्वक आप श्री को आचार्य पद विभूषित किया गया।

आप श्री द्वारा जैन शासन प्रभावना हेतु अनेक कार्य हुए हैं। बम्बई तथा कच्छ प्रदेश में आप श्री के प्रति अतीव श्रद्धा है। आप श्री के शुभ हस्त से अनेक स्थानों पर प्रतिष्ठाएं उपधान आदि धर्म कृत्य होते रहते हैं।

वर्तमान जैन श्रमण संघ में आप श्री का एक संन्मान पूर्ण उच्चस्थान है।

आप श्री के आज्ञानुवर्ती करीब २० मुनिवर और ७५ साध्वी समुदाय है। मुनिवरों में मुनि श्री चंदन सागरजी, विनयेन्द्र सागरजी, कीर्तिसागजी, देवेन्द्र सागरजी विद्यासागरजी भंद्रकर सागरजी आदि मुख्य हैं। साध्वियों में गुलाब श्री जी, लाभ श्री जी, मगन श्री जी, विमला श्री जी, कपूर श्री जी आदि मुख्य हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० पन्यासजी श्री धर्मविजयजी गणी

महान् आध्यात्मिक एवं तपोनिष्ठ स्वर्गीय पूज्य पन्यासजी श्री धर्म विजयजी गणिवर का नाम जैन जगत् में आज भी बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है।

आपका जन्म पाटन (गुजरात) के समीपस्थ थरा नामक ग्राम में सं० १९३३ पौष वदी १४ को हुआ पिता का नाम सेठ मयाचंद मंगल चंद तथा माता का नाम मिरांतबाई और जन्म नाम धर्म चंद था।

आप बाल्यकाल से ही बड़े गुण ग्राही साधु प्रकृति के गंभीर विचारवान वैरागी महानुभाव थे। बड़े संगीत प्रेमी थे। संकीत गान में आध्यात्मिक भजन गाने का बड़ा चाव था। इनकी आध्यात्मिक भजन गान में यह तल्लीनता ही इनकी जीवनाधार बनी और आप में वैराग्य भावना उत्तरोत्तर बलवती बनती गई। अन्ततः उस समय सिद्ध क्षेत्र में विराजित पूज्य पन्यासजी श्री मोहनविजयजी गणिवर से आपने सं० १९५२ आषाढ़ सुदी १३ को दीक्षा अंगीकार कर मुनि मार्ग में प्रवर्तित हुए।

प्रवज्या के बाद अल्पकाल में ही आपने जैनागमों, न्याय व्याकरण आदि ग्रन्थों का पांडित्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर जैन जगत् में चमक उठे। आप एक प्रख्यात आध्यात्मिक मुनि के रुप में "आत्मानदी" के नाम से पहिचाने जाने लगे। आप बाल ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य का तेज, वाणी माधुर्य और व्याख्यान कुशलता से आगन्तुक आकर्षित हुए बिना नहीं रहता था। ऐसे में अगर उसे आपके श्री मुख से सुमधुर आध्यात्मिक भजन सुनने का सौभाग्य मिल जाता तो वह हृदय विभोर हो गद् गद् हो उठता था।

सं० १९६२ मिगसर सुदी १५ के दिन पूज्य पंडित मुनि श्री दयाविमलजी म० के शुभ हस्त से डेहलाना उपाश्रय राजनगर में योगोद्वहन पूर्वक आपको पन्यास पद विभूषित किया गया।

आपकी विशिष्ठ प्रतिभा और प्रख्याती से प्रेरित हो जैन संघ ने सं० १९७५ में आपश्री को आचार्य पद विभूषित करना चाहा पर आपने ऐसा स्वीकार नहीं किया।

सं० १९९० में राजनगर में हुए श्री अखिल भारतीय श्वे० मूर्तिपूजक साधु सम्मेलन में आपश्री का अच्छा सहयोग रहा। सम्मेलन के दिनों में ही आपको श्वास रोग ने आ घेरा। वहीं से स्वास्थ्य गिरता गया और अन्त में सं० १९९० चैत्र वदी ७ के दिन राजनगर में स्वर्ग सिधारे।

आपश्री द्वारा संरक्षित डेहलाना उपाश्रय में हजारों प्राचीन ग्रन्थोंका भंडार उस महा विभूति की याद दिलाकर आल्हादित बनाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रधानाचार्य

आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज

आपका जीवन अहिंसा, सत्य, जप, तप, वैराग्य, संयम, क्षमा, करुणा, दया, प्रेम, उदारता तथा सहिष्णुता का मंगलमय सजीव प्रतीक है। आपका व्यक्तित्व महान् तथा विराट् है। आपके जीवन में जीवन के सभी मार्मिक तत्वों का पूर्ण सामञ्जस्य उपलब्ध होता है।

आपका जन्म सम्वत् १९३९ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को राहों (जिला जलन्धर) में हुआ था। पिता राहों के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मन्साराम जी चौपड़ा थे। मातेश्वरी श्री परमेश्वरी देवी जी।

आप आठ ही वर्ष के थे कि माता-पिता का छत्र सिर से उठ गया। आपकी दस वर्ष आयु में दादीजी भी चल बसीं।

मा ा, पिता तथा स्नेहमयी दादी के वियोग से आपका बचपन खेदखिन्न रहने लगा था, संसार का ऐश्वर्य और वैभव फीका सा लग रहा था। मन घर में रहना नहीं चाहता था। एक बार आपको लुधियाना आना पड़ा। लुधियाना में उस समय पूज्य श्री जयरामदासजी म० तथा श्री शालिगरामजी महाराज विराजमान थे। मुनियुगल के दर्शन से आपके अशान्त मन को कुछ शान्ति मिली। धीरे-धीरे मुनि राजों के सम्पर्क से मन वैराग्य के महासरोवर में गोते खाने लगा, और अन्त में सम्वत् १९५१ अषाढ़ शुक्ला पंचमी को बनूड़ (पंजाब) में आप श्रद्धेय श्री स्वामी शालिग्रामजी के म. चरणों में दीक्षित हो गये।

आगम महारथी, पूज्य श्री मोतीरामजी महाराज के चरणों में हमारे आचार्य सम्राट के बाल मुनि जीवन ने शास्त्राभ्यास करना शुरू किया। इन्हीं की कृपा-छाया तले बैठकर आपने आगमों के महासागर का मन्थन किया। आगमों के अतिरिक्त आप उच्च-कोटि के वैयाकरणी, नैयायिक तथा महान् दार्शनिक हैं। आपकी इसी ज्ञानाराधना के परिणामस्वरूप पंजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर में सम्वत् १९६९ फागुण मास में स्वर्गीय आचार्यप्रवर पूज्य श्री सोहन-लालजी महाराज ने आपको 'उपाध्याय' पद से विभूषित किया।

आपकी उच्चत्ता, महत्ता तथा लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन व्यापकता की ओर बढ़ रही थी। आपकी विद्वता ने, आपके चरित्र ने समाज के मानस पर अपूर्व प्रभाव डाला। उसी प्रभाव का शुभ परिणाम था कि आचार्यवर पूज्यश्री काशीरामजी महाराज के स्वर्गवास के अनन्तर सम्वत् २००३ लुधियाना की पुण्य भूमि में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को पंजाब का आचार्यपद आपको अर्पित किया गया।

आचार्य श्री का महान् व्यक्तित्व पंजाब में ही नहीं चमक रहा था, प्रत्युत पंजाब से बहार भी आशातीत सम्मान पा रहा था। सं० २००९ का वृहद् साधु-सम्मेलन, सादड़ी इस सत्य का ज्वलंन्त उदाहरण है। सादड़ी महासम्मेलन में हमारे पूज्यश्री वृद्धावस्था के कारणउपस्थित नहीं हो सके थे, तथापि सम्मेलन में उपस्थित सभी पूज्य मुनिराजों ने एकमत से "प्रधानाचार्य" के पद पर आचार्य देव को ही स्वीकार किया। एक ही जीवन में उपाध्यायत्व, आचार्यत्व और प्रधानाचार्यत्व की प्राप्ति करना आध्यात्मिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। आचार्य सम्राट की महीमा, उच्चता तथा लोकप्रियता का इससे बढ़ कर क्या उदाहरण हो सकता है ?

आचार्यदेव चरित्र के साक्षात् आराधक रहे हैं। जीवन को इन्होंने चरित्र की उपासना में ही अर्पित किया है। आप बालब्रह्मचारी हैं।

आचार्यदेव अपने युग के उच्चकोटि के व्याख्याता रहे हैं। आपकी वक्तृत्व-शक्ति में शास्त्रीय रहस्यों का विवेचन रहता है। आपके शास्त्रीय प्रवचनों से प्रभावित होकर ही देहली के श्री संघ ने "जैनागमरत्नाकर" पद से सम्मानित किया था।

सं० १९९० में आपका चातुर्मास देहली था। उस समय सरदार वल्लभ भाई पटेल और भूलाभाई देसाई आदि राष्ट्रनेता आप श्री के पास उपस्थित हुए थे। सं० १९६३ में आप रावलपिंडी थे, उस समय भारत के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू भी आपके दर्शनार्थ आये थे। आपने इन्हें भगवान् महावीर के आठ सन्देश सुनाये। पंजाब के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री और वर्तमान में आन्ध्र के गवनर श्री भीमसेन सच्चर आपके अनन्य भक्तों में से एक हैं। यह सब आचार्य सम्राट के प्रवचनों का ही अनुपम प्रभाव है।

आचार्यदेव का बौद्धिक बल तो बड़ा ही विचित्र है। आपको शास्त्रों के इतने स्थल कंठस्थ हैं कि देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। आगमों के महासागर में कौन मोती कहाँ पड़ा है और किस रूप में पड़ा है ? यह सब आपसे छिपा नहीं है।

जैनागमों में 'स्याद्वाद' (दो भाग) आपका संग्रह ग्रन्थ है। जैनागमों में जहाँ कहीं भी स्याद्वाद संबंधी पाठ आए हैं, उन सबका प्रायः इसमें संग्रह किया गया है।

चरितनायक की अब तक ७० पुस्तकें साहित्य संसार में प्रकट हो चुकी हैं। जिनमें श्री उतराध्ययन सूत्र (तीनभाग) श्री दशाश्रुतस्कन्धसूत्र, श्री अनुत्तरोपपातिक दशा, श्री अनुयोगद्वार, श्री दशवैकालिक, श्री तत्वार्थसूत्र, श्री अन्तकृद्दशांगसूत्र, श्री आवश्यकसूत्र (साधु प्रतिक्रमण), श्री आवश्यक सूत्र (श्रावक प्रतिक्रमण), श्री आचारांग सूत्र, श्री स्थानांगसूत्र, तत्वार्थ सूत्र,-जैनागमसमन्वय, जैनतत्वकलिकाविकास, जैनागमों में अष्टांग योग, जैनागमों में स्याद्वाद (दोभाग), जैनागमन्यायसंग्रह, वीरस्तुई, विभक्तिसंवाद जीवकर्मसम्वाद आदि ग्रन्थरत्न मुख्य हैं। इन ग्रन्थों के अध्ययन से चरितनायक के अगाध पाण्डित्य का परिचय प्राप्त हो सकता है।

प्राकृत भाग तथा साहित्य के विद्वान के रूप में आचार्यसम्राट की ख्याति भारत के कोने-कोने में फैल चुकी है। पाश्चात्य विद्वान् भी आपकी प्राकृत-सेवाओं से अत्यधिक प्रभावित हैं। एक बार आप लाहौर पधारे, तब पंजाब यूनिवर्सिटी के वाइसचान्सलर तथा प्राकृत भाषा के विख्यात विद्वान् डॉ० ए० सी० वूल्नर से आपकी भेंट हुई। वार्तालाप प्राकृत भाषा में किया गया। डॉ० वूल्नर ने आपको पंजाब यूनिवर्सिटी की लायब्रेरी का प्रयोग करने के लिए निःशुल्क सदस्य बनाया।

आचार्यसम्राट् का जीवनोपवन चरित्र, धैर्य आदि सुगन्धित पुष्पों से भरा पड़ा है, एक-एक पुष्प इतना अपूर्व और विलक्षण है कि वर्णन करते चले जायें फिर भी उसकी महिमा का अन्त नहीं आने पाता।

—ज्ञानमुनि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपाचार्य श्री गणेशीलालजी म०

उपाचार्य पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज सा. का जन्म सं० १९४७ में मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर में हुआ था। अत्यन्त उत्कृष्ट भाव से केवल १६ वर्ष की अवस्था में आपने प्रव्रज्या अंगीकार की। अपने गुरुदेव पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज सा० की सेवा में रह कर आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया।

सं० २०० में भीनासर में पूज्य श्री जवाहरलालजी स० सा० के कालधर्म पाने के पश्चात् आप इस सम्प्रदाय के आचार्य बनाये गये। आचार्य के रूप में आपने बड़ी ही योग्यता, दक्षता एवं सफलता के साथ सम्प्रदाय का संगठन एवं संचालन किया।

आपकी वैयावच्च वृत्ति, गम्भीरता और सौम्यता स्पृहणीय एवं अनुकरणीय है।

आपकी व्याख्यान-शैली बड़ी ही मधुर, आकर्षक एवं श्रोताओं के अन्तस्तल को स्पर्श करने वाली है।

आपके विनय और गांभीर्य आदि गुणों से प्रभावित एवं आकर्षित होकर सादड़ी मारवाड़ में हुए स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय के बृहत साधु सम्मेलन के समय बाईस सम्प्रदायों ने मिलकर आपको 'उपाचार्य' पद प्रदान किया। जिसकी जवाबदारी सफलता पूर्वक निर्वाह करते हुए आप श्री आज तक चतुर्विध श्री संघ की सेवा कर रहे हैं।

भव्य और प्रभावशाली व्यक्तित्व, साधुता के गुणों से सम्पन्न, नेतृत्व की अपूर्व क्षमता, सरलता एवं गम्भीरता की सजीव मूर्ति उपाचार्य श्री समाज की एक विरल विभूति हैं

उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म०

दक्षिण प्रांत में अहमदनगर जिला के अन्तर्गत चिचोडी शिराल नाम का एक ग्राम है। वही आपकी जन्मभूमि है। पिता श्री का नाम सेठ देवीचन्दजी और माताजी का नाम हुलासा बाई जी था। सं० १९७३ के श्रवण मास में आपका शुभ जन्म हुआ। बुद्धि कुशाग्र होने से स्कूली शिक्षण अल्प काल में ही परिपूर्ण करके धर्मपरायण माताजी की आज्ञा से महाभाग्यवान पं० श्री रत्नऋषिजी म० के पास जैन धार्मिक शिक्षण लेने लगे।

तेरह वर्ष की कोमलवय में आपने सं० १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी रविवार के दिन पं० श्री रत्नऋषिजी म० के पास मीरी अहमदनगर, में भागवती दीक्षा धारण की। अल्प समय में ही आपने व्याकरण, साहित्य, न्याय, विषय के प्रसिद्ध ग्रन्थों का और सटीक जैनागमों का विधिवत् अभ्यास किया। साथ ही हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाओं में व्याख्यान देने की क्षमता धारण की। और उर्दू फारसी तथा अंग्रेजी भाषा की जानकारी प्राप्त की। 'प्रसिद्धवक्ता' और 'पंडित रत्न' के रूप में आपकी ख्याति हुई।

समाज में ज्ञान का प्रचार हो ऐसी आपकी हार्दिक भावना रहती है। आज्ञा में विचरने वाले सन्त सतियों को अवसर निकाल कर स्वयं शिक्षण देने में तत्पर रहते हैं और स्थान २ पर शिक्षण की व्यवस्था करने के लिये संघ को भी उपदेश देते रहते हैं। शुद्ध चरित्र पालन करने कराने की तरफ आपका लक्ष्य विशेष रहता है। सं० १९९३ माघ कृष्णा ५ बुधवार के दिन भुसावल में ऋषि सम्प्रदाय के युवाचार्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पद पर विराजमान हुवे और सं० १९९२ माघ कृष्णा ६ बुद्धवार के रोज चतुर्विध श्री संघ ने आप श्री जी को पाथर्डी (अहमदनगर) में आचार्य पद पर आसीन किया।

महाराष्ट्र, निजाम स्टेट, बरार, सी० पी० आदि प्रान्तों में विचरकर आप श्री जी ने समाज में खूब जागृति फैलाई। पूज्य श्री जी के सदुपदेश से बहुत से जैन जैनेतरों ने भी मद्य मांस तथा कुव्यसनों का त्याग किया। सं० २००६ चैत्र मास में स्था० जैन कान्फ्रेन्स की योजनानुसार व्यावर में ५ संप्रदायों का संघठन हुवा। उस समय पांचों संप्रदायों ने सांप्रदायिक पदवियों का त्याग करके एक वीर वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ की स्थापना की और उसका संचालन करने के लिये प्रधानाचार्य पद पर आप श्री जी की नियुक्ति की गई। जिसे आपने विधिवत् संचालन किया पश्चात् सं० २००९ के वैशाख शुक्ला ३ के दिन सादड़ी में हुए बृहत साधु सम्मेलन में श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ की स्थापना हुई। प्रधानमंत्रीत्व का गुरुतम भार आपको ही सौंपा गया। सं० २०१२ तक आप श्री ने उस गुरूतम कार्य को संचालन कर श्रमण संघ की नींव को सुदृढ़ करने का श्रेय प्राप्त किया।

अखिल भारतीय श्रमण संघ के भीनासर संमेलन में आपको उपाध्याय पद प्रदान किया गया। वर्तमान में आप उपाध्याय पद पर विराजमान हैं। ज्ञान प्रचार कार्य में आपका अन्तः करण विशेष रूप से संलग्न रहता है इसके फलस्वरूप दक्षिण प्रान्त में विचरने वाले सन्त सती वर्ग के शिक्षण की सुविधा के लिये पाथर्डी, अहमदनगर, और घोड़नदी में श्री जैन सिद्धान्तशालाएं स्थापित हैं। इसी प्रकार धार्मिक शिक्षण को सुव्यवस्थित रूप देने के लिये श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी और वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा (पाथर्डी) नाम से दो व्यापक संस्थाएं समाज में काम कर रही हैं। इनके सदुपदेशक श्री उपाध्याय जी ही हैं। पाथर्डी की श्री रत्न जैन पुस्तकालय जिसमें हस्तलिखित और मुद्रित लगभग १०००० बहु मुल्य पुस्तकों का संकलन है। आप श्री की ही प्रेरणा का सफल परिणाम है। इनके अलावा तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी, श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था नागपुर श्री रत्न जैन विद्यालय बोदवड़, श्रीवर्द्धमान जैनछात्रालय राणावास श्री महावीर सार्वजनिक वाचनालय चिंचोंडी, श्री वर्द्धमान स्था. जैन विद्यालय शाजापुर, श्री वर्द्धमान स्था० जैन विद्यालय शुजालपुर आदि अनेक संस्थाएं समाज में धार्मिक और व्यवहारिक शिक्षण देने का काम कर रही हैं।

उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज

पं० मुनि श्री प्यारचन्दजी महाराज ने अपने सद्गुरु जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज के चरणों में एकनिष्ठापूर्वक सेवा समर्पित की। जैनदिवाकरजी महाराज के प्रवचनों का सम्पादन आपकी विलक्षण प्रतिभा का प्रभाव है। आप साहित्यप्रेमी और सरल वक्ता हैं। सादड़ी साधु-सम्मेलन में आप सहमंत्री के रूप में नियुक्त किये गए हैं। भीनासर सम्मेलन में आप उपाध्याय पद विभूषित किये गये हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज

मध्यम कद, उन्नत ललाट, चमकती आंखें, ओजपूर्ण मुखमंडल, साधनारत शरीर, तपःपूत मानस, गंभीर विचार, सुदृढ़ आचार, गुण ग्राहिणी भावना और अहर्निश स्वाध्याय निरत मस्तिष्क वाले आज के उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज का जन्म पौषसुदि १४ सं० १९६७ में मरुधरा के ख्याति प्राप्त नगर पीपाड़ में हुआ।

आपके पिता का नाम सेठ केवलचन्द जी और मातेश्वरी का रूपादेवी था। आप ओसवाल जातीय बोहरा वंश को अलंकृत करते थे। बाल्यकाल में ही आपको पितृ वियोग रूप दारुण दुःख का सामना करना पड़ा और स्नेहमयी जननी की देखरेख में बचपन के दिन व्यतीत हुए।

सांसारिक उतारचढ़ावों और विषमताओं की कड़वी चोट से अत्यन्त छोटी उम्र में ही आप में वैराग्य भावना सजग हो उठी और केवल दस वर्ष की अवस्था में ही आपने रत्न वंशीय पूज्य शोभाचन्दजी महाराज से सं० १९७७ में अजमेर नगर में दीक्षा ग्रहण करली तथा ज्ञान ध्यान संवर्धन में अपने को उत्सर्ग दिया।

वर्षों आपने अतिसूक्ष्म दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी का अभ्यास एवं शास्त्रों का उहापोह किया, जिससे आपकी बुद्धि विकसित होगयी। श्रमण समाज एवं श्रावक वर्ग में आपके किया निष्ठ पाण्डित्य की बहुत जल्द धाख जमगई और लोग संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के गहन अभ्यासी एवं मर्मज्ञ के रूप में आपको स्वीकार करने लगे। गुरु निधन के बाद २० वर्ष की छोटी सी उम्र में आपकी गंभीरता और चारित्र शीलता आदि गुणों से आकृष्ट होकर समाज ने सं० १९८७ में बड़ी धूमधाम और उल्लास से जोधपुर नगर में आपको आचार्यपद से अलंकृत किया। इतनी कम उम्र में संभव ही कोई आचार्य जैसे गुरुतर पद प्राप्तकर, उसके दायित्व को इस अनूठे ढंग से निभाए होंगे जैसा कि आपने निभाया।

आचार्य पद ग्रहण के बाद कुछ वर्षों तक मारवाड़, मेवाड़ और मालव भूमि में वर्षावास करते एवं ज्ञान सुरभि फैलाते हुए पुनः सुदूर दक्खिन महाराष्ट्र की ओर चल पड़े। यह समय आपके आज तक के जीवन वृत्त का उमंग व उत्साह भरा फड़कता अध्याय कहा जा सकता है जिसमें प्रतिक्षण कुछ करने व आगे बढ़ने की भावना हिलोरें ले रही थी। अहमदनगर, सतारा (महाराष्ट्र) गुलेदगढ़ आदि कर्नाटकीय अपरिचित भूभाग में भी आप बिना किसी हिचक के अपने मार्ग पर आगे बढ़ते ही रहे और निश्चय ही सीमा मंजिल तक पहुँचे बिना नहीं रहते, कारणवश यदि मरुधरा की ओर मुड़ना नहीं पड़ता।

इस विहार में आपकी शास्त्रानुराग कलिका कुछ प्रस्फुटित हुई और नन्दी सूत्र की टीका इधर ही सम्पादित और चन्दमल बाल मुकुन्द मुथा के साहाय से पूना में प्रकाशित हुई। आगे चलकर दशवैकालिक, प्रश्न व्याकरण, वृहत्कल्प सूत्र भी आपसे सम्पादित प्रकाशित हुए हैं, जो आपके शास्त्रानुराग के सुरभिपूर्ण विकसित सुमन हैं। इसके अतिरिक्त, षड्द्रव्य विचार पंचाशिका, नवपद आराधना, सामयिक प्रतिक्रमण सूत्र सार्थ, स्वाध्याय माला प्र० भा., गजेन्द्र मुक्तावली ज्ञान पंचमी, दो बात, पांच बात, महिला बोधनी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि संस्कृत हिन्दी की ज्ञान वर्धक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिससे आपका ज्ञानानुराग सहज में समझा जा सकता है।

आपकी ज्ञान पिपासा अमिट है और उस अतृप्ति की पूर्ति के लिए आप सवेरे से लेकर शाम तक आवश्यक कार्यों को छोड़कर शास्त्रावलोकन करते ही रहते हैं। सचमुच ज्ञानार्जन व प्रवर्धन की यह प्रवृत्ति हर व्यक्ति के बूते से बाहर की बात है। आप अध्ययनाध्यापन कार्य से कभी थकते नहीं और न कभी पाटे पर सहारे के बल बैठते तथा दिन में लेटते ही हैं।

विगत सादडी साधु सम्मेलन में आपने महत्वपूर्ण भाग लिया और श्रमण एकता का आदर्श स्थापित करने में सक्रिय सहयोग देकर संघ को सफल बनाया। सम्मेलन ने आपको साहित्य मंत्री एवं सहमंत्री का पददिया, जिसको आपने अच्छी तरह निभाया और गत भीनासर सम्मेलन में आप उपाध्याय पद से विभूषित किए गए हैं। आपके ज्ञान और चरित्र से स्थानक वासी समाज को बड़ी २ आशाएं हैं। आप प्रभावशाली वक्ता, साहित्यकार और चरित्रशील आध्यात्मिक मुनि हैं।

आपके शिष्यों में सर्व श्री छोटे लक्ष्मीचन्दजी महाराज आदि ५-६ हैं जो सबके सब सेवाभावी और श्रमण परम्परा के कट्टर अनुयायी हैं। जहां जहां भी आपने चातुर्मास किया वहां वहां की जनता आपके गुणों से प्रभावित हुए बिना न रही।

पूज्य श्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज ने सं० १९५६ में पूज्य श्री मोतीरामजी महाराज के पास में पंच महाव्रत धारण किये। आपका स्वभाव अत्यन्त शांत और सरल है। वि० सं० १९८३ में नारनौल में आपको आचार्य-पद दिया गया। आपकी क्रियाशीलता और विद्वत्ता की संयुक्त प्रान्त के संतों में अच्छी प्रतिष्ठा है। आपने सादडी साधु सम्मेलन में श्रमण संगठन के लिए आचार्य-पद का त्याग किया और सम्मेलन द्वारा आप अलवर भरतपुर यू० पी० क्षेत्र के प्रान्तीय मंत्री निर्वाचित हुए हैं।

उपाध्याय कविवर पं० मुनि श्री अमरचंदजी महाराज

कविवर मुनि श्री अमरचन्दजी महाराज पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी महाराज के विद्वान् शिष्य हैं। आगमों और शास्त्रों का आपने गहन अध्ययन किया है। आपकी प्रवचन शैलीयुग के अनुरूप सरल और साहित्यिक है। आपने गद्य-पद्य कई ग्रन्थों की रचना करके साहित्य के क्षेत्र में काफी प्रकाश फैलाया है। आगरा के "सन्मति ज्ञानपीठ" प्रकाशन संस्था ने आपके साहित्य को कलात्मक रीति से प्रकाशित किया है। आपके विचार उदार और असाम्प्रदायिक हैं। आपकी विचारधारा समाज और राष्ट्र के लिये अभीनन्दनीय है। सादडी सम्मेलन में आप एक अग्रगण्य मुनिराज के रूप में उपस्थित थे। इस समय स्थानकवासी जैन समाज के मुनिराजों में आपका गौरवपूर्ण स्थान है।

पं० रत्न श्री प्रेमचन्द्रजी महाराज

स्थानकवासी जैन समाज में मुनि श्री प्रेमचन्द जी महाराज "पंजाब केशरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपका भरा हुआ और पूरे कद का शरीर और आप की सिंह-गर्जना असत्य और हिंसा के बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है। जड़ पूजा के आप प्रखर विरोधी हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पंडित रत्न श्री पन्नालालजी महाराज

स्थानकवासी जैन इतिहास में पूज्य श्री नानकराम जी म० एक महान् प्रभाविक जैनाचार्य हुए हैं। अजमेर मेरवाड़ा और इसके आस पास के क्षेत्र में आप श्री की ही सम्प्रदाय के विशेष अनुयायी वर्ग हैं।

इस सम्प्रदाय के वर्तमान आचार्य पूज्य श्री पन्नालालजी म० सा० है जिन्होंने संघ एक्य के हित चिन्तन से बृहत साधु सम्मेलन सादड़ी में समाज हित में आचार्य पद छोड़कर वर्तमान में प्रान्तीय मन्त्री हैं।

जैन समाज में 'स्वाध्याय' प्रवृत्ति द्वारा ज्ञान प्रकाश फैलाने में आपके प्रयत्न सदा अभिनन्दनीय रहेंगे।

गुरुवर्य पं० रत्न प्रान्तमंत्री श्री पन्नालालजी म० सा० का संक्षिप्त जीवन परिचय इस प्रकार है:—

आपका जन्म मारवाड़ डेगाना के पास के तलसर ग्राम में वि० सं० १९४५ के भाद्रपद शुक्ला ३ शनिवार को हुआ। आपके पिता का नाम श्रीबालूराम जी एवं माता का नाम श्रीमती तुलसादेवी था। आपका जन्म मालाकार जाति में हुआ, परन्तु आपके परिवार में संस्कार जैनधर्म के थे। आपके पिता स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति होने के कारण उनमें और स्थानीय ठाकुर सा० में आपसी मन मुटाव हो गया। अतः आप सपरिवार उस ग्राम को छोड़कर थांवले पधार गये।

स्वतंत्र विचार वाले पिता के स्वतंत्र विचारवाला ही पुत्र हुआ। थांवला पधारने पर आपको उत्तम जैनसंत समागम प्राप्त हुआ। एक समय इसी ग्राम में पुण्योदय से मो ीलालजी म० सा० का समागम हुआ। आप नित्य प्रति गुरुवर्य के व्याख्यान आदि में नियमपूर्वक जाने लगे। अतः आपके हृदय में वैराग्य भावना प्रस्फुटित हुई और वि. सं० १९५७ के वैशाख शुक्ला ६ शनिवार के शुभ मुहूर्त में आपने भागवती जैन दीक्षा कालु (आनन्दपुर) में अंगीकार की।

आपने त्याग धर्म अपनाने के साथ २ जीवन को ज्ञानदीपक से आलोकित करने हेतु शास्त्राध्ययन सम्यक् प्रकार से करना आरम्भ कर दिया और बुद्धि प्राबल्य से स्वल्प काल में ही लक्षित उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल बने।

आपका अध्ययन केवल जैनागमों तक ही सीमित नहीं रहा वरन आपने अन्य दर्शनों का भी अच्छा अध्ययन प्राप्त किया। आप प्राकृत भाषा के साथ २ संस्कृत एवं ज्योतिष विद्या के भी प्रकाण्ड विद्वान हैं।

सं० १९८२ के चैत्री पूर्णिमा के लगभग की बात है आप दो ठाणों से भीलवाड़ा पधारते हुए बनेड़ा से सायंकाल विहार करके बनेड़ा से १॥ मील दूर राजकीय बाग में पहुँचे। वहां बाग रक्षकों ने बतलाया कि अन्दर के मकान बन्द है और बाहर हिंसक पशु का खतरा है। अतः आप वापिस लौट जाइये। इस पर आपने फरमाया कि हम साधु हैं हमें कोई खतरा नहीं है और बाहर वाले स्थान में दोनों संत ठहर गये। रात्रि के २॥ बजे करीब जब आप स्वाध्याय व चिन्तवन कर रहे थे वही पशु (सिंह) आपके पास आ खड़ा हुआ। आपने उसकी ओर धीरे से संकेत किया और वह वहां से कुछ दूर जंगल में जा खड़ा होगया। यह घटना बतलाती है कि आपका जीवन कितना तेजपूर्ण था।

दीक्षा लेने के पश्चात् आपका ध्येय आत्मकल्याण के साथ २ जनता में जैनत्व की भावना जागृत करने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का रहा। जैन जाति में प्रविष्ट अनेक कुरूढियों के निवारण हेतु भी आपके प्रभावशाली प्रवचन होते रहे। आपके उपदेश केवल जैन समाज तक ही सिमित नहीं होते वरन राष्ट्र के सभी वर्गों एवं समाज के व्यक्तियां में होते हैं। पुष्कर के पास गनाहेडा नामक गांव में जहां सैकडों भैंसे की बलि दी जाती थी वहां आपने पधार कर बलि बन्द के लिये उपदेश प्रारम्भ किये।

आपने प्रतिज्ञा की कि 'जब तक यहां बलि बन्द नही होजाती है मैं भी इसी प्रकार यहाँ उपवास की तपस्या के साथ उपदेश करता रहूँगा। आपको तप करते तीसरा दिन चल रहा था। स्वाभाविक रूप से आपकी ओजस्विता चढ़ी बढ़ी हुई थी, फिर तप का प्रभाव सोने में सुगन्ध का कार्य कर गया। जोगी पर आपके उपदेशों का वह प्रभाव पडा कि वह बलि बन्द करने की भावना लेकर वहां से चला गया। उसके जाने के पश्चात् वहां के रावत लोगों को समझाया गया कि तुम्हारा गुरु भी बलि देने के पक्ष में नहीं है यही कारण है जो वह निरुत्तर बन यहां से चला गया है। रावत लोग समझ गये कि वास्तव में मुनिराज का फरमाना ठीक है। हिंसा से किसी को प्रसन्न नहीं किया जा सकता है तत्काल उनलोगों ने यह प्रतिज्ञा करली कि आज से इस माता की हद में (सीमा में) व इसके नाम से किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं करगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का शिलालेख बनाकर माता के मन्दिर पर लगवा दिया एवं उसे सरकार द्वारा रजिस्टर्ड करवा कर सदा के लिये वहां बलि का अन्त किया। इसी प्रकार आस पास के गांव चावडिया, तिलोरा आदि स्थानों में होने वाली बली को भी आपने ओजस्वी उपदेशों द्वारा बन्द करवादी एवं सर्वत्र स्थानीय जन समुदाय ने शीलालेख लगवा दिये। इसी प्रकार आपका करुणा श्रोत अबाध गति से बहता ही चला गया। धनोप माता जिनके पुजारी ब्राह्मण हैं फिर भी बली का बोल बाला चढा बढा हुआ था। सैंकडों मूक पशुओं की प्राणाहुति प्रति वर्ष जहां होती थी। वहाँ नाम मात्र की बलि रह गई है।

यही नहीं राजा महाराजाओं को भी उपदेश द्वारा अहिंसा का स्वरूप समझाया एवं उनकी शिकार प्रथा को बन्द करवाई। एवं अहिंसक मार्ग अपनाने के बीसों ठाकुरों व जागीरदारों ने लिखित पट्टे आपके चरणों में सादर समर्पित किये हैं।

आपने सं० १९८८ में पाली मारवाडी साधु सम्मेलन में भाग लिया साथ ही वि० सं० १९९० में अजमेर में होने वाले वृहत साधु सम्मेलन में भी आपने स्वयं सेवक संचालक के रूप में कार्य किया। बाहर के प्रांतों से पधारने वाले साधु समाज के स्वागत् करने में तत्पर थे।

आपमें एक विशेष गुण यह है कि आप जिस ओर भी कदम उठाते हैं, वह एक ठोस कदम होता है। आपके सुधार अल्पकालीन नहीं वरन स्थायी होते हैं। आपके सदुपदेशों से समाज में निम्न ऐसी संस्थाओं का जन्म हुआ है जो अपने पैरों पर खडी होकर स्थानकवासी जैन समाज की सेवाएं कर रही हैं:-

श्री नानक श्रावक समिति, बिजयनगर।
श्री नानक जैन छात्रालय, गुलाबपुरा।
जैन स्वाध्याय संघ, गुलाबपुरा।
जैन प्राज्ञ पुस्तक भंडार, भिणाय।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सं० २००७ में गुलाबपुरे में चार बडों (आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म० सा०, आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा., उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म० सा० एवं प्रवर्तक मुनि श्री पन्नालालजी म० सा०) का स्नेह सम्मेलन हुआ। जिसमें आप प्रमुख थे। आपने संघ एक्यता के लिये अपने आपको श्रमण संघ के समर्पण कर दिया। आपने स० २००८ में अजमेर में सादडी में होने वाले सम्मेलन के लिये भूमिका निर्माण में सहयोग दिया।

सं० २००९ में वृहत साधु सम्मेलन सादडी ने आपको चातुर्मास मन्त्री का कार्य भार सोंपा। सोजत में हुए वृहत् साधु सम्मेलन पर प्रान्तीय मंत्री के रूप में आपको जयपुर, टोंक, अजमेर, किशनगढ़ जिलों के प्रान्त मंत्री का पद दिया एवं तिथि निर्णायक समिति के सदस्य भी बनाये।

आपके सदुपदेशों से जैन समाज की जातियों के रीति रिवाजों में बड़ा भारी सुधार हुआ है। समाज के नैतिक और धार्मिक जीवन को ऊंचा उठाने के लिये आपने प्रचलित अनेक प्रथाओं का विरोध किया। बालविवाह, वृद्ध विवाह, मोसर, आतिशबाजी आदि के सम्बन्ध में प्रभाव पूर्ण प्रवचन करके समाज को इनके दुष्परिणामों का भान कराया और इन कुरीतियों को भग करके समाज में नवीन सुधार लाने की प्रेरणा दी।

श्रद्धेय प्रान्त मंत्री गुरुवर्य श्री ने अपने सदुपदेशों से जैन समाज में एक नई चेतना भर दी है। आपकी ज्ञान ज्योति के प्रकाश से सैंकडों आत्माओं ने अपने खोये हुए मार्ग को पुनः प्राप्त किया। आपका उज्जवल चरित्र एवं उत्तम कार्य अन्य सभी मुनिराजों के लिये आदर्श रूप अनुकरणीय है।

मरूधर केसरी पंडित रत्न
मंत्री मुनि श्री मिश्रीमलजी म०

आपका जन्म पाली (मारवाड़) में सं० १९५५ श्रावण शुक्ला १४ को सोलंकी महता श्री शेषमलजी सा० की धर्म पत्नि श्री मति केसरबाई की शुभ कुक्षि से हुआ। वैराग्य भाव से रंजित होकर सं० १९७८ को वैशाख शु० अक्षय तृतीया के शुभ दिन सोजत में युग प्रधान जैनाचार्य श्री रघुनाथजी म० सा० के सम्प्रदायानुयायि श्री बुद्धमलजी म० सा० से दीक्षा अंगीकार की। धार्मिक जनागमों और थोकडों के खूब ज्ञाता बनकर आप श्री ने न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि का अच्छा अध्ययन किया। व्याख्यान आपका हृदय ग्राही, समाजोपयोगी, एवं आध्यात्मिक तत्वों से संगर्भित होता है। आप श्री आशू कवि भी हैं। छोटे बड़े गद्य-पद्य में करीब १०० ग्रन्थों का निर्माण किया है। आपका प्रभाव मारवाड़ प्रान्त आदि में बड़ा जबरदस्त है। आप श्री के सद् बोध से श्री लौंकाशाह जैन गुरुकुल सादडी, श्री वर्द्धमान जैन स्थानकवासी छात्रालय राणावास, एस० एस० जिनेन्द्र ज्ञान मन्दिर सिरियारी, एस० एस. जैन गौतम गुरुकुल सोजत, एस० एस० जैन गौशाला जेतारण, एस. एस. जैन वीरदल बिलाड़ा, पूज्य श्री रघुनाथ पुस्तकालय सोजत, श्री बुद्धवीर जैन स्मारक ग्रन्थमाला जोधपुर आदि अनेकों संस्थाओं का संस्थापन हुआ है। संगठन के आप पूरे प्रेमी हैं। सादडी, सोजत, मीनासर, सम्मेलन में आप श्री का परिश्रम सर्व विदित हो चुका है। आप जैन श्रमणों में एक प्रतिभाशाली मुनि हैं। आप वर्तमान में श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के मारवाड़ के प्रान्त मंत्री पद से विभूषित है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

व्या० वाचस्पति श्री मदनलालजी म०

आप प्रसिद्ध वक्ता, शास्त्र के मर्मज्ञ और सादड़ी सम्मेलन में शांति-रक्षक के रूप में रहे थे "व्याख्यान वाचस्पति" के नाम से समाज में सुपरिचित हैं। आपका तप, साधना, संयम, ज्ञानार्जन और सतत् जागृति का लक्ष्य सर्वथा प्रशंसनीय है।

पं० रत्न शुक्लचन्दजी महाराज

पं० रत्न शुक्लचन्दजी महाराज ब्राह्मणकुलोत्पन्न विद्वान् मुनिराज हैं। पूज्य श्री काशीरामजी महाराज के श्रीचरणों में दीक्षा ग्रहण करके आपने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। आप सुकवि और शान्तिप्रिय प्रवचनकार हैं। पहले आप पंजाब सम्प्रदाय के युवाचार्य थे और अब वर्धमान श्रमण संघ के प्रान्त मंत्री हैं।

पं० मुनि श्री किशनलालजी महाराज

पं० मुनि श्री किशनलालजी महाराज पूज्य श्री ताराचन्द्रजी म० के शिष्य हैं। आपका शास्त्रीय ज्ञान सुविशाल है। कविता के आप रसिक हैं। वस्तु तत्व को सरल और सुबोध बताकर समझाने में आप प्रवीण हैं। आपकी प्रवचनशैली बड़ी ही मधुर है। जन्म से आप ब्राह्मण हैं किन्तु जैनधर्म के संस्कार आपमें सहज ही स्फुरायमान हुए हैं। आप श्रमण-संघ के प्रान्तीय मन्त्री हैं।

मंत्री श्री पुष्करमुनिजी महाराज

पं० मुनि श्री पुष्कर मुनिजी ब्राह्मण जाति के शृंगार हैं। आपकी जन्म भूमि नांदेसमा (मेवाड़) है। सं. १६८१ में दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का आपने मननीय अध्ययन किया है। 'सूरि-काव्य' और 'आचार्य सम्राट्' आपकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। आप अतिकुशल वक्ता हैं। श्रमण-संघ के प्रान्तीय एवं साहित्य मंत्री हैं।

पं० मुनि श्री सुशीलकुमारजी भास्कर

आपने ब्राह्मण जाति में जन्म लिया। बचपन से ही वैराग्य भाव होने से मुनि श्री छोटेलालजी म० सा० के पास दीक्षित हुए। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि का अच्छा अभ्यास करके 'आचार्य' 'भास्कर' आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त की। श्रमण संघ के आप होनहार परमोत्साही युवक सन्त हैं। अहिंसा संघ के तथा सर्वधर्म सम्मेलन के आप प्रणेता हैं। अहिंसा के अग्रदूत हैं। 'विश्व धर्म सम्मेलन' द्वारा आप अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त महा मुनि बन चुके हैं। भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में आपका बड़ा सम्माननीय स्थान है।

कविवर्य श्री नानचन्दजी महाराज

कविवर्य की नानचन्दजी महाराज का जन्म वि० सं० १६३४ में सौराष्ट्र के सायला ग्राम में हुआ था। वैवाहिक सम्बन्ध का परित्याग करके आपने दीक्षा ग्रहण की। आप प्रसिद्ध संगीतज्ञ और भावनाशील विद्वान् कवि हैं। आपके सदुपदेश से अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई है। पुस्तकालय की स्थापना करने की प्रेरणा देने वाले ज्ञान-प्रचारक के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। अजमेर साधु-सम्मेलन के सूत्रधारों में आपका अग्रगण्य स्थान था। आपकी विचारधारा अत्यन्त निष्पक्ष और स्वतन्त्र है। "मानवता का मीठा जगत्" आपकी लोकप्रिय कृति है। आप सौराष्ट्र वीर श्रमण संघ के मुख्य प्रवर्तक मुनि हैं।

मुनि श्री छोटेलालजी 'सदानन्दी'

मुनि श्री छोटालालजी महाराज श्री लाधाजी स्वामी के प्रधान शिष्य हैं। अपने गुरुदेव के नाम से आपने लींबड़ी में एक पुस्तकालय स्थापित कराया है। लेखक और ज्योतिष-वेत्ता के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। आपने 'विद्यासागर' के नाम से एक धार्मिक उपन्यास भी लिखा है। आप द्वारा अनुवादित राज-प्रश्नीय सूत्र का गुजराती अनुवाद बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री फूलचन्दजी (पुप्फ भिक्खू)

गोरा रंग, भरा हुआ बदन, ऊंचा कद, मस्तिष्क पर तेज, मधुरभाषी, साहित्य प्रेमी, जैनधर्म का व्यापक रूप, अहिंसा आदि प्रचार में संलग्न, घुमक्कड तथा फकीर तबीयत, ऐसे कुछ हैं मुनि श्री फूलचंदजी।

आपका जन्म चैत सुदी दशमी, वि० सं० १६५२ में राठौड क्षत्रिय कुल के बीकागोत्र में गांव 'भाडला शोभाना' (बीकानेर राज्य) में हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर विपिनसिंह और माता का नाम शारदाबाई था। आपका बचपन का नाम जेठसिंह था। आपकी आर्हती दीक्षा पोहबदी एकादशी, संवत् १६६८ में सोलह वर्ष की आयु में खानपुर गांव जिला रोहतक (पंजाब) में परम तपस्वी मुनिशिरोमणि मुनि श्री फकीरचन्दजी द्वारा हुई थी। आपका दीक्षा नाम मुनि फूलचन्द रक्खा गया। अब इस नामके अतिरिक्त स्वसम्पादित ग्रन्थों में आप अपने आपको 'पुप्फभिक्खू' लिखते हैं और साहित्य जगत् में इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

आपने अपने जीवन में समस्त भारत में भ्रमण किया है, जिस में आपके काश्मीर, कराची, बंगाल (कलकत्ता) बिहार, सिंध, तक्षशिला, बम्बई प्रान्त आदि के पर्यटन और चतुर्मास प्रसिद्ध हैं। जहां जहां आप गये, वहां की जनता में आप प्रिय बन गये। आपके उपदेशों के प्रभाव और प्रयत्न से बंगाल-बिहार में कालीदेवी के मन्दिरों पर पशुओं की बली कई स्थानों में बन्द होगई। कालीघाट-कलकत्ता में आपके द्वारा बारह लाख हेंडबिल पशुवध का निषेध कराने के लिये बंटवाये गये, जिनका अच्छा प्रभाव पड़ा। जम्मू-कश्मीर यात्रा के रास्ते में आपके उपदेश से बहुत से हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने मांस मदिरा आदि का त्याग किया। कराची में आपने सिन्धजीवदया मंडल स्थापित कराया, जिसके सभापति श्री जमशेदजी नसरवानजी मेहता बनाये गये। इस मंडल ने सिंधी समाज में जीवदया का अच्छा प्रचार किया।

साहित्य निर्माण की ओर आपकी विशेष रुचि है। आपने अब तक कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें स्वतंत्रता के चार द्वार, जैन सभ्यता, प्रसंगोचितपद्यमालिका, मेरी अजमेर मुनिसम्मेलन यात्रा, गल्प कुसुमकोरक, गल्पकुसुमाकर, पंच परमेष्ठी, कल्पसूत्र हिन्दी, नवपदार्थ ज्ञान सार, वीर स्तुति, वीर स्वयं ही हैं भगवान, परदेशी की प्यारी बातें, महावीर निर्वाण और दीवाली और "सुत्तागमे" मूल पाठ ३२ सूत्र प्राकृत-अर्धमागधी दो भाग। आपकी रचनाओं में अन्तिम सम्पादित सूत्र संग्रह एक महान स्मारकतुल्य कार्य है। इसकी तैयारी में आपका पच्चीस छब्बीस वर्ष का लंबा समय लगा और देश-विदेशों के प्राकृत तथा जैन धर्म के विद्वानों ने उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

आपने जहां गुडगांव आदि क्षेत्रों में स्थानक स्थापित करने की प्रेरणा दी वहां गुडगांव में जैन साहित्य प्रकाशनार्थ श्रीसूत्रागम प्रकाशक समिति भी स्थापित की।

जैन श्रमण समाज में आपका बडा मान तथा आदर है। आप वर्धमान स्थानकवासी श्रमण संघ के प्रचार मंत्री हैं। आपके शिष्य मुनि श्री सुमित्रदेव जी भी एक उदीयमान लेखक तथा मुनि रत्न हैं।

मुनि श्री सुमित्रदेवजी

इनका संसारी नाम लक्ष्मणदत्त है। गढ़ हिम्मत सिंह (जयपुर) में इनका जन्म वि० संवत् १६७० में हुआ था। उनके पिता का नाम पं० नन्हेसिंह शर्मा और माता का नाम वसन्ती था। ये गौड ब्राह्मण थे।

अठारह वर्ष की आयु तक इन्होंने लगन से विद्याभ्यास किया, और आज एक उच्चकोटि के विद्वान एवं लेखक हैं।

इनकी दीक्षा वैशाख सुदी तीज (अक्षय तृतीया) के दिन सं० १६८८ में नादौन नगर में व्यास नदी के तट पर जैन धर्मोपदेष्टा पण्डित रत्न बालब्रह्मचारी श्री जैन मुनि फूलचन्दजी (पुप्फ भिक्खू) द्वारा सम्पन्न हुई। इनका दीक्षा नाम मुनिसुमित्रदेव है। ये अपने आपको 'सुमित्त भिक्खू' भी लिखते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनिराज श्री हीरालालजी म०

संसारी नाम श्री हीरालालजी। जन्म सं. १६६४ पौष शुक्ला १ शनिवार स्थान मंदसौर (मध्य प्रदेश) पिता श्री लक्ष्मीचन्दजी। माता श्रीमती हगामबाई जाति तथा गौत्र। ओसवाल दूगड़। सं० १६७६ माघ शुक्ला ३ शनिवार रामपुरा (मध्य प्रदेश) में आपने पूज्य पिताजी के साथ ही दीक्षा ग्रहण की। गुरु श्री लक्ष्मीचन्दजी म० सा०। दीक्षा दाता-बादी मान मर्दक पं. मुनि श्री नन्दलालजी म. सा.। शिक्षा आचार्य श्री खूबचन्दजी म. सा. आप। श्री ने जैनागमों का न केवल पूर्ण अध्ययन ही किया है बल्कि कई सूत्र कंठस्थ भी कर लिए हैं। इसके अतिरिक्त "खूब कवितावली" "हीरक-हार" के तीन भाग, बंग बिहार विषापहार स्तोत्र, हीरक गीतांजली, भक्तामर स्तोत्र का भावार्थ तथा अंग्रेजी भावान्तर एवं हिन्दी पद्यानुवाद, आदर्श चरितम्, हीरक सहस्त्र दोहावली, मांस निषेध और गजल प्रच्छक आदि गद्य पद्यमय साहित्य का प्रकाशन कराया है। इससे मुनि श्री की सहज साहित्याभिरुचि प्रकट होती है।

आपके प्रवचन सरल और सीधी सादी भाषा में हृदय परिवर्तन कारी रहते हैं।

स्थानकवासी जैन श्रमण संघ की एक्यता में भी आपने अपना गणाव च्छेदक पद विसर्जित कर सक्रिय सहयोग दिया है। भारतीय लोकमानस के प्रिय वरिष्ठ नेतागणों ने आपके दर्शनों का लाभ लिया है, उनमें भारत के प्रधान मन्त्री पं. जवाहरलाल जो नेहरु, आचार्य विनोबा भावे, पंजाब उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और ऑध्र प्रदेश के राज्यपाल तथा संसद के डिप्टी स्पीकर, श्री अनन्त शयनम् आयंगर, उदयपुर महाराणा श्री भूपालसिंहजी, सेंट्रल रेवेन्यु मिनिस्टर तथा संसद् के एवं प्रान्तीय विधान सभाओं के कई सदस्यगण हैं।

मुनि श्री लाभचन्दजी महाराज

चित्ताखेड़ा (मेवाड़) में सं० १६८१ में आपका जन्म हुआ। आपका नाम लाभचन्द। पिता का नाम नाथूलालजी तथा माता का नाम प्यारीबाई था। सं० १६६१ में रतलाम में आप, स्थेवर पद विभूषित श्री नन्दलालजी म० की सेवा में पधारे। आपने पूज्य श्री खूबचन्द्रजी म० की सेवा में रह कर धार्मिक अध्ययन किया।

सं० १६६२ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को श्री जैन दिवाकर प्र० व० पं० श्री चौथमलजी म० के सानिध्य में संयम वृत स्वीकार किया।

आपने बंगाल बिहार, गुजरात, सौराष्ट्र पंजाब आदि में विशेष रूप से बिहार कर जैनधर्म का महत्व पूर्ण प्रचार किया है। बंगाल में सराक जाति को पुनः जैन बनाने में आपके प्रयत्न प्रशंसनीय हैं।

बिहार प्रान्त विचरण समय बिहार के राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर ने पटना में आप श्री के प्रवचन सुन प्रसन्नता प्रकट की और आपके निमन्त्रण पर महावीर जयन्ति पर मुनि श्री वैशाली पधारे। इस प्रान्त में कई स्थानों पर आपने पशुबलि रुकवाई।

आपने नैपाल की भी यात्रा की। काठ मांडू में नैपाल नरेश और महारानी ने आपके प्रवचन सुने। वहाँ बुद्ध जयन्ति पर भाषण देते हुए भ० महावीर और बुद्ध पर तुलनात्मक विचार प्रकट किये जिसकी सबने प्रशंसा की। ता० १८-६-५७ को आप श्री के प्रयत्न से नैपाल में विराट अहिंसा सम्मेलन हुआ। नेपाल के महा मन्त्री तथा अनेक उच्चाधिकारियों ने आपके दर्शन किये।

इस प्रकार भारत के इतने सुदूर क्षेत्र में जैनधर्म का प्रचार करने का आपने श्रेयस्कर कार्य किया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्वामी श्री जौहरीलालजी महाराज

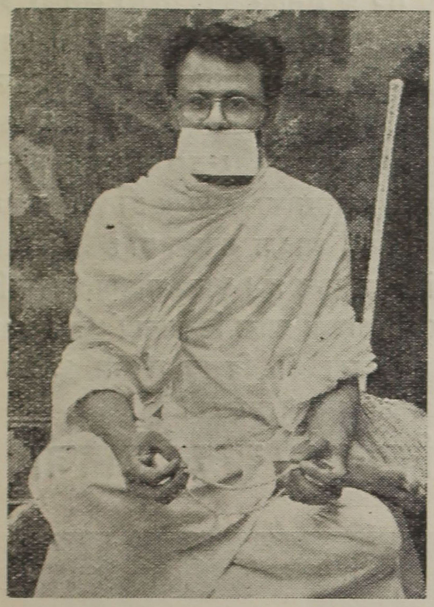

आगरा (यू० पी०) निवासी ओसवाल स्थानक वासी जैन लाल चाँदमलजी सा० चौरड़िया, के सुपुत्र "तपस्वी श्री लाला प्यारेलालजी" के जेष्ट पुत्र चि० जौहरीलालजी का जन्म आगरा जौहरी बाजार में वि० सं० १६७३ मिंगसर वदी एकम को "माता श्री मुन्नाबाई" की कुक्षी से हुआ।

अजमेर साधु सम्मेलन के एक साल बाद ही वि० सं० १६६१ को पंजाब केशरी आचार्य श्री काशिरामजी म० के आगरा चातुर्मास में आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ और आपके पास ही सं० १६६२ मिंगसर सुदी ११ को बामनौली (यू० पी०) में धूम धाम से जैन श्रमण दीक्षा अंगीकार की। आपने पूज्य गुरुदेव "पंजाब केसरी आचार्य श्री काशीरामजी म० के साथ मारवाड़, मेवाड़, खानदेश, बम्बई प्रान्त, गुजरात, काठिया वाड़ा दि देशों में विचरण, करते हुए शास्त्राध्ययन किया। आपके प्रभावक भाषणों से उगाला शाहकोट, जालन्धर कैन्ट में विशेष धर्म जाग्रति हुई तथा बनूड़ में जैन कन्या पाठशाला चल रही है।

आप पंजाब प्रान्त मंत्री पं० रत्न श्री शुक्लचन्द जी म० के शिष्य हैं।

मुनि श्री खजानचन्दजी महाराज

पूज्य श्री अमरसिंहजी म. की आम्नाय के मुनिराज श्री खजानचन्दजी म० का जन्म १६६६ वि० में आबुपुर (मेरठ) में हुआ। पिता का नाम श्री भोलाराम जी तथा माता का नाम शिवदेवी है। जाति छींपा। दीक्षा १६६० माडो अहमदगढ़ (पंजाब) में हुई। दीक्षा गुरु श्री दौलतराजी म०।

आप बहुत ही भद्र सरल एवं सेवाभावी संत हैं। सदा प्रसन्न रहना भी आपकी एक खास विशेषता है। सदा पठन पाठन में लगे रहते हैं। आपका वैराग्य से भरा जीवन प्रशंसनीय-सराहनीय है।

स्थविर श्री कुन्दनलालजी म०

पू. श्री अमरसिंहजी म० की सं.। जन्म अषाढ़वदि ११ सं० १६३३ जन्मस्थान बस्सी (सरहिन्द) पिता श्रीमान् सा० निहालचन्दजी माता श्रीमति द्रौपदीदेवी। जाति अग्रवाल। दीक्षा १६६८ पोह। गुरु श्री नारायणदास जी महाराज।

आप एक अत्यन्त भद्र, एवं तपस्वी सन्त हैं। सर्वदा शास्त्र स्वाध्याय में लगे रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री पन्नालालजी महाराज पंजाबी

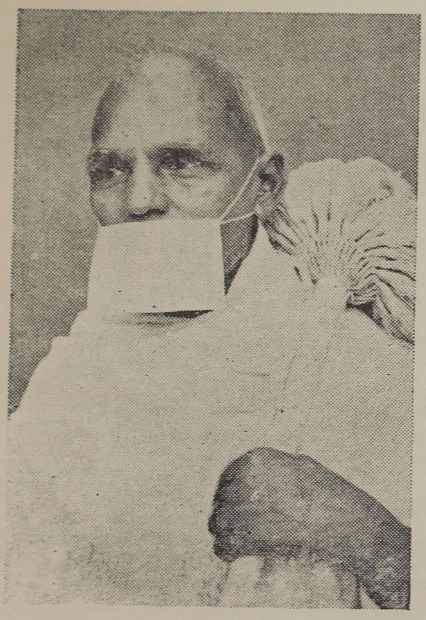

आप पूज्य श्री धर्मदासजी म० की परम्परा के तपस्वी महामुनि हैं। पूज्य धर्मदासजी म० की पाट परम्परा इस प्रकार है:—

१ पूज्य श्री धर्मदासजी म०, २ श्री जोगराजजी म० ३ श्री हजारीमलजी म० ४ श्री लालचन्द्रजी म० ५ श्री गंगारामजी म० ६ श्री जीवनरामजी महाराज ७ श्री भगतरामजी म. ८ श्री, श्रीचन्दजी म. तत्शिष्य-स्वामी श्री जवाहरलालजी म०, तपस्वी विनयचंद जी म०, तपस्वी श्री पन्नालालजी महाराज तथा तत्-शिष्य कविरत्न श्री चन्दनमुनिजी म०।

तपस्वी रत्न पूज्य श्री स्वामी पन्नालालजी म० साहब ने कसबा-ढाबां (बीकानेर) निवासी सेठ जीतमलजी की धर्म पत्नी श्रीमती तीजांबाई की पवित्र कुक्षी से लगभग सं० १६४८ वि० में शुभ जन्म लेकर ओसवालों के बोथरा वंश को चार चाँद लगा दिए। युवावस्था के प्रारम्भ में आपको व्यापारार्थ भटिण्डा, मण्डी डबवाली आदि में रहने का प्रसंग क्या मिला मानो आपका भाग्य ही जाग उठा। उन दिनों उधर धर्म का सिंहनाद बजाने वाले शेरे जगल पूज्य श्री, श्रीचन्दजी म० के मनोहर उपदेशों को सुनकर आपने वि० सं० १६६६ कार्तिक पूर्णिमा को मण्डी डबवाली (पंजाब) में संसार त्याग, मुनिवृत्ति ले आत्म-कल्याण करना प्रारम्भ कर दिया। लगभग ७ वर्ष तक एकान्तर तप, और कई-कई मास निरन्तर एकाशना तप करके आपने अपनी आत्मा को अत्यन्त ही पवित्र बनाया है। आप न सिर्फ आदर्श तपस्वी ही हैं बल्कि सरल शान्त एवं उदार सन्त हैं। स्वल्प भाषण, स्वल्प निद्रा, स्वल्पाहार भी आपकी खास विशेषताएं हैं। शास्त्रा-नुमोदित उग्र क्रिया और विशुद्ध संयमी जीवन देख देख कर जनता धन्य २ कर रही है।

कविरत्न श्री चन्दन मुनिजी

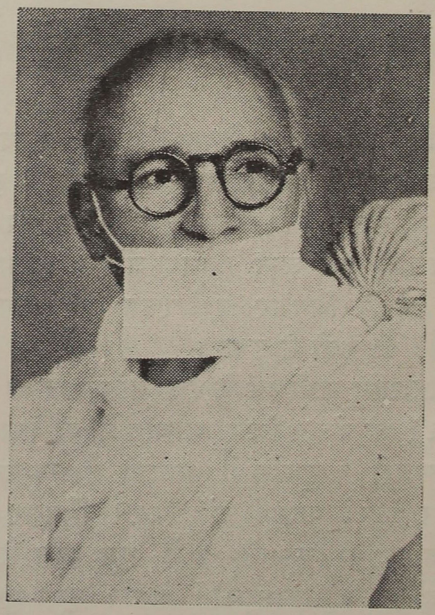

संसारी नाम चन्दनलाल। जन्म तिथि कार्तिक कृष्णा मंगलवार १६७१। जन्म स्थान 'तिओना' जिला फिरोजपुर (पंजाब)। पिता श्रीमान् ला० रामामलजी माता श्रीमति लछमीबाई। जाति ओसवाल गोत्र बोथरा

(शेष पृष्ठ १६८ पर)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनिराज श्री पूर्णचन्दजी म. [पंजाबी]

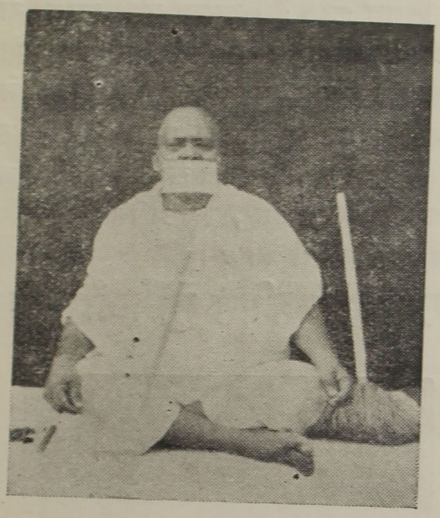

वाणी भूषण, प्रसिद्ध वक्ता श्री पूर्णचन्दजी म० का जन्म दिन ७ अगस्त सन् १६०७ को बड़ौत, जिला मेरठ (यू० पी०) में लाला बैजनाथसहाय स्थानक वासी जैन के यहां हुआ। इनकी मातेश्वरी श्रीमति दमयंती देवी नौ वर्ष की अवस्था में ही काल-कवलित हो गई थी। इनका अग्रवाल जाति गोत्र गर्ग सम्पन्न परिवार से सम्बन्ध है। २१ वर्ष की तरुण अवस्था में पिताजी का भी देहान्त हो गया। पिता के देहावसान के बाद आप देहली में आढ़त की दुकान करने लगे। व्यवसाय में खूब कमाया और खूब दिल खोल कर खर्चा भी किया। उनके कहने के अनुसार जवानी का काफी भाग अल्हड़पन में बिताया। परंतु यकायक आपके जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। दिल्ली में पूज्य चरित्र चूडामणी, श्री मोहरासिंहजी महाराज [श्री मयारामजी महाराज के आज्ञानुवत] का पदार्पण हुआ। आपके सम्पर्क से आप में वैराग्य भावना जागी और सं० १६६८ जेष्ठ सुदी दूज बुधवार को रठाल [जिला रोहतक] में भगवती दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा लेकर पांच छः वर्ष तक शास्त्राभ्यास किया। सन् १६५० में कुराली नामक कस्बा में स्वतंत्र रूप से ठाने २ चतुर्मास किया। इससे पूर्व यहां जैन मुनियों का चतुर्मास नहीं हुआ था। महाराज श्री के सदुपदेश से अजैन लोग जैन धर्म को स्वीकार करने लगे। परिणाम स्वरूप इस गांव में नाम मात्र के जैन होने पर भी नये धर्म प्रेमियों ने स्थानक के लिए जमीन खरीद ली। इस प्रकार महाराज श्री की कृपा से एक नया क्षेत्र तैयार हुआ। श्री बुडलाड़ा मण्डी में भी आपही के उपदेशों से स्थानक का जीर्णोद्धार हुआ। १६५२ का चातुर्मास मनसा मंडी में हुआ। यहां जैन गर्ल्स हाई स्कूल चल रहा है। जिसकी आर्थिक अवस्था सुधारने का श्रेय भी आप श्री को ही है। ६०–७० हजार की लागत से तीन मंजिल का स्थानक तैयार करवाया। मंडी में यह धर्म स्थानक अपनी तरह का एक ही है।

१६५४ में बरनाला चतुर्मास में आप श्री की सत्प्रेरणा से ही १६ हजार रु० स्थानक के लिए मकान और १० हजार रु० नकद दान हुआ। भदौड़ छोटे कस्बे में भी स्थानक के लिए जमीन और ८ हजार रु० इकट्ठा हुआ। सामाजिक कार्यों में महाराज की दिलचस्पी हमेशा से रही है। पटियाला विरादरी के सामाजिक कार्य कुछ अधूरे से थे उनको पूर्ण कराये। अम्बाला शहर में २५ हजार रु० की लागत से एक भवन तैयार हुआ। जिसमें इस समय पूज्य श्री काशीराम जैन गर्ल्स हाई स्कूल चल रहा है। म० श्री की कृपा से इस स्कूल की सहायता के लिए २० हजार रु० नकद दान प्राप्त हुए। १६५६ का चातुर्मास

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

डेरा बसी में हुआ। चतुर्मास में ४० हजार की लागत से जैन गर्ल्स हाई स्कूल की बिलडिंग तैयार हुई। सरकार से तीन बीघा जमीन भी दिलवाई। दानवीर ला. पतरामजी ने १६ हजार रु० का स्थानक बना कर भेंट किया। १६५७ का चतुर्मास अंबाला शहर में हुआ। सठौरा में आदीश्वर जैन कन्या महाविद्यालय की सहायता केलिए दस हजार रु० दान करवाए। अंबाला छावनी से जहां स्थानकवासी जैन बहुत कम हैं एक आलीशान स्थानक तैयार करवा देना म० श्री के अथक परिश्रम का ही फल है।

पंजाब की राजधानी चण्डीगढ़ में इन्ही की कृपा का फल है जो आज यहां एक रमणीक स्थानक बन कर तैयार हो गया है। महाराज श्री का जीवन धर्म शिक्षा के लिए ही बना है। इन्हें हर समय समाज सुधार की ही धुन लगी रहती है। महाराज श्री ने एक ऐसे महत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथों में लिया है जिसका प्रभाव हमारी समाज पर अवश्य पड़ेगा। पंजाब के समस्त जैन स्कूलों को एक सूत्र में पिरोकर उनकी उन्नति करना तथा समस्त स्कूलों को एक संघ के अधीन कर धर्मशिक्षा का प्रचार करना, महाराज श्री का लक्ष्य है।

(शेष पृष्ठ १६६ का)

दीक्षा बसन्त पंचमी १६८८ गुरुवार फरीदकोट (पंजाब)। गुरु तपस्वी श्री पन्नालालजी महाराज।

आप एक उच्च कोटि के सफल एवं गंभीर वक्ता सन्त हैं। कवि होने के नाते आपका भाषण अति मधुर एवं कवित्व पूर्ण होता है।

जैनधर्म दिवाकर तथा जैनागम रत्नाकर पूज्य श्री आत्मारामजी म० के चरणों में ज्ञानाभ्यास करने से, तथा महा मान्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज एवं वर्तमान में सर्व मान्य श्रद्धेय कविवर उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म० के समीपस्थ रहने से आप एक उच्च कोटि के ज्ञानी, गंभीर विचारक एवं सुलेखक व कवि हैं।

आप एक बड़े समाज सुधारक भी हैं। आपके भाषणों में जहाँ धार्मिक भावना जागृत होती है वहां समाजोन्नति हेतु रुढीवाद के प्रति घृणा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। आप जहां भी पधारते हैं कुरिवाजों फिजूल खर्ची, फैशन परस्ती तथा रेशम के उपयोग का घोर विरोध करते हैं। कुसम्प को मिटाकर संगठन द्वारा समाजोत्थान के रचनात्मक कार्य सुझाते हैं।

आप एक अच्छे सुलेखक भी हैं। आपने २३ पुस्तकें लिखी हैं जिनमें ८ प्रकाशित हुई हैं:-गीतों की दुनिया, संगीत इषुकार, संगीत संमति राजर्षि, निर्मोही नृपनाटक, बारह महीने, चटकीले छन्द, गज सुकुमाल, सबलानारी आदि।

पन्यासजी श्री कीर्ति मुनिजी महाराज

आपका जन्म सं० १६५० में फतेहपुर (सिकर) में हुआ। पिता का नाम श्री चुन्नीलालजी था। फलौदी में कमलगच्छाधिपति गादीधर यति श्री सुजानसुन्दरजी के पास ही आपका बाल्यकाल व्यतीत हुआ और आपने ही इन्हे काशी में विद्याभ्यास हेतु भेजा। सं. १६७१ में जब यति सुजान सुन्दर जी का स्वर्गवास हो गया तो आपने पूज्य श्री मोहनलालजी म० के सुशिष्य पन्यासजी श्री हीरा मुनि जी के शिष्य रूप में सं० १६७१ आषाढ़ कृष्णा ८ को आचार्य श्री क्षान्ति सूरिजी से जैन मुनि दीक्षा अंगीकार की।

आप बड़े ही धार्मिक विधि विधानों के जानकार ज्ञान वान मुनि हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पंडित रत्न श्री विमल मुनिजी महाराज

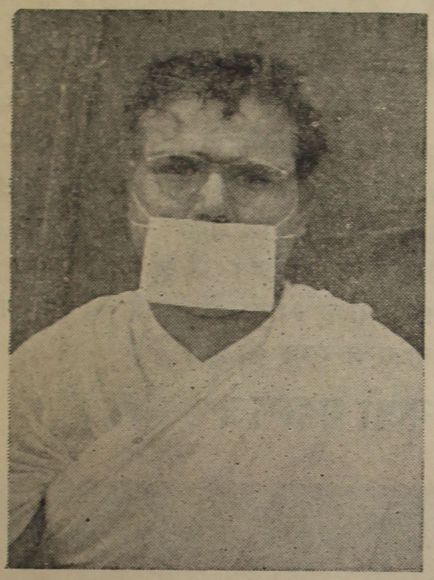

प्रसिद्ध वक्ता, व्याख्यान वाचस्पति, पण्डित श्री विमल मुनिजी महाराज का जन्म सारस्वत ब्राह्मण ऋषाल गोत्र के पण्डित श्री देवराज जी के घर माता श्री गंगादेवीजी की कुक्षी से सं० १६८१ भाद्र-पद कृष्ण षष्ठमी को मालेर कोटला स्टेट के कुप-कलां नाम के गांव में हुआ। माता पिता ने आपका नाम ब्रजबिहारीलाल रक्खा। 'होनहार बिर्वान के चिकने चिकने पात'। घर में हर प्रकार की सुख-सुविधा थी। परन्तु संसार के मधुर भोग इन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सके, मोह का दृढ़ पाश इनको न बांध सका। फल-स्वरूप बालक ब्रजबिहारीलालने संसार को निस्सार तथा मिथ्या जान कर १५ वर्ष की आयु में संसार को त्याग कर माघ शुक्ला ३ सं० १६६६ में आचार्य श्री अमरसिंहजी महाराज की आम्नाय में महातपस्वी श्री जगदीश चन्द्रजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की।

आप सदा प्रसन्न रहते हैं। चित्त के शान्त हैं। निर्भीक हैं, सरल से सरल भाषा में गूढ़तम दार्शनिक सिद्धान्तों को जनता के सन्मुख रखने की आप में अद्वितीय क्षमता है। इन्हीं गुणों के कारण जन-हृदय के सम्राट् बन गये।

आप का एक चौमासा कश्मीर राज्य में कुछ वर्ष पहिले हुआ। कश्मीर राज्य में जैन-मत का प्रचार अल्प है। यहां के निवासियों की निष्ठा अधिकतर हिंसा में है। मुनिजी की वाणी में चमत्कार था वहां के निवासियों पर अधिकाधिक प्रभाव पड़ा। महाराजजी के अहिंसा, शान्ति, तप त्याग के मधुर भाषण सुनकर सदरे-रियासत युवराज करणसिंह, जम्मू-कश्मीर राज्य के मुख्य मन्त्री बख्शी गुलाब मुहम्मद तथा मन्त्री-मण्डल के अन्य सदस्य आपके अनुरागी बने। बख्शीजी ने चालीस हजार रुपये की भूमि स्थानक के लिये दी और एक लाख रुपया जैन बिरादरी ने दिया और जम्मू में एक भव्य स्थानक बना। इसी तरह ऊधमपुर में जहां जैनियों का पहिले एक भी घर नहीं था, महाराज श्री की प्रेरणा से जैनियों का एक नया क्षेत्र बना, और वहां भी एक भव्य स्थानक बना।

१६५७ ई० में महाराज श्री ने पंजाब की नई राजधानी चंडीगढ़ में जैन सिद्धान्तों का प्रथम बार प्रचार किया और इसका प्रभाव वहां की जनता में पर्याप्त मात्रा में पड़ा।

१६५१ ई० में महाराज श्री का चौमासा फगवाड़ा में था।

मुनिजी के प्रभावशाली व्याख्यानों से आकृष्ट होकर जनता अधिक से अधिक संख्या में इनके व्याख्यानों में आने लगी। इस पर वहां के कुछ स्वार्थी धर्मान्ध चिढ़ गये। और उन्होंने प्राण पण से महाराज श्री के विरुद्ध षड़यन्त्र किये। धन देकर बाहर से प्रचारक बुलाए गये। बड़ी २ सभाएं की गई। महाराज श्री को मारने की धमकी भी दी गई। पर मुनिजी के हृदय में दृढ़ शान्ति बनी रही। आप मधुर शब्दों में वहां की जनता को आश्वासन देते रहे। मधुर परिणाम यह हुआ कि चार मास के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भगीरथ प्रयत्न से वहां का विरोधी वर्ग भी अपने दोषों पर लज्जित हुआ और वह विरोध भावना छोड़ कर महाराज श्री की शरण में आगया।

महाराज श्री की धीरता का दूसरा उदाहरण १९५८ ई० में जगराओं नगर का है जहां के नर नारी धर्म के भेद भाव को भुला कर महाराज श्री के व्याख्यान में आते हैं। महाराज श्री के साथ स्नेह करते हैं। यहाँ कालेज के अभाव के कारण जनता को जो कष्ट हो रहा था उसको दूर करने के लिये महाराज श्री ने 'सन्मति जनता कालेज' की स्थापना की है जिसकी आधारशिला सरदार लछमनसिंहजी गिल ने रक्खी और महाराज श्री की प्रेरणा से कालेज के लिये ५१०००) रुपये दान दिये हैं। श्री नानक मतानुयायी उदासी महन्त श्री अमरदासजी ने ४००००) रुपये के मूल्य की सम्पति मुनिजी की प्रेरणा से कालेज के लिये दी है। अन्यान्य लोगों ने भी म० श्री की प्रेरणा से अधिक से अधिक मात्रा में कालेज के लिये दान देकर अपने हृदय का स्नेह प्रकट किया है। इस समय तक तीन लाख रुपये इकट्ठे हो गये हैं। और निकट भविष्य में छे लाख रुपये इकट्ठे होने की आशा है। महाराज श्री के वचनों पर यहां की जनता मन्त्र-मुग्ध सी है।

आचार्य पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज

आपका जन्म सं० १९२४ मिंगसिर कृष्णा १० को ग्राम डाबला (राजस्थान-खेतड़ी निकट) हुआ था स्वामी वंशोत्पन्न पं० बलदेवसहायजी आप के पिताजी थे आपकी मातुश्रीजी का नाम केसरदेवी था। आपके एक छोटी बहन थी जिनका नाम श्री गोरांदेवीजी था। इन्होंने घोर तपस्वी आचार्य पूज्य श्री मनोहरदासजी महाराज की सम्प्रदाय की साध्वी जैनार्या श्री सोनादेवीजी के समीप वि० संवत् १९४० पोष मास में दीक्षा ग्रहण की थी। बाल्यावस्था में आपके पिताजी का स्वर्गवास हो जाने से आपकी मातु श्री जी सिंघाणा (खेतडी) रहने लगी किन्तु यहां आने पर माताजी का भी स्वर्गवास होगया अब आप बहन भाई मामा मंगलचन्दजी के पास रहने लगे। यहां पर एक बार पूज्य श्री मनोहरदासजी महाराज की सम्प्रदाय के आ. श्री मंगलसेन जी म० का पदार्पण हुआ। आपके उपदेशामृत ने दोनों भाई बहिनों को वैराग्यवान बनाया। और पांच वर्ष वैराग्यावस्था में रहकर सं० १९३९ फाल्गुण कृष्णा १० को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ग्राम लुहारी (मेरठ) में दीक्षा ग्रहण की। आपने दादरी, मन्हेद्रगढ़, नारनौल, सिंघाणा, आगरा आदि क्षेत्रों में चौमासा किया और कई नये जैन बनाये।

सं० १९६९ माघ मस में आपने प्रिय शिष्य पं० श्री ज्ञानचन्दजी महाराज को शहर दादरी में दीक्षा दी। सं० १९७७ में आपके गुरुश्रीजी का शहर बडौत में स्वर्गवास हो गया। सं० १९८० माघ शुक्ला ५ को आपके पास सिंघाणा में मुनि श्री खुशहालचन्दजी म० ने दीक्षा ग्रहण की। सं० १९८५ में आप पंजाब पधारे छः वर्ष तक पंजाब में विचर कर खूब धर्मोद्योत किया।

सं० १९९३ आप रावसहेड़ा ग्राम में पधारे आपके आने से पहले यहां के मुसलमान लोगों ने गौमाता आदि पशुओं की अस्थी (हड्डी) आदि जमुनाजी में डालने लग गये थे, वहां की जनता कहने लगी कि मुनाजी इस ग्राम पर रुष्ट हो रही है। वह ग्राम को डूबोने के लिये दिन प्रति दिन ग्राम की तरफ बढ़ती आरही है, ग्राम खतरे में है आदि। इस पर आपने ग्रामवासियों को धर्म करने का विशेष जोर दिया। व्रत बेला तेला अठाई व्रत आंबिल आदि अत्यधिक तपस्या होने से जमुनाजी जो ग्राम से एक फरलॉग पर थी अब तीन मील दूर चली गई। इस धर्म के अपूर्व चमत्कार को देखकर ग्राम निवासी धर्म में अतीव दृढ़ हो गये।

आप यहां दादरी के श्री संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर सं० २००६ वैशाख शुक्ला १ शुक्रवार को शिष्य मंडली के साथ सुख साता पूर्वक पधार गये थे और छः सात वर्ष से चरखी दादरी में स्थाना पति है। इस समय सं० २०१६ में आपकी आयु ९२ वें वर्ष की है। दीक्षा पर्याय ७६ वर्ष की है स्थानकवासी जैन समाज में सबसे बडी आपकी ही दीक्षा है। आपको शास्त्रों का गहन ज्ञान है।

पूज्य मुनि श्री कपूरचन्द्रजी म०

पूज्य श्री कपूरचन्द्रजी महाराज का जन्म वि. सं. १९५५ चैत्र शुदि १३ के दिन जम्मू राज्यान्तर्गत "परगोवाल" ग्राम में क्षत्रिय कुल के शिरोमणि श्री भोपतसिंहजी की धर्मपत्नी सौभाग्यवती श्रीमति की कुक्षी से हुआ। आपने गुरु प्रवर श्री नत्थूरामजी महाराज की सद् प्रेरणा, से प्रेरित होकर १८ वर्ष की अवस्था में स० १९७३ आश्विन शुक्ला तृतीया रविवार को "जेजों" नगर (पंजाब) में जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण कर त्याग मार्ग के अनुगामी बने।

तत्पश्चात् आपने आचार्य सम्राट पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज की सेवा में रह आगमाध्ययन तथा अनेक विद्या ज्ञान प्राप्त किया।

शांत-दान्त, सत्य, सन्तोष, तप-त्याग, क्षमाशील ज्ञान, विज्ञान सच्चारित्र चयन, अध्यवसायी अनेकानेक सुगुण सम्पन्न समझ कर पंजाब स्थानकवासी जैन संघ ने १५ जनवरी सन् १९५० को कैथलशहर, में आचार्य पद प्रदान किया।

जिस समय श्वेताम्बर स्थानकवासी समस्त जैन समाज ने सब सम्प्रदायों का एकीकरण करके श्रमण संघ बनाने का निश्चय किया तो उस समय महाराज श्री ने भी जैन समाज के बड़े २ नेताओं के निवेदन पर आपका अनेक प्रश्नों में विभिन्नता होते हुए भी आपने पूर्ण त्याग तथा उदारता का परिचय देते हुए जैन समाज के उत्थानार्थ अपनी 'आचार्य पदवी' का त्याग निसंकोच कर दिया और आज स्था० जैन श्रमण संघ के पूज्य मुनिवर हैं। इसी प्रकार जीवन में आपने कई महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। कई ऐसे क्षेत्र जो कि धर्म से विमुख हो रहे थे, उनमें नव जीवन संचार कर उनको धर्म के मार्ग पर जमाया। उदाहरण स्वरूप भाण माजरा, सदूलगढ़, सोनीपत मंडी इत्यादि क्षेत्रों को ले सकते हैं। जिनको इन्होंने धर्म रूपी अमृत वर्षा से सिंचित किया।

आपके दो शिष्य हैं, धर्मोपदेशक पंडितवर्य मुनि श्री निर्मलचन्द्रजी महाराज तथा श्री कवि [illegible] जी महाराज। दोनों अपने तप त्याग में सुदृढ़ होकर गुरुदेव की सेवा कर रहे हैं।

प्रेषक—वागीश्वर शर्मा, झिझाना (उ० प्र०)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० उपकारी श्री रामस्वरूपजी महाराज

नाभा (पंजाब) में "श्री रामस्वरूप जैन पब्लिक हायर सेकेन्डरी स्कूल" के जन्मदाता और अन्यान्य कई समाज हितकारी कार्यों के प्रेरक स्वर्गीय पूज्य श्री रामस्वरूपजी महाराज का नाम सदा अमर रहेगा।

आपका जन्म गाजियाबाद जिले के छाजली ग्राम में एक उच्च कुलीय ब्राह्मण जाति में हुआ था। १३ वर्ष की अल्पायु में ही आपने स्था० जैन मुनि दीक्षा अंगीकार करली। आप महान् अध्यात्मिक एवं परम तपस्वी महा पुरुष सिद्ध हुए। आपने अपने जीवन में ५ लाख व्यक्तियों से मांस मदिरा छुड़वाई। कई नये क्षेत्र खोलकर नये जैन बनाये। नाभा में सतसङ्ग मंडल, जैन सभा तथा हायर सेकेन्डरी स्कूल तथा इनकी भव्य इमारतें सब इसी स्वर्गीय महापुरुष की कृपा का ही फल है।

वर्तमान में एस० एस० जैन सभा नाभा के निम्न प्रधान कार्य कर्त्ता हैं:—लाला शादीरामजी प्रधान, लाला मोहनलालजी उप प्रधान, श्री विद्या प्रकाशजी ओसवाल जैन जनरल सेक्रेटरी, श्री जैन कुमारजी जैन उप मंत्री, श्री टेकचन्दजी खजांची तथा श्री रामप्रतापजी ठेकेदार, श्री दर्शनलालजी, श्री चन्दनलाल जी, श्री नौरातारामजी, श्री नत्थूरामजी जैन आदि कार्य कारिणी के सदस्य हैं।

बाल ब्रह्म चारीश्री प्रेमचन्दजी महाराज

संसारी नाम श्री भगवानसिंहजी। जन्म सं० १९५७ आसोजसुदी १० खरक पूनियाँ (जिला हिसार) पिता श्री हीरासिंहजी। जाति जाट (पूनियाँ गोत्र) दीक्षा ज्येष्ठ शुदि ११ सं० १९८६ (स्थान सनोम) (पटियाला) गुरु आचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य श्री खजानचन्दजी महाराज।

मुनिराज श्री फूलचन्दजी "श्रमण"

आज्ञानुवर्ती प्रधानाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म०। संसारी नाम श्री राधाकृष्णजी। जन्म चैत्र शु. १४ सं० १९७१ जन्म स्थान रामपुर बुशहर (हिमाचल प्रदेश)। पिता श्री मंगलानन्दजी कामदार। माता श्री म. लक्ष्मीदेवीजी। जाति ब्राह्मण, गौतम गौत्र। दीक्षा वि० सं० १९८७ मिति मार्गशीर्ष वदि १२ दीक्षा स्थान भदलबड़ (पटियाला)। दीक्षा गुरु पूज्य आत्मारामजी महाराज के ज्येष्ठ शिष्य प्रसिद्ध वक्ता समाज सुधारक श्री खजानचन्दजी महाराज।

आप श्री जैन आगमों तथा षड़ दर्शनों के परम विद्वान हैं। आप श्रीने नयवाद, क्रियावाद, आत्मवाद, निक्षेपवाद इत्यादि ग्रन्थों का निर्माण किया है। तथा होशियारपुर में श्री जैनशिक्षा निकेतन के निर्माता हैं।

श्री फकीर चन्दजी महाराज

संसारिक नाम लाला फकीरचन्द। पिता का नाम लाला पीरुमल। माता श्रीमति मम्मीदेवी। जाति अग्रवाल गर्ग जन्म धनोदा कलां (जिला सगरुर, पंजाब) में फागुन सुदि एकादशी सं० १९४६। गुरुका नाम गणावच्छेदक श्रीजवाहरलालजी महाराज। दीक्षा तिथि मिगसर सुदी ६ स० १९७४ शनिवार। दीक्षा स्थान कैथल (जिला करनाल, पंजाब)।

आप बड़े शांत मूर्ति और घोर तपस्वी हैं। आपने ३१ दिन का व्रत निरन्तर किया। १७ दिन बेले बेले पारणा किया लम्बे समय के लिये काफी एकन्तरे किये। सरदी में रात को सात घन्टे कई वर्ष तक खुले शरीर से तप किया। गरमी के दिनों में दिन के ग्यारह बजे से लेकर चार बजे तक कड़कड़ाती धूप में बैठ कर तप किया। कई २ घन्टे खड़े होकर ध्यान किया और मौन रक्खा। आपने स० १९८३ से अपने उपयोग के लिये केवल दस चीजों को लेने का प्रण किया है। अन्य कोई चीज नहीं लेनी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री टेकचन्दजी महाराज

पिता का नाम मणिरामजी। माता का नाम श्रीमति नत्तोदेवी। जाति अग्रवाल गर्ग। जन्म स्थान रठाना (जिला रोहतक) जन्म तिथि सं. १९६६ फागुन बदी ७ दीक्षा मिंगसर बदी ५ सं १९८२ दीक्षा स्थान जींद (जि. संगरुर) गुरु का नाम गणेबदेशिक श्री बनवारीलालजी म०। गुरुभाई तपस्वी श्री फकीरचन्दजी महाराज।

श्री सहजरामजी महाराज

संसारी नाम सहजरामजी। पिता का नाम श्री बाबूरामजी। माता का नाम श्रीमति परमेश्वरीदेवी जाति अग्रवाल गोयल। जन्म स्थान ऐलनकलां जिला संगरुर (पंजाब) वर्तमान नाभा। जन्म तिथि मिंगसर वदी ११ सं० १९९० शुक्रवार। दीक्षा मूनक शहर में कार्तिक सुदि १३ बुधवार सं० २०१०। गुरु का नाम श्री टेकचन्दजी महाराज।

नोटः—दीक्षा लेने के लिये आप आठ दफा घर से आए और आठ दफा ही घर वाले आपको वापिस ले गए। आप चले आए। नवीं बार आपने दृढ़ता के साथ दीक्षा लेली।

श्री ज्ञानमुनिजी महाराज

संसारिक नाम जीतराम। पिता का नाम प्रभुदयाल माता का नाम पानोदेवी। जाति अग्रवाल सिंगल जन्म स्थान माजरा (जिला रोहतक) माघ सुदि १४ सं. १९६७। दीक्षा स्थान नाभा दीक्षा तिथि भाद्र सुदि पंचमी सं० २०१२। गुरु का नाम स्वर्गीय श्री अमर मुनिजी महाराज।

श्री धर्मवीरजी महाराज

संसारिक नाम समुद्रविजय। पिता का नाम श्री मुलखराज जैन। माता का नाम ईश्वरीदेवी। जन्म दिवस ५ जून सन् १९०५ अमृतसर। जाति ओसवाल गादिया। दीक्षा दिवस मिंगसर वदी १३ सं० २००४ दीक्षा स्थान डेरा बसी। गुरु का नाम स्व० श्री अमर मुनिजी महाराज।

मुनिश्री प्रकाशचन्दजी महाराज

आपका जन्म हांसी (जि० हिसार) के कानूगो वंश के प्रसिद्ध घराने में सं० १९७० पौष कृष्णा १३ गुरुवार को हुआ था। जन्म नाम पारस-दास था। आपके पिता का नाम लाला महावीरसिंह जी तथा माता का नाम चम्पादेवी था। जाति अग्रवाल गर्ग गौत्र। आपके दादा राय साहब रघुवीरसिंहजी हिसार रियासत में वजीर रह चुके हैं। आपने सं० १९९३ कार्तिक शुक्ला १३ को रावल पिन्डी में प्रधानाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी म० के पास दीक्षा अंगीकार की। आपने 'जम्बू चरित्र' लिखा है। पर वह अभी अप्रकाशित है। आपके शिष्य मथुरा मुनिजी हैं।

श्री मथुरामुनिजी

आपका जन्म सं० १९६० जेष्ठ मास में जेंजों (जिला होशियारपुर) में हुआ। पिता लाला चुक्कामलजी, माता वृदिदेवी। आपने ५ दिसम्बर सन् १९५४ को प्रधानाचार्य श्री के पास लुधियाने में भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप एक उदीयमान प्रतापी सन्त हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पं० रत्न श्री महेन्द्रकुमारजी महाराज

आपका जन्म संवत् १९८० के लगभग जम्बु (कश्मीर) राज्य के "भलान्द ग्राम" में हुआ। आप जाति से सारस्वत ब्राह्मण हैं। पिता का नाम श्री सुन्दरलालजी शर्मा तथा माता का नाम श्रीमति चमेलीदेवी है। आप सात भाई हैं। जिनमें से दो भाईयों ने दीक्षा ग्रहण की है। आपके बड़े भाई श्री राजेन्द्रमुनिजी म० ने सं० १९९३ में हुशियारपुर में जैनाचार्य पंजाब केशरी श्री काशीरामजी म० के पास तथा आपने १९९४ में भादवमास में हांसी (हिसार) में पं० रत्न श्री शुक्ल चन्द्रजी म० के सानिध्य में भगवति दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के पश्चात् आप द्वयभ्राताओंने शास्त्राध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत प्राकृत आदि भाषा के आप अच्छे विद्वान हैं। एकान्तवास के आप प्रारम्भिक काल से ही विशेष प्रेमी हैं। अतः अब भी आप अधिकतर एकान्त में स्वाध्याय आदि कार्य में ही समय बिताते हैं। आपकी प्रकृति शांत नम्र तथा सौम्य है। आपके शिष्य श्री सुमनकुमारजी हैं।

श्री सुमनकुमारजी महाराज

आपका जन्म सं० १९९२ के लगभग बसन्त पंचमी को बीकानेर राज्य के "पांचु ग्राम" में गोदारा गोत्रीय जाट वंश में हुआ। आपके पिता का नाम भीमराय था। संयमपर्याय से पूर्व आपका नाम श्री गिरधारीलाल था। आपने हिन्दी में प्रभाकर तक की योग्यता प्राप्त की है। तथा संस्कृत और प्राकृत भाषा का भी अच्छा ज्ञानार्जन किया है।

सं० २००७ (म० १९५) में साढौरा नगर में आश्विन सुदी १३ को कविरत्न पं० श्री हर्षचन्द्रजी म० के चरणों में भगवती दिक्षा ली। और पं० रत्न श्री महेन्द्रकुमारजी के शिष्य बने। आपने रायकोट में एक विशाल "महावीर जैन पुस्तकालय" की स्थापना कराई जो इस समय समृद्ध एवं सम्पन्न है।

इसी प्रकार सं० २०४ में चरखी दादरी में भी "श्री महावीर जैन पब्लिक लायब्रेरी" की स्थापना कराई।

सं० २०१५ में भिवानी में एक मास कल्प करके "श्री महावीर जैन कन्या पाठशाला" की स्थापना कराई। जिसमें ८० बालिकाएं धर्म शिक्षा एवं व्यवहारिक ज्ञान का लाभ उठा रही है।

आप श्री की ही कृपा से हांसी में श्री जैन कुमार सभा और श्री महावीर जैन वाचनालय स्थापित हुआ। तथा स्थानक की लायब्रेरी का पुनरुद्धार किया। भविष्य में भी आप से समाजोन्नति हेतु अनेक आशाएं हैं।

स्व० श्री रामसिंहजी महाराज

संसारी नाम रामलालजी। जन्म सं. १९३९ आषाढ़ मास। जसरा गांव (बीकानेर) पिता दीपचन्दजी। माता केशरीदेवी। जाति लखेरा। दीक्षा कदवासा गांव (बैंगु के समीप) सं० १९५९ माह शु० सप्तमी। गुरु का नाम परमप्रतापी श्री मोहरसिंहजी महाराज। आपने बुढलाढ़ा, बैंसी, रिठल, आदि गांवों में सर्व प्रथम धर्म प्रचार किया। आपका सं० २०१५ आसोज वदी ३ के दिन स्वर्ग वास हुआ।

श्री नौबतरायजी महाराज

संसारीनाम श्री नौबतरायजी। जन्म तीतरवाड़ा नगर (जिला मुजफ्फर नगर) में सं० १९६४ चैत सुदी ६। पिता का नाम श्री सन्तलालजी। माता निहालीदेवी। जाति छिपां टांक क्षत्री। दीक्षा हांसी में सं० १९८० माघ सुदि १०। गुरु का नाम गणावच्छेदक श्री रामसिंहजी महाराज। सहारनपुर के इलाके में सर्व प्रथम आपने ही उपकार किया। आपने अनेक कष्टों को सहकर कई नये जैन बनाये। कई लोगों को मांस, शराब, जुआ, इत्यादि व्यसनों के सौगन्ध भी कराये। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपके प्रीतमचन्दजी तथा उत्तमचन्दजी नामक २ शिष्य हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री कपूरचन्दजी महाराज

कच्छ आठ कोटि मोटा पक्ष सम्प्रदाय के सम्बन्ध में हम पृष्ठ १३२ पर लिख आये हैं। इस सम्प्रदाय के १८ वें पाट पर वर्तमान में आचार्य श्री कपूरचन्द जी महाराज विद्यमान हैं।

आप श्री का जन्म सं० १९३६ पिता का नाम नागपारजी तथा माता का नाम सुन्दरबाई था। जाति बीसा ओसवाल गौत्र गाला। दीक्षा सं० १९५९। स्थान तलवाणा। गुरु आचार्य श्री कर्मसिंहजी म० आचार्य पद सं० २०१५ में मांडवी शहर में हुआ। कच्छ काठियावाड़ में आप श्री के प्रति जैन समाज अतीव श्रद्धा है। आप श्री जैनागम के महान् ज्ञाता प्रभाविक आचार्य हैं। वर्तमान में आप श्री की आज्ञा में १४ मुनिवर तथा ३९ साध्वियाँजी विचर रहे हैं। आज्ञानुवर्ती मुनिवरों में मुनि श्री हेमचन्दजी म० रामचन्दजी म०, पं० श्री रत्नचन्दजी म०, श्री कुशलचन्दजी म०, श्री पं० मुनि श्री छोटेलालजी म०, पं० श्री पूनमचन्दजी म०, मोहनलालजी म०, धीरजलाल जी म०, प्राणलालजी, सुभाषचन्दजी, रूपचन्दजी तथा भाईचन्दजी महाराज हैं। साध्वियों में आर्याजी श्री हेमकंवरजी, श्री धनकंवरजी, श्री गंगाबाईजी आदि ३९ आर्याएं हैं।

प्रवर्तक पं. मुनि श्री रत्नचंदजी (कच्छी)

संसारीनाम रणसिंह। जन्म सं० १९५२ स्थान वांकीगाम मुंद्रा (कच्छ)। पिता कानजी शाह। माता मेघबाई। जाति बीसा ओसवाल गौत्र काश्यपछेड़ा अवटक। दीक्षा सं. १९७६ माहसुद ६ गुरुवार। दीक्षा स्थान कच्छ बाकी। दीक्षा गुरु श्रीनागचन्दजी स्वामी। आपने निम्न ग्रन्थ गुजराती में रचे हैं:—१ श्रावक व्रत दर्पण, २ जैन संवाद रत्नमाला, ३ मार्गानुसारि ना पांत्रीश बोल, माणसाई पटलेशुं, निम्न रचनाएं संस्कृत में लिखी हैं: चंपकमाला चरित्र ५ हरिकेशीमुनि चरित्र ६ अनाथमुनि चरित्र ७ ज्योतिश्चन्द्र चरित्र। इस प्रकार आप संस्कृत तथा जैनागम के परम विद्वान मुनि हैं। बड़े शांत स्वभावी हैं।

मुनि श्री नेकचन्दजी महाराज

आपका जन्म सं० १९३९ मिंगसर बदी ६ को गांव दुकाना (जि० मेरठ) में हुआ। पिता का नाम रामरिखजी जमीदार जाति जाट गौत्र सिल खादिन। दीक्षा सं० १९५४ मिंगसर वदी ११ गुरु पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री प्यारेलालजी म०।

आप बड़े ही विद्वान, शांत मूर्ति त्यागवीर संत हैं।

मुनि श्री बेनीरामजी महाराज

आपका जन्म स्थान रावलपिंडी है। पिता का नाम खयालासिंह। माता गंगादेवी। जाति ओसवाल दूगड़। सं० १९६२ में आपने पंजाबी सम्प्रदाय के मुनि श्री खड्गचन्दजी म० के पास दीक्षा ग्रहण की।

मुनि श्री जगदीशचंदजी महाराज

आपका जन्म सं० १९७४ में होशियारपुर के जूह नामक नगर में हुआ। पिता का नाम निहालचन्दजी माता बसन्तीदेवी। जाति ब्राह्मण गौत्र गग। सं० १९९४ मिंगसर सुदी ५ को स्यालकोट में पूज्य श्री आत्मारामजी म० की समुदाय के मुनि श्री गोकुलचन्दजी म० सा० के पास दीक्षा ग्रहण की।

पूज्य एकलिंगदासजी महाराज की सम्प्रदाय के पं० मुनि श्री माँगीलालजी महाराज

संसारी नाम श्री मांगीलालजी संचेती। पिताजी श्री गम्भीरमलजी संचेती। माताजी श्री मगनादेवी। जाति ओसवाल, संचेती। जन्म पोष कृष्णा अमावश सं० १९६७। दीक्षा अक्षयतृतिया १९७८ रायपुर (राजस्थान) गुरु का नाम जैनाचार्य श्री एकलिंगदासजी महाराज। जन्म स्थान राजाजी का करेडा (मेवाड़)।

आप श्री के प्रयत्नों से कई स्थानों पर सामाजिक कुसम्प दूर हुए कुरिवाज मिटे हैं। झूठे बहमों पर जाति बहिष्कृत व्यक्तियों को वापस जाति में लिवाया आपके हाथों से दीक्षाएं, तपानुष्ठान आदि कई कार्य हुए हैं। आपके मुनिराज श्री हस्तिमलजी, कन्हैयालाल जी तथा पुष्कर मुनिजी आदि विद्वान शिष्य हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्व० जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी म० (मारवाड़ी) और उनकी परम्परा

जैनाचार्य श्री अमरसिंहजी म० की जन्म भूमि देहली है। पिता देवीसिंहजी ओसवाल तातेड़। माता कमलावती। जन्म सं० १७१६ आसोज सुदी १४। पूज्य श्री जीवराज जी म० सर्व प्रथम स्थानकवासी जैनधर्म के क्रियोद्धारक हुए हैं। आपके कई शिष्य हुए थे, उनमें श्रीलालचन्द्रजी म० प्रमुख थे। लालचन्द्र जी म० के सुशिष्य पूज्य श्री अमरसिंहजी म० हुए हैं जिनके नाम से सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। आपने श्री लालचन्द्रजी म० के समीप सं० १७४१ में दीक्षा ली, दीक्षा स्थल देहली। सं० १७६१ में अमृतसर पंजाब में युवाचार्य पद प्राप्त किया। आचार्य पद देहली में हुआ।

जोधपुर के दीवान खेमसिंहजी भन्डारी देहली में आपके उपदेश से प्रभावित हुये। फिर आपको भन्डारीजी मारवाड़ में लिवा लाये। जोधपुर, पाली, सोजत आदि अनेक क्षेत्रों में जैन यतियों से शास्त्रार्थ किया और सर्व प्रथम स्थानकवासी जैनों का झन्डा आप ही ने मारवाड़ में स्थापित किया।

आपके पाट पर २ श्री तुलसीदासजी म०, ३ श्री जीतमलजी म. ४ श्रीज्ञानमलजी म. ५ श्रीपूनमचन्दजी म. ६ श्री जेठमलजी म. ७ महा स्थाविर श्री ताराचंद जी म० हुए हैं।

स्व० श्री ताराचन्दजी म०—महास्थविर श्री ताराचन्द्रजी म० का जन्म स्थान बम्बोरा मेवाड़ हैं। आपके पिता का नाम शिवलालजी गुन्देचा ओसवाल माता ज्ञानकुंवरीजी। जन्म सं० १९४०। ९ वर्ष की वय में श्री पूनमचन्द्रजी म० के पास सं० १९५० में समदड़ी (मारवाड़) में दीक्षा ली। आपश्री की माता ने भी संयम लिया। आप जैन दर्शन के विद्वान, प्रकृति के भद्र और सरल स्वभावी महापुरुष थे। सं० २०१३ में कार्तिक सुदी १४ के दिन जयपुर में स्वर्ग-वास पधारे। आप श्री के पांच शिष्य हुए। नाम-मंत्री मुनि श्री पुष्कर मुनिजी म०, श्री हीरा मुनिजी, साहित्य रत्न श्री देवेन्द्र मुनिजी, साहित्य रत्न, श्री गणेश मुनिजी म० तथा श्री भेरुमुनिजी म०।

श्री भेरुमुनिजी म० मदार के निवासी बासठ वर्ष की उम्र में दीक्षित हुए। जयपुर में स्वर्गवास हुआ।

श्री हीरा मुनिजी म०—आपका जन्म स्थान वास मादड़ा (आबू)। जाति क्षत्रिय। पिता पर्वतसिंहजी। माता चुन्नीबाई। दीक्षा सं.१९९५ पोषसुद ५। अध्ययन हिन्दी साहित्य और संस्कृत मध्यमा, धार्मिक प्रभाकर। आप श्री ने गुरु महाराज श्री ताराचन्द्रजी म० का २७५ पृष्ठ में जीवन चरित्र लिखा है।

साहित्य रत्न श्री देवेन्द्रमुनिजी महाराज

आपकी जन्म भूमि उदयपुर है। सं० १९४७ चैत्र सुद ३ के दिन संडप (मारवाड़) में दीक्षा ली। आप हिन्दी में साहित्य रत्न एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। लेखन शैली सुरम्य है। आपकी माता तथा बहिन भी दीक्षित हैं। आपकी जाति ओसवाल वरड़िया है पिता जीवनसिंहजी वरडिया। माता प्रभाती बाई।

साहित्य रत्न श्री गणेशमुनिजी आपकी जन्म भूमि वागपुरा (मेवाड़) है। आपकी मातेश्वरी तीजबाई ने भी संजम लिया है दीक्षित नाम प्रेमकुवरजी। आपकी दीक्षा सं० २००३ में धार (मालवा) में हुई। आपके पिता लालचन्दजी पोरवाल हैं। आप हिन्दी साहित्य रत्न पास हैं और अच्छे कवि तथा प्रवचनकार हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री संतबालजी

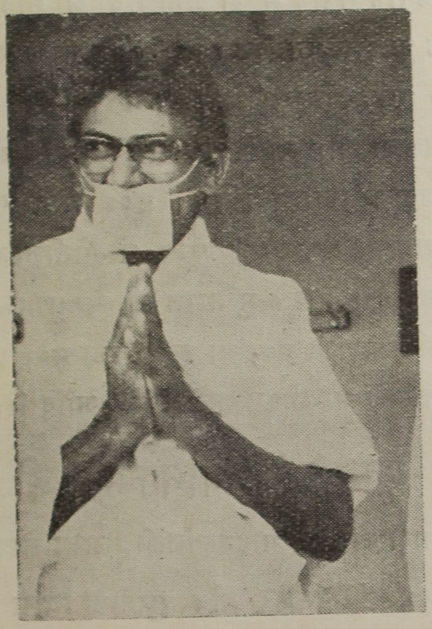

आपका संसारी नाम शिवलाल था। पिता का नाम नागनभाई और माता का मोतीबाई। बीसा श्रीमाली दोशी गौत्र। पिता का बाल्यकाल में देहान्त होगया। माता से आपको धार्मिक संस्कार विरासत में मिले। अध्ययन के बाद बम्बई में नौकरी की। उस सस्ते जमाने में २०० रु० मासिक मिलते थे बाद में एक पारसी सज्जन के साथ साझे में लकड़ी का व्यापार किया। आपका अधिकांश भाग दूसरों की सहायता आदि में जाता था। प्रारम्भ से ही वैराग्य भावना प्रबलवती रही। इस मार्ग से हटाने के लिये माता ने इनकी सगाई करदी। किन्तु एक बार आप अपनी मंगेतर के यहाँ गये और उसे बहिन रूप में सम्बोधित कर एक साड़ी उपहार में दे आये। इस प्रकार सांसारिक उलझन का एक फंदा काट दिया।

आपका विशेष समय अध्ययन और चिन्तन में ही बीतता था। गांधी साहित्य का प्रभाव विशेष रहा। कुछ दिनों बाद आप पूज्य श्री नानचंदजी म० के संपर्क में आये और २४ वर्ष की अवस्था में इन्हीं के पास दीक्षित होगये। दीक्षा नाम सौभाग्य चन्द्र है पर आप 'संतबाल' ही लिखते रहे और उसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

गुरुजी के पास ८ वर्ष तक रहे पर आपको ऐसा लगा कि अभी विकास अधूरा है अतः आप गुरुजी की आज्ञा ले नर्मदा नदी के किनारे बड़ौदा जिले के राणापुर ग्राम में एक वर्ष तक एकान्तवास और मौनी रहे। इस समय आपने दुनियां के हर धर्म का गहन अध्ययन किया। साथ ही न्याय, व्याकरण तथा साहित्य का अनुशीलन भी किया।

ऐसे एकान्त चिन्तनशील जीवन ने आपके जीवन प्रवाह को ही एक विशेष क्रान्ति मार्ग की ओर मोड़ दिया आपने तत्कालीन धर्म के बाह्य स्वरूप एवं व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की और इस सम्बन्ध में एक निवेदन भी प्रकाशित किया। पर समाज उसे पचा न सका और आप सम्प्रदाय से बहिष्कृत किये गये।

मौन एकान्त के पश्चात् आपने महसूस किया कि केवल युगानुकूल उद्देश्य बनाकर काम नहीं चलेगा साथ ही व्यवहार शुद्धि के प्रयोग भी चलने चाहिये। आपने डॉ. मेघाणी का 'आदर्श समाजवाद' पुस्तक की प्रस्तावना लिखी। इसमें धर्म की दृष्टि से समाज रचना के बारे में कुछ बातें आपने लिखी हैं।

आपने अब से साम्प्रदायिकता की चार दिवारी से बाहर निकल कर समूचे राष्ट्र को अपना सेवा क्षेत्र बनाया। गुजरात के नालकांठा आदि कई प्रदेशों में घूम घूम कर समाज सुधार का प्रयत्न किया। कई स्थानों पर कन्या विक्रय, वर विक्रय, फिजूल खर्ची, गंदे गीत गाना, दिखावा आदि की बुराइयाँ बता कर इनको रोकने हेतु पंचायती नियम बनवाये। इसी प्रकार कई लोगों से मांसाहार छुडवाया।

भाल-नाल प्रदेश में पानी की बडी मुश्किलें थीं। यह प्रदेश बिलकुल निर्जल था। थोडी बहुत मात्रा में मीठा जल उपलब्ध था उस पर कड़े निर्बन्ध थे। मुनिश्रीजी ने वहाँ 'जल सहायक समिति' की स्थापना की और आज तक इस समिति के मातहत लाखों रुपये खर्च कर तालाब, कुँए, नहरें आदि की निर्मिती की गई है। अब यह प्रदेश पानी की दृष्टि से समृद्ध हो गया है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आज अहमदाबाद जिले में पाँच सौ गांवों में धार्मिक दृष्टि से समाज रचना का प्रयोग चल रहा है। लगभग १००-१५० भाई बहन इस प्रयोग में हाथ बँटा रहे हैं। आज तो गुजरात में अनेक जगह ये प्रयोग चल रहे हैं। भारत का हृदय गांव है। गांव के तीन प्रमुख हिस्से हैं-देहाती, गोपाल और मजदूर! इन तीनों समुदायों के क्रमशः 'खेडूत मंडल', 'गोपाल मंडल' और 'ग्रामोद्योग मजदूर मंडल' इस प्रकार मंडलों की स्थापना की गई हैं।

सन् १९४६ में अहमदाबाद में जो हुल्लड़ मचा। उस वक्त महाराज श्री का चातुर्मास वहां था। आपने उस समय वहां की शान्ति सेना तथा ग्राम सेवकों की सहायता से जो कार्य किया उसे सारा देश जानता है।

महाराज श्री ने आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालक, जैनदृष्टि से गीता दर्शन, आदर्श गृहस्थाश्रम, ब्रह्मचर्य साधना, धर्म दृष्टि से समाज रचना आदि अनेक धार्मिक ग्रंथ लिखे हैं। आप सर्वोदय योजना सधन योजना, छात्रालय, कृषि बाल मंदिर, नई तालीम के स्कूल आदि अनेक जन कल्याण की प्रवृत्तियों में अपनी साधुता की मर्यादाओं को संभालते हुए योग देते हैं।

आज आपकी उम्र ५४ वर्ष की है। जैन धर्म की दीक्षा लिए आप को ३० वर्ष हो गये हैं। ३० वर्षों के इस लम्बे अर्से में आप जनता जनार्दन की निरंतर सेवा कर रहे हैं।

बापूजी स्वास्थ्य के कारण जब जुहू में रहे थे तब उनसे आपका अच्छा सम्पर्क रहा। आप उन से मिले थे। कांग्रेस के कामों में भी आप का योग सदैव रहता है।

आप चातुर्मास में एक ही जगह स्थिरता करते हैं तथा सदा पैदल प्रवास करते हैं।

पं० श्री भारमलजी महाराज

स्वर्गीय मेवाड़ भूषण जैनाचार्य श्री मोतीलालजी म० के आप प्रधान शिष्य हैं। आपका जन्म संवत् १९५० गांव सिन्दु (मेवाड़) में हुआ। पिता श्री भैरूलालजी और माता हीराँबाई। जाति ओसवाल गौत्र-बढ़ाला। दीक्षा संवत् १९७० मिंगसर वद ७ गांव थामला (मेवाड़) में पूज्य श्री मोतीलालजी म० के पास हुई। आपके मुनिराज श्री अम्बालालजी म० श्री शान्तिलालजी म०, श्री इन्द्रमलजी म०, श्री मगन मुनिजी तथा श्री सोहनलालजी म० आदि शिष्य हैं।

प्रवर्तक श्री मानकमुनिजी

संसारी नाम श्री मोहनलालजी। जन्म सावन सुदी दूज वि० सं० १९५२ गाँव सुरतीया जिला हिसार (पंजाब)। पिता श्री चन्दूरामजी। माता श्री जेठोबाई। जाति-ओसवाल, चौधरी। दीक्षा अषाढ़ की पूर्णमाशी, वि० सं० १९८० गांव कान्डला जि० मुजफ्फर नगर। दीक्षा गुरु श्री बिहारीलालजी (पं० श्री शुक्लचन्दजी म० के शिष्य)।

तपस्वी श्री सुदर्शनमुनिजी

पंजाब मंत्री श्री शुक्लचन्दजी म. के शिष्य। संसारी नाम श्री सुरजसिंहजी। जन्म माघ सुदी पंचमी, वार शनिवार विक्रम संवत् १९६५। जन्म स्थान कांवट (राजस्थान) जिला सीकर। पिता श्री लाधूसिंहजी। माता श्री विजयबाई। जाति राजपूत, तामर गोत्र। दीक्षा-वि० सं० १९९१ वसन्त पंचमी। दीक्षा गुरु श्री पंजाब मंत्री श्री शुक्लचन्दजी महाराज।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन जगत की सुप्रसिद्ध विदुषी साध्वी रत्न

स्व० प्रवर्तिनीजी श्री० पुण्यश्रीजी म०

स्व० श्री सुवर्णश्रीजी म०

प्रवर्तनीजी श्रीज्ञानश्री जी म०

प्रखर पंडिता श्री विचक्षणश्रीजी म०

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

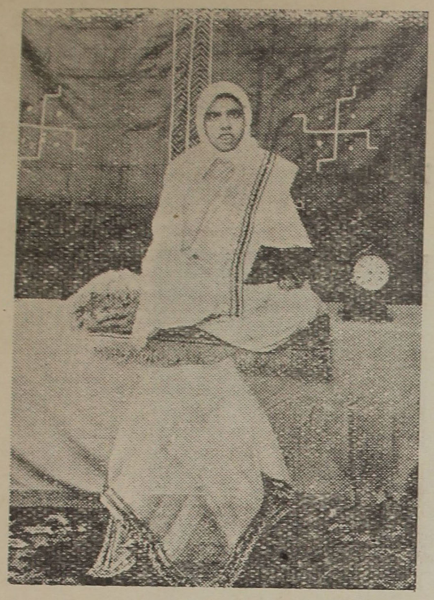

आबाल ब्रह्मचारिणी
श्री कल्याणश्रीजी म०

आबाल ब्रह्मचारिणी
श्री० उमंगश्रीजी म०

श्री. लक्ष्मी श्रीजी म०

श्री० शिवश्री जी म०

परम विदुषी श्री विमला
श्री जी म.

विदुषी आर्या रत्न श्री.
प्रमोद श्री जी म.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com

वृहद् खरतरगच्छीया साध्वी शिरोमणि श्री सुवर्णश्रीजी म. का जीवन परिचय

अहमदनगर निवासी ओसवाल जाति भूषण श्रीमान् सेठ योगराजजी बोहरा एक बड़े ही व्यापार कुशल सज्ज थे। उनकी धर्म-पत्नी का नाम श्रीमती दुर्गादेवी था। वे बड़ी ही सच्चरित्रा, धर्म-परायणा, उदार और आदर्श पतिव्रता थीं। इन्ही देवीजी के गर्भ से सं० १९२७ को ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी केदिन हमारी चरित्र-नायिका ने शुभ जन्म ग्रहण किया, बालिका के अद्भुत रूप लावण्य देख कर ही माता पिता ने उसका नाम "सुन्दरबाई" रखा। सुन्दरबाई केवल रूप में ही सुन्दर नहीं थी, बल्कि उसमें गुण भी बहुत से थे। बचपन से ही वह बड़ी उदार और उच्चभावापन्न थी। विद्या-लाभ करने की ओर भी उसकी बचपन से ही रुचि और प्रवृत्ति थी। कुमारावस्था में ही सुन्दरबाई ने अच्छी शिक्षा प्राप्त करली और खूब विद्याध्ययन कर लिया। इतनी अल्प अवस्था में इतनी योग्यता शायद ही कोई लड़की प्राप्त कर सकती हो।

जब सुन्दरबाई की अवस्था प्रायः ११ वर्ष की हुई, तब आपकी माता, आपका विवाह करने की इच्छा से, आपको लेकर जोधपुर रियासत के 'पीपाड़' नामक स्थान में आई। यहीं सुन्दरबाई को साधु-साध्वियों के समागम का संयोग प्राप्त हुआ। उसी समय वैराग्यपूर्ण देशनाएँ सुन-सुनकर सुन्दरबाई का चित्त संसार से विरक्त होने लगा। परन्तु कर्मान्तराय से आपको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना था। इसलिये संसार त्याग करने का अवसर नहीं मिला।

सं० १९३८ की माघ शुक्ला तृतीया के दिन नागोर-निवासी श्रीमान् प्रतापचन्द्रजी भण्डारी के साथ आपका शुभ विवाह हुआ।

वृहत्-खरतर गच्छ सम्प्रदाय के गणाधीश्वर श्री सुखसागरजी महाराज के समुदाय की जगत् विख्यात, शान्त मूर्ति, गम्भीरता आदि गुणों से अलंकृत श्रीमती पुण्य श्रीजी महाराज संम्वत् १९४५ में नागोर पधारीं। श्री सुन्दरबाईजी उनका उपदेश श्रवण करने के लिये उनके पास नित्य आने लगीं। एक दिन श्रीमती पुण्य श्री जी ने अपनी देशना में संसार की असारता बताई।

नित्य वैराग्यमयी बातें सुनते सुन्दरबाई का हृदय वैराग्य-रस से परिपूर्ण हो गया। अबके श्रीमती पुण्य श्री जी की मधुर देशना ने सोने में सुहागा का सा काम किया। आपका वैराग्यभाव बहुत ही पुष्ट हो गया। आपने उसी समय गुरुणीजी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने का अपना विचार प्रकट किया।

जब सुन्दरबाई ने बहुत आग्रह करना आरम्भ किया, और इनका हार्दिक वैराग्य-भाव देखकर श्री गुरुणीजी ने कहा,-'अच्छा, यदि तुम्हारी इच्छा दीक्षा लेने की ऐसी प्रबल है, तो पहले अपने घरवालों से इसके लिये आज्ञा मांग लो।"

पहले तो लोगों ने हमारी चरित्र-नायिका के दीक्षा ग्रहण करने में बड़ी-बड़ी अड़चनें डालीं, प्रतापमलजी साहब ने भी ऐसी सर्वतः सुयोग्य। पत्नी को आज्ञा देने में बहुत आनाकानी की, रोकने का, जितना प्रयत्न करना था सब कर लिया। पर सुन्दरबाई जैसी तीव्र वैराग्य भावना वाली कब रुकने वाली थीं, सबको अनेक प्रकार से समझा कर आखीर सबसे आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने सं० १९४६ को मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी बुधवार के दिन प्रातःकाल ८ बजे गृहस्थ धर्म को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

छोड़कर गुरुणीजी से दीक्षा ले ली। उसी दिन से भगवान् महावीर स्वामी के बतलाये हुए सत्यमार्ग को ग्रहण कर वे आत्म-कल्याण का साधन करने लगीं। दीक्षा लेने पर आपका नाम "सुवर्णश्री" हो गया और तब से आप इसी शुभ नाम से प्रसिद्ध हैं।

दीक्षोपरान्त वे सदा-सर्वदा ज्ञान-ध्यान में ही अपना समय बिताने लगीं। ज्ञान बढ़ने के साथ ही साथ आपकी ध्यान शक्ति भी क्रमशः इतनी बढ़ गई, कि उस समय दिन-रात के २४ घन्टों में से १३-१४ घन्टे आपके ध्यानावस्था में ही व्यतीत होते थे। आप में आत्मिक ध्यान करने की अपूर्व शक्ति विद्यमान थी। जबसे आपने दीक्षा ली है, तबसे आज तक अनेक प्रकार की तपस्याएँ कर चुकी थी और यथा शक्ति भी करती ही जाती। जहाँ तक हमें ज्ञात हुआ है, आप अट्ठाई, नवपदजी की ओली और बीसस्थानक तप करने के साथ-साथ कठिन सिद्धि-तप का भी आराधन कर चुकी थी। उपवासों की तो कोई गिनती ही नहीं है। आप एक ही समय में लगातार नौ, दस, ग्यारह, सत्रह, उन्नीस और इक्कीस उपवास तक कर चुकी थी।

श्री १००८ श्री पुण्य श्री जी महाराज की शिष्य-मण्डली में, जिसमें प्रायः सवा सौ साध्वियां विद्यमान थी, इस समय आप ही सब में प्रधान हैं। आपका प्रथम चौमासा बीकानेर में हुआ, वहां साधु विधि, प्रकरण, जीव विचार, नवतत्व और कर्म ग्रन्थादि सब कंठस्थ किये। आप पढ़ते थोड़ा मगर मनन इतना करते थे, जैसे छाछ से माखन निकालना आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी, स्मरण शक्ति आपमें बहुत थी। प्रथम चौमासे ही में आप १७ उपवास की बड़ी तपस्या की थी, दूसरा चौमासा फलोधी मारवाड़ में हुआ, वहाँ आपको श्रीमन् ऋद्धि सागरजी महाराज साहब का संयोग हुआ, उनके पास व्याकरण का अभ्यास, सूत्र वांचनादि, आवश्यक ज्ञान हासिल किया। भगवती सूत्र भी सुना। २१ उपवास की बड़ी तपस्या की।

तीसरा चौमासा नागोर में हुआ, दिन प्रतिदिन आपका अभ्यास बढ़ता गया। शासन सेवा करने की योग्यता तथा गुरुभक्ति में आपसर्व प्रधान थीं। इससाल भी आपने १६ उपवासकी बड़ी तपस्या की थी। चौथा चौमासा नया शहर (व्यावर) में किया। पांचवां चौमासा फलौदी मारवाड़ में, छट्ठा चौमासा शत्रुंजय तीर्थ पर हुआ। वहां आपने सिद्धितप किया, १५ उपवास, १० उपवास ६ उपवास किये। तीन अट्ठाई कीं। छोटी तपस्या की तो गिनती करना ही कठिन है। सम्पूर्ण पर्व तप जप से आराधन किये, किसी पर्व को नहीं छोड़ा।

६ चौमासे तो आपने पुण्य श्री जी महाराज सा० के संग किये। दसवाँ चौमासा उनके हुक्म से बीकानेर किया।

आपका बाईसवाँ चौमासा आपनी अहमदनगर जन्म भूमि में हुआ। खरतर गच्छीय साध्वीजी म० का इस शहर में यह सर्व प्रथम आगमन था वहाँ से पूना शहर में पधारे, वहाँ से बम्बई शहर में २४ वां चौमासा किया। येसब एक २ से बढ़कर उन्नति शाली चौमासे हुए। उनमें भी आपके तमाम चतुर्मासों में बम्बई का चातुर्मास बड़ा भारी प्रभाव शाली हुआ। जब आपकी दीक्षा हुई थी, तब कुल १५ या बीस साध्वी जी ही थीं। फिर बाद में आपके उपदेश एवं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

त्याग-वैराग्य के प्रभाव से करीबन १००-१५० की संख्या में सुयोग्य साध्वी समुदाय बढ़ा। हर एक चौमासे में आपके हाथ से व उपदेश से दो चार दीक्षायें होती ही थी। सबको आपने-विद्या पढ़कर योग्य बनाया।

सं० १९७६ फाल्गुन सुदी १० को प्रातः आपकी गुरुवर्या श्री पुण्य श्रीजी म० सा० का कोटा में स्वर्ग-वास हुआ। आप उस समय वहीं थीं और अन्तिम सेवा में गुरु सेवा का लाभ लिया। गुरुवर्या के स्वर्ग-वास के बाद आप पर ही समुदाय संचालन का भार आया जिसे आपने प्रवर्तिनी रूप में निभा कर सब के स्नेह एवं श्रद्धा भाजन बने।

कोटा चातुर्मास के बाद स्वर्गीय गुरुवर्या के आदेशानुसार आपने दिल्ली और उत्तर प्रदेश की ओर विचरण किया। इस प्रदेश में आपश्री के उपदेश से स्थान २ पर अनेक महत्व पूर्ण कार्य हुए हैं जिनका विस्तृत वर्णन यदि किया जाय तो एक स्वतंत्र पुस्तिका ही बन जाय अतः संक्षेप में ही लिखना पर्याप्त होगा।

१ हापुड़ में सेठ श्री मोतीलालजी बूरड़ द्वारा नव मन्दिर निर्माण हुआ।

२ आगरा में दानवीर सेठ लक्ष्मीचन्दजी बैद्य द्वारा बेलनगंज में भव्य मन्दिरजी तथा विशाल धर्म-शाला बनवाई गई।

३ आगरा के निकट श्री शौरीपुर तीर्थ का उद्धार कार्य कर वहाँ की सुन्दर व्यवस्था कराई। गुरुवर्या का यह कार्य चिर स्मरणीय रहेगा।

४ दिल्ली चातुर्मास में महिला समाज की उन्नति हेतु "साप्ताहिक स्त्री सभा" का प्रारम्भ किया और "वीर बालिका विद्यालय" की स्थापना कराई।

५ जयपुर में सं० १९८४ का शु० ५ ज्ञान पंचमी को धूपियों की धर्मशाला में "श्राविका श्रम" की स्थापना की जो अब "वीर बालिका विद्यालय" के रूप में सुसंचालित है। ४०० बालिकाएं पढ़ रही हैं।

वृद्धावस्था एवं अशक्त होते हुए भी आप आगरे वाले सेठ लूणकरणजी वीरचंदजी नाहटा की माताजी के अति आग्रह पर बीकानेर पधारीं और वहाँ बीस स्थानकजी का उद्यापन तप महोत्सव बड़े समारोह पूर्वक कराया।

७ बीकानेर के उदरामसर देशनोक आदि क्षेत्रों में श्वेताम्बर मुनिराजों का कम पदार्पण होता था। आपने इस ओर खूब धर्मोद्योत किया।

८ अन्तिमावस्था जान आपने बीकानेर में वर्तमान आचार्य वीरपुत्र श्री आनन्दसागर सूरीश्वरजी म० के शुभ हस्त से श्री ज्ञानश्रीजी म० को प्रवर्तिनी पद विभूषित कर संघ संचालन सौंपा।

९ फलौदी से जैसलमेर निवासी सेठ जुगराजजी गुलाबचन्दजी गोलेछा ने आपकी अध्यक्षता में जैसल-मेर तीर्थ की यात्रार्थ भारी संघ निकाला।

इसी प्रकार आप श्री द्वारा जीवन के अंतिम क्षण तक लोकोपकारार्थ तथा धर्मोद्योत हेतु कई महत्व पूर्ण कार्य होते रहे थे।

ऐसी महान उपकारी महान् पूज्यनीया साध्वी शिरोमणी गुरुवर्या श्री सुवर्णा श्री जी की वह दिव्य ज्योति सं० १९९१ माघ कृष्णा ९ को सायंकाल ५ बजे इस लोक से सदा के लिये अन्तर्धान होगई।

सर्वत्र शोक की काली घटाएं छागई। जयपुर दिल्ली आदि बड़ी दूर दूर से हजारों मानव मेदिनी एकत्र थी। दूसरे दिन प्रातःकाल बीकानेर के गोगा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दरवाजे के बाहर रेल दादावाडी में बड़े समारोह पूर्वक दाह संस्कार किया गया।

चिर स्मृति हेतु इसी स्थान पर रेल दादावाडी में "श्री सुवर्ण समाधि मन्दिर" स्थापित किया गया।

आज भी उस महान् विभूति की स्मृति सबको परम आह्लादित बनाती हुई श्रद्धावनत बनाती है।

आप श्री की पट्टधर सुयोग्या शांत स्वभावी श्री ज्ञानश्रीजी म० संघ संचालन कर रही हैं और अनेक शिष्य प्रशिष्य परिवार जैन शासन की शोभा बढ़ा रहा है। मेरे ऊपर भी आपश्री का ही अनन्त उपकार है। जिसे मैं जन्म जन्मान्तर में भी ऋण नहीं हो सकती। सश्रद्धा भव २ में आपके ही शरण में स्थान इच्छती हुई उस भव्य आत्मा को अनन्तबार वन्दना करती हूँ। लेखिका—विचक्षण श्रीजी

प्रवर्तिनीजी श्री ज्ञानश्रीजी महाराज

श्री जैन खरतरगच्छ नभोमणि श्रीमत्सुखसागरजी महाराज की समुदाय की प्रसिद्ध साध्वीश्रेष्ठा प्रवर्तिनी जी श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज की साध्वी समुदाय की वर्तमान प्रवर्तिनीजी श्रीमती ज्ञानश्रीजी महोदया का जन्म फलौदी (मारवाड़) में सं. १९४२ की कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को हुआ। गृहस्थावस्था में आपका शुभ नाम गीताकुमारी था।

आपका विवाह भी तत्कालीन रिवाज के अनुसार ९ वर्ष की बाल्यवय में ही फलौदी निवासी श्रीयुत विशनचन्दजी बैद के सुपुत्र श्रीयुत भीखमचन्दजी के साथ कर दिया गया। दैव की लीला। एक वर्ष में ही आप विधवा होगईं। आबाल ब्रह्मचारिणी साध्वी रत्न श्रीमती रत्नश्रीजी म० सा० की वैराग्यरस मय देशना से आपकी हृदय भूमि में वैराग्य का बीजारोपण होगया। उक्त श्रीमतीजी अपनी गुरुवर्या श्रीमती पुण्यश्रीजी म.सा. के साथ फलोधी में पधारी हुई थीं।

विरागिनी गीताबाई की दीक्षा अन्य सात विरागिनियों के साथ फलौदी में ही गणाधीश श्रीमद् भगवान्सागरजी म० सा., तपस्वीवर श्रीमान् छगन सागरजी म० सा० तथा श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी म० सा० आदि की अध्यक्षता में विक्रम संवत् १९५५ की पौष शुक्ला सप्तमी को शुभ मुहूर्त में समारोह पूर्वक होगई। आप श्रीमती पुण्यश्रीजी म० सा० की शिष्या घोषित की गईं और 'ज्ञानश्रीजी' नाम स्थापन किया गया।

आपने अल्प समय में ही व्याकरण, न्याय, काव्य कोष अलंकार छन्द एवं जीव विचार नवतत्व संग्रहणी कर्मग्रन्थ तथा जैनागमों में प्रवीणता प्राप्त करली।

संयम पालन में एकनिष्ठता, गुरुजनों के प्रति अन्य भक्ति, एवं समानवयस्काओं के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा लघुजनों के ऊपर वात्सल्यभाव आदि गुणों के कारण आपके सभी का व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण था। २१ वर्ष की अवस्था में तो अग्रगण्या बना कर आपको अलग चातुर्मास करने भेज दिया गया था।

आपने ४० वर्ष तक भारत के विभिन्न प्रान्तों मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ यूपी. आदि में विहार करके जैन जनता को जागृत करते हुये शत्रुञ्जय, गिरनार, आबू तारंगा खम्भात धुलेवा मॉडवगढ़ मकसी हस्तिनापुर सौरीपुर आदि तीर्थों की यात्राएं की हैं। कई स्थानों पर ज्ञान प्रचारक संस्थाओं की स्थापना करवाई है। संघ निकलवाये हैं। वि. सं. १९९४ की साल से शारीरिक अस्वस्थता और अशक्तता के कारण आप जयपुर में ही विराजती हैं। पूज्या प्रवर्त्तिनीजी स्वर्गीया सुवर्ण श्रीजी महाराज साहबा ने सर्वसम्मति से १९८९ में श्रीमती पुण्यश्रीजी म० सा० के साध्वी समुदाय का भार आपको देदिया था। उसी वर्ष वसन्त पंचमी को पूज्यप्रवर वीरपुत्र आनन्दसागरजी महाराज सा० ने मेड़ता सिटी में आपश्री को प्रवर्त्तिनीपद प्रदान किया था। तब से आपही समुदाय की अधिष्ठात्री हैं। शताधिक साध्वियों का संचालन आप कुशलता पूर्वक कर रही हैं। आपका विशेष समय मौन व जाप में ही व्यतीत होता है।

आपकी जीवनचर्या अनुकरणीय है

आपके द्वारा ११ शिष्याएं प्रव्रजित हुई जिनमें से श्री उपयोग श्रीजी, शितला श्रीजी, जीवन श्रीजी सज्जन श्रीजी जिनेन्द्र श्रीजी तथा स्वयंप्रभ श्रीजी विद्यमान हैं।

आपश्री के जयपुर में विराजने से धर्म कार्य त्याग तपस्या पूजा प्रतिष्ठाए उपधान व्रतग्रहण उद्यापन आदि होते ही रहते हैं।

लेखिका—श्री विचक्षण श्रीजी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बाल ब्रह्मचारिणी श्री उमंगश्री जी म०

आपका जन्म सं० १९४७ प्रथम भाद्रपद शुक्ला १३ को जोधपुर में हुआ। आपके पिता मुंसफी-सूरजराजजी भण्डारी और माता श्री इचरजबाई थे।

आपने लगभग १३ वर्ष की आयु में ही आषाढ़ सुद १० सं० १९६० को स्व० प्रवर्तिनी श्री सुवर्णश्रीजी के पास दीक्षा ग्रहण करली। आपका दीक्षा नाम "उमंग श्री" रखा गया। आप खरतरगच्छीय समुदाय की आर्यारत्न श्री कनकश्रीजी की शिष्या बनी।

साहित्य, काव्य, जैनागम एवं न्याय विषय में आपका अध्ययन गहन है। आपने अपने संरक्षण में कई ग्रन्थों को प्रकाशित कराया है जिनमें रूपसेन चरित्र, सरस्वती स्तोत्र पंच प्रतिक्रमण सूत्र आदि प्रमुख है। आपने अनेक प्रमुख नगरों में चातुर्मास किये हैं और सर्वदा अपने उच्च विचारों से समाज को धार्मिक एवं आध्यात्मिक मार्ग दर्शन दिया है। टोंक तथा रावतजी का पीपल्या, भानपुरा आदि में आपकी सद् प्रेरणा से दीक्षा उजमणे, पूजाएँ ओलोजी, जीर्णोद्धार एवं प्रतिष्ठादि के कार्य हुए हैं।

महाराज श्री अब वृद्ध हैं और टोंक राजस्थान में विराज रहे हैं।

बाल ब्रह्मचारिणी श्री कल्याणश्रीजी म.

आपका जन्म संवत् १९५२ पौष सुद १० को जोधपुर में हुआ। आपके पिता मुंसफी सूरजराजजी भण्डारी थे और माता का नाम इचरजबाई था।

आपमें बाल्यावस्था से ही धर्म के प्रति अतीव श्रद्धा एवं निष्ठा थी जिसने आगे चलकर वैराग्य का रूप धारण कर लिया।

आपने ९ वर्ष की आयु में ही सं० १९६२ मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष में दीक्षा ग्रहण करली। आपका नाम "कल्याण श्री" रखा गया।

आपकी प्रवज्या दात्री गुरुणी स्व. सुवर्णश्रीजी थीं। आप खरतर गच्छीय समुदाय की मुखिया पुष्प श्रीजी म० सा० की शिष्या श्री कनक श्रीजो म० सा० की शिष्या हैं। आपने साहित्य, काव्य, एवं न्याय विषयों में कई परीक्षाएं पास की हैं। आपने अपने संरक्षण में कई ग्रन्थों को प्रकाशित कराया है जिनमें रूपसेन चरित, सरस्वती-स्तोत्र पंच प्रतिक्रमण सूत्र आदि प्रमुख हैं। आपने अनेक प्रमुख नगरों में चातुर्मास किए हैं और सवदा अपने उच्च विचारों से समाज का धार्मिक एवं अध्यात्मिक मार्ग दर्शन किया है। टोंक तथा रावतजी का पिपल्या में आपकी सद्प्रेरणा से दीक्षा, जोर्णोद्धार एवं प्रतीष्ठा के कार्य हुए हैं। भानपुरा में भी आपने प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार कराया है। अनेक स्थानों पर उजमनें पूजाए, ओलोजी, आदि आपकी प्रेरणा से हुए हैं। महाराज श्री अब वृद्ध हैं और टोंक राजस्थान में स्थविर विराज रहे हैं।

श्रीमती मेघश्रीजी महाराज

सांसारिक नाम "धाकुबाई"। जन्म सं० १९४५ मार्गशीर्ष कृष्णा २ जन्म स्थान फलोदी। पिता मोतिलालजी बच्छावत माता रूपकंवरबाई। जाति ओसवाल गोत्र नाहर। दीक्षा १९६० वैशाख कृष्णा १० फलोदी। परम पूज्य गुरुवर्या विदुषी विमला श्रीजी म० सा० की सुशिष्या हैं। आप ज्ञान ध्यान तपश्चर्या में तल्लीन हैं। सेवाभावी जीवन है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्री जयवन्त श्रीजी महाराज

सं० नाम जेठीबाई। जन्म संवत् १६४० पोष कृष्णा १० फलोदी। पिता फूलचन्द्रजी वैद माता श्री शृँगारकंवरबाई (चौथीबाई)। ओसवाल गोलेच्छा। दीक्षा सं० १६६४ माघ शुक्ला ८। श्रीमती गुरुणीजी श्री लक्ष्मी श्रीजी म० सा० की आप सुशिष्या हैं। आपने ७४ वर्ष की वय में निजपुत्री के साथ चारित्र रत्न स्वीकार किया। आप का जीवन सेवाभावी त्याग तप से भरपूर है।

विदुषीरत्न श्री प्रमोदश्री जी महाराज

विदुषी आर्यारत्न बाल ब्रह्मचारिणी "उज्जैन" अवन्तिका नगरी तीर्थ श्री शान्तिनाथ मन्दिर जीर्णोद्धार कारिका साध्वी श्रेष्ठा श्रीमति प्रमोद श्रीजी म० का सांसारिक नाम लक्ष्मीकुमारी (लाछोंबाई) था। जन्म सं० १६५५ कार्तिक शुक्ला ५ जन्म स्थान पलड़म। पिता सूरजमलजी गोलेच्छा माता जेठीबाई। दीक्षा सं० १६६४ माघ सुदी ५ स्थान फलोदी। आप गुरु वर्या शिव श्रीजी म० सा० की शिष्या हैं। ज्ञानदान दात्री गु० पू० श्रीमति विदुषी विमला श्रीजी म० सा० का भारी उपकार है। आप श्रीने व्याकरण काव्य कोष, न्याय, अलंकारादि और सिद्धान्त विषय में गहनज्ञान प्राप्त किया है। आपश्री के सदुपदेश से जैन कन्या पाठशालायें उद्यापन प्रतिष्ठा आदि अनेक शुभकार्य हुए हैं। कई संस्थाओं को आप श्री से सहयोग मिलता ही रहता है। आपकी शिष्याओं में श्री चम्पक श्रीजी, राजेन्द्रश्रीजी, प्रकाशश्रीजी, पारस श्रीजी चन्द्रयशा श्रीजी, चन्द्रोदयश्रीजी, कोमल श्रीजी आदि हैं। सभी विदुषी हैं।

श्री पवित्र श्री महाराज

आपका जन्म सं० १६५७ में सोमेसर (मारवाड़) में श्री सूरजमलजी दूगड़ ओसवाल के यहाँ माडुबाई की कुक्षी से हुआ। नाम रायकंवरी रक्खा गया। सं० १६७५ की वैशाख सुद १० को लोहावट में दिक्षा अंगीकार की एवं श्री पुण्यश्रीजी महाराज की शिष्या बनी। आपने पालीताणा में सं. १६८२ में मासक्षमण किया। एवं १८-१६-१५-११-६ उपवास आदि किये। आपके दिव्य प्रभा श्रीजी एवं विनोद श्रीजी नामक शिष्याएं हैं।

श्री हेमश्रीजी महाराज

आपका जन्म चाडी (मारवाड़) में श्री किशनलाल जी संचेती। (ओसवाल) के घर माता अगरोबाई की कुक्षी से हुवा। आपने २१ वर्ष की अवस्था में सं० १६६२ अषाढ़ सुद ३ को श्री पवित्रश्रीजी की देशना से लोहावट में दीक्षा अंगीकार की।

बाल ब्रह्मचारिणी दिव्यप्रभाश्रीजी महाराज

आपका जन्म सं० १६६६ का मिंगसर सुद ११ को (ओसवाल) भंसाली मेघराजजी के घर माता मूलीबाई की कुक्षी से लोहावट ग्राम में हुवा। आप बचपन से ही धर्मानुरागी रहीं। १० वर्ष की अवस्था में सं० २००६ मिंगसर सुद ११ को आपका लोहावट में दिक्षा संस्कार हुआ और आप महाराज श्री पवित्र श्रीजी की शिष्या बनी।

महासति श्री नेनाजी महाराज

आपका जन्म हरसोलाव (मारवाड़) में हुआ। पिता श्री चुन्नीलालजी चोपड़ा। माता गुरगाबाई। पति का नाम श्री कुनणमलजी ओस्तवाल। दीक्षा सं० १६८० में बड़लु में हुई।

महा सति श्री अमरकंवरजी म०

जन्म सं० १६६० महावदी ४ किशनगढ़। पिता श्री हीरालालजी बोहरा माता धापूबाई। पति का नाम श्री मगराजजी बरमेचा। दीक्षा किशनगढ़ में सं.१६६३ महावदी १३ को हुई। आप महान् विभूति हैं।

महा सति श्रीउमरावकंवरजी म०

आपका जन्म पिपाड़ (मारवाड़) में सं० १६६७ को हुआ। पिता कनकमलजी भंडारी। माता छोटीबाई। पतिका नाम श्री माणकचन्दजी सिंघी था। दीक्षा सं० २००२ जेठ वदी ७ को जोधपुर में हुई। आपने एक सुसम्पन्न घर में जन्म लिया तथा सम्पन्न घर में ही ब्याही पर यह सब रिद्धी छोड़ संयम मार्ग में प्रवृर्तित हैं।

महा सति श्री राजकंवरजी म०

आपका जन्म सं० १६८१ में मिरजापुर में हुआ। पिता श्री सुलतानमलजी मूथा, माता उमरावबाई। पति का नाम श्री रूपचन्दजी सुराणा। दीक्षा सं० २०१२ कार्तिक शु० १० को अजमेर में हुई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन जगत के श्रद्धेय श्री पूज्य जी

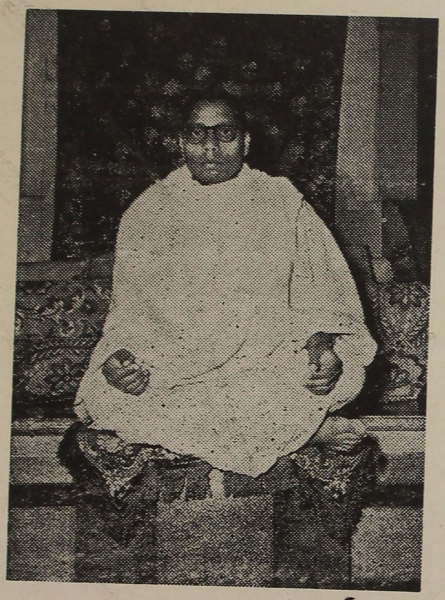

आचार्य श्री जिनविजयसेनसूरिजी, दिल्ली

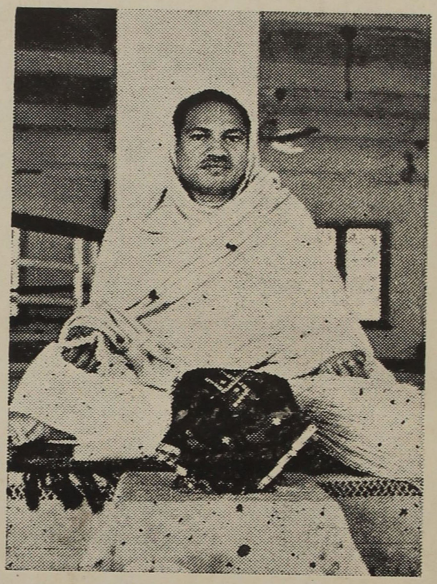

आचार्य श्री जिन विजयेन्द्रसूरिजी, बीकानेर

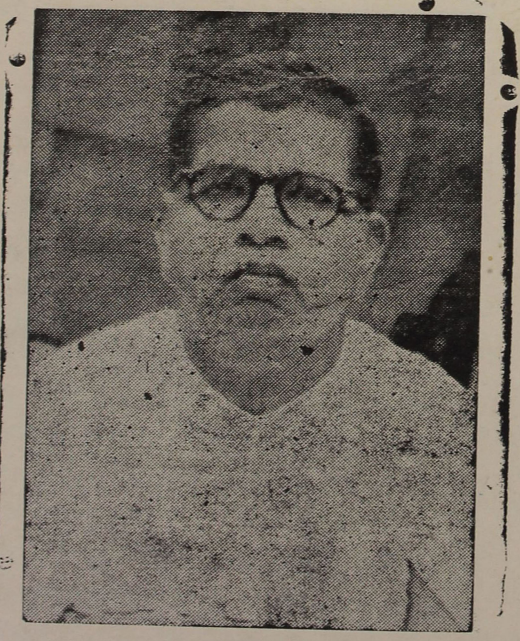

आचार्य श्री जिन धरणेन्द्रसूरिजी, जयपुर

यति श्री हेमचन्द्रजी, बडौदा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचार्य श्री पूज्य श्री जिन विजय सेन सूरिजी, दिल्ली

आप खरतर गच्छीय भट्टारक श्री रंग सूरि शाखा लखनऊ गादी के वर्तमान पट्ट धर आचार्य हैं। रंग सूरि शाखा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पृष्ठ १०६-१० पर लिखा जा चुका है।

आचार्य श्री जिनरत्न सूरिजी के शिष्य श्री जिन विजय सेन सूरिजी हुए। आपका जन्म उदयपुर (मेवाड़) प्रान्त के ओसवाल वंश में हुआ। आपका मूल नाम मोतीलाल था। आपके पिता का नाम हरषचन्द और माता का नाम रूपा देवी था। जयपुर निवासी सेठ गणेशलाल जी श्रीमाल वैराठी की प्रेरणा और उदयपुर के यति श्री सूर्यमल जी के प्रबल प्रभाव से माता पिता ने ४ वर्ष की अवस्था में ही इन्हें समर्पित कर दिया। ये उन्हें श्रीपूज्य श्री जिन रत्न सूरिजी के पास जयपुर ले आये। कुछ समय तक आपका लालन-पालन वैराठी जी के घर पर जयपुर में ही हुआ और तदनन्तर आप की दीक्षा-शिक्षा यतिवर्य श्री सूर्यमल जी की छत्रछाया में सम्पन्न हुई।

आचार्य श्री जिन रत्न सूरिजी के स्वर्गवास के पश्चात् मोतीलालजी का उत्तरदायित्व श्री सूर्यमलजी जी पर ही रहा। किन्तु दुर्भाग्यवश यति श्री सूर्यमलजी आपके गण नायक बनाने के पूर्व ही स्वर्गस्थ हो गये।

जयपुर स्थान के संचालक यतिराज श्री रतनलाल जी और उन्हीं के शिष्य दिल्ली स्थान के संचालक यतिवर श्री रामपाल जी धर्म दिवाकर विद्या भूषण पर शाखा का सारा भार आ पड़ा। श्री संघ इन दोनों सेनानियों का अनुगामी हुआ। लखनऊ में वि० सं० १९९६ वैसाख शु० ५ को श्री मोतीलाल जी की दीक्षा हुई और दो ही दिन पश्चात् सप्तमी को पट्टाभिषेक महा-महोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। पट्टाभिषेक के पश्चात् मोतीलाल जी श्री जिन विजय-सेन सूरि जी के नाम से प्रख्यात हुए।

कुछ दिन पश्चात् श्री पूज्य श्री जिनविजय सेन सूरि ने यतियों के साथ अजमेर की यात्रा की। वहाँ दादागुरू श्री जिनदत्त सूरिजी के दर्शनादि से निवृत होकर लाखन कोठरी अजमेर के उपाश्रय में पधारे यह उपाश्रय परम्परागत आपके गुरूदेव श्री जिनरत्न सूरिजी के अधिकार में था, पर अब उपेक्षा के कारण एक रतन लाल चोपड़ा नामक व्यक्ति के प्रबन्ध में आगया था। उन्होंने श्री पूज्य जी के प्रवेश में आपत्ति-पूर्वक बाधा डाली। किन्तु वे यतिवर्य श्री रामपाल जी जैसे मन्त्र शास्त्री के चमत्कारिक प्रभाव से आतंकित होकर नत-मस्तक हो गये और वहाँ के उपासनादि कार्य तथा विधि सम्पन्न कराये। अजमेर से श्री पूज्य जी दिल्ली पधारे। यहाँ कटरा खुशहाल राय में जैन पोसाल में पहला चौमासा किया। चार चौमासे फिर जयपुर में ही किये। सरलता, सौजन्यता, सदाचार, सौम्यभाव आपके विशिष्ट गुण हैं। प्राचीन तत्वों का संरक्षण, नवीन तथ्यों का संग्रह और सम्वर्धन, जैन संस्कृति और स्थापत्य कला के प्रतीक मंदिरों का जीर्णोद्धार, शिला लेखों का अन्वेषण, सुधार-सम्मेलन, धार्मिक उत्सव आदि कार्य आपके स्वभाव में ओत प्रोत से हो गये हैं हाँ एक बात अवश्य कहनी पड़ती है कि यतिप्रवर श्री रामपाल जी जैसे कर्मवीर के सहयोग ने आप में चार चाँद और लगा दिये हैं।

वि० सं० २००३ आसाढ़ सुदि १० मी को मालपुरा में दादाजी के मंदिर में ध्वज दण्ड प्रतिष्ठा तथा दादाजी की छत्री (स्मारक) की प्रतिष्ठा कराई। वि० सं० २०११ मार्ग शीर्ष शु० १३ बुधवार को नौघरा दिल्ली के मंदिर की ध्वज दण्ड प्रतिष्ठा कराई। वि० सं० २०१२ वैसाख शु० ७ मी को भी नवीन सिद्धाचल तीर्थ की प्रतिष्ठा कराई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह तीर्थ दिल्ली निवासी सेठ बब्बूमलजी भंसाली और उनके सुपुत्र इन्द्रचन्दजी का बनाया हुआ है।

आपकी दिनांक ४-१२-५४ को भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू जी से यतिवर्ग के साथ सादर भेंट हुई। प्रधान मन्त्री ने आपके पूर्वजों को दिया हुआ अकबर सम्राट का फर्मान (आज्ञा पत्र) जो आपके पास अबतक सुरक्षित है तथा जहाँगीर आदि के अन्य फरमान भी सुरक्षित हैं, देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। इसमें जैन धर्म के पवित्र दिनों में जीवहिंसा-निषेध की साम्राज्य भर के लिये घोषणा है। फाल्गुण शु० ५ मी वि० सं० २०१२ दिनांक १७-३-५६ को आपने "अखिल भारतीय जैन यति परिषद्" की स्थापना कराई। जिसमें बीकानेर के श्री पूज्य श्री जिन विजयेन्द्र सूरिजी और जयपुर के श्री पूज्य श्री जिन धरणीन्द्र सूरिजी का भी आपही के समान प्रयास रहा। आप ही इस सम्मेलन के प्रथम प्रधान थे।

आप काम्पिल्यपुर (कम्पिला पुरी) में श्री नन्दी वर्धन सूरि जी की प्रेरणा से बनवाये हुए श्री विमल नाथ स्वामी के मंदिर का जीर्णोद्धार करा रहे हैं। वहाँ पर प्रति वर्ष चैत्र कृष्णा ७ मी से यात्रा मेला, महोत्सव का भी आयोजन आपने कराया है। इसमें दिल्ली वाले सेठ मिट्ठूमल जी और तत्पुत्र जवाहर लाल जी राक्यान श्रीमाल का विशेष हाथ है। आपके आज्ञामें वर्तमान में निम्न यतिवर्ग हैं—यति श्री प्यारेलालजी दिल्ली, रामपालजी डालचंदजी उदयपुर ज्ञानचंदजी अजीमगंज, यति श्री चंद्रिका प्रसादजी गौतमचंदजी आदि।

आप श्री के ही पूर्ण प्रयास से जैन रत्नसार ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।

आचार्य श्री पूज्य श्री जिन विजयेन्द्रसूरिजी महाराज, बीकानेर

आप श्री बीकानेर खरतर गच्छीय बृहत भट्टारक गद्दी की सूरि परम्परा में भगवान महावीर स्वामी से खरतर विरूद प्राप्तकर्त्ता आचार्य श्री जिन वर्धमान सूरि ३६ वें पट्ट पर थे; उन वर्धमान सूरि के बीकानेर गद्दी के आप ३८ वें पट्टधर हैं।

श्री जिनचारित्र सूरिजी म० के पाट पर आचार्य हुये। वर्तमान आचार्य श्री जिनविजयेन्द्र सूरिजी म० का जन्म सं० १८७२ में काठियावाड़ भावनगरा। सन्न गांव में श्रीमान गांधी गोत्रीय श्री कल्याणचन्द्र जी सा० की धर्मपत्नी श्रीमति विमल (दिवाली) देवी की कुक्षी रत्न से आपका जन्म हुआ। आपका जन्म नाम विजयलाल (विजयचन्द भी कहते थे) था। सं० १९८७ वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन आपने मालपुरा ग्राम में क्षेमधाड़ शाखीय महोपाध्याय शिवचन्दजी गणी की परम्परा के अन्तर्गत उपा० श्री श्यामलालजी गणि के पास आपने दीक्षा ली। आपका दीक्षा नाम विजयपाल रक्खा। सं० १९९८ माघ शुक्ला दशमी को श्री संघ कृत नंदी महोत्सव पूर्वक बीकानेर नरेश द्वारा आपको आचार्य पद-गच्छेश पद से विभूषित किया। बाद में आपश्री बीकानेर से अजीमगंज, जियागंज, भागलपुर, कलकता, नागपुर, रायपुर, बम्बई, कलिंगपोल, कुचविहार, दीमहट्टा, दारजिलींग, फतेहपुर, राजगढ़, चूरू, जयपुर, उदयपुर, रतलाम, उज्जेन, इन्दौर, बनारस, सूरत, खंभात, धमंतरी, भोपावर, हैदराबाद, सिकोंग आदि आदि नगरों में आपने अपनी मधुर शैली से भव्य जीवों को उपदेश देते हुए मोक्ष मार्ग के पथिक बनाया। इस साल सं० २०१५ का चौमासा आपका इन्दौर शहर में होने से जनता में प्रेम भाव एवं श्रद्धा भक्ति इतनी है कि मानों बड़े से बड़े आचार्य की हो। इस से सहस्रगुणा भाव भक्ति आप श्री के व्याख्यान द्वारा बनी है। आप में प्रसन्नमुख रह महान् गंभीरता रखनेका अद्वितीय गुण है। क्रोधमान कषाय आपके जीवनमें कतई नहीं है। यथा नाम तथा गुण आप श्री में प्राप्त होते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com